राजेन्द्रप्रसाद
की
आत्मकथा
(संक्षिप्त)

प्रकाशक
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा
मद्रास

हिन्दी प्रचार पुस्तकमाला, पुष्प–282

पहला संस्करण :
पहला पुनर्मुद्रण
फ़रवरी, 1971

10.000

दाम रु. 3–50

O. No. B. 66
मुद्रक दक्षिण भारत प्रेस,
खैरताबाद, हैदराबाद–4

प्रकाशक की ओर से

सभा के द्वारा अब तक प्रकाशित प्रतिष्ठित व्यक्तियों की जीवनियों के सिलसिले में देशरत्न बाबू राजेन्द्रप्रसाद की आत्मकथा का यह संक्षिप्त संस्करण प्रकाशित करते हुए हमें हर्ष हो रहा है।

श्री राजेन्द्रप्रसादजी कितने महान व्यक्ति थे, इनका विवरण यहाँ देना अनावश्यक है; यह पुस्तक ही उनकी महानता का सच्चा परिचायक है। अपने चरित्र की महानता के कारण ही आप 'देशरत्न' कहलाये, 'भारतरत्न' हुए, स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति बने। हमें तो इस बात का बड़ा गर्व है कि भारतरत्न राजेन्द्रप्रसादजी हमारी संस्था के अध्यक्ष भी रहे। सभा के कार्यकलापों को कई क़दम आगे बढ़ाकर सभा को राष्ट्रीय महत्व की संस्था घोषित कराने में आपके प्रयत्न और आपकी खास दिलचस्पी सराहनीय हैं।

यह संक्षिप्त आत्मकथा का संस्करण सभा के द्वारा प्रकाशित कराने के लिए 'राजेन्द्र प्रसाद ग्रंथावली-न्यास' के मंत्री ने उदारता-पूर्वक अनुमति प्रदान की थीं, जिसके लिए सभा उनके प्रति अत्यन्त आभारी है।

हमें पूर्ण आशा है कि देश के इस महान नेता की आत्मकथा का यह ग्रंथ हिन्दीप्रेमी जनता द्वारा समुचित ढंग से स्वागतार्ह होगा।

—प्रकाशक

विषय-सूची

राजेन्द्र प्रसाद की

आत्मकथा

1. मेरे पूर्वज

संयुक्त प्रान्त में कोई जगह अमोढ़ा नाम की है। सुनते हैं कि वहाँ कायस्थों की अच्छी बस्ती है। बहुत दिन बीते, वहाँ से एक परिवार निकलकर पूरब चला और बलिया में जाकर बसा। एक बडे ज़माने तक बलिया में रहने के बाद उस परिवार की एक शाखा उत्तर की ओर गयी और आजकल के ज़िला सारन (बिहार) के एक गाँव जीरादेई में जाकर रहने लगी। वहाँ कोई छोटी-सी नौकरी लिखने-पढ़ने की, उसमें से किसी को मिल गयी। उसी समय से उन लोगों का सम्बन्ध हथुआ राजा से भी हो गया। हथुआ उन दिनों इतना बड़ा राज नहीं था और न उसकी इतनी आमदनी ही थी। उसके रईस का मुख्य स्थान भी हथुआ में पीछे बना, उन दिनों कहीं अन्यत्र ही था।

मेरे दादा का नाम था मिश्रीलाल। उनके बडे भाई थे चौधुर लाल। मिश्रीलाल का देहान्त बहुत छोटी उम्र में ही हो गया। उनके केवल एक लड़के थे महादेव सहाय जो मेरे पिता थे। चौधुरलालजी के भी एक पुत्र थे जगदेव सहाय। मिश्रीलाल की आकस्मिक मृत्यु कम उम्र में होने के कारण मेरे पिता के साथ चौधुरलालजी का बड़ा स्नेह-प्रेम था। जगदेव सहाय और महादेव सहाय दोनों को उन्होंने अपने पुत्रों के समान ही पाला-पोसा और तयार किया। जगदेव सहाय वडे थे और उनके भी कोई पुत्र नहीं रहा, केवल एक लड़की हुई जो भी जाती रही। महादेव सहायजी के तीन लड़कियाँ और दो लडके हुए। एक लडकी तो बचपन में ही जाती रही। दो की शादी हुई जिनमें बडी भगवती देवी थोडे ही दिनों के बाद

विधवा हो गयीं। दूसरी बहन भी, जो दोनों भाइयों से बडी थी, बिना किसी सन्तान के जाती रही। मेरे बडे भाई बाबू महेन्द्र प्रसाद हुए और सबसे छोटा लड़का घर में मैं हुआ।

हथुआ-राज में चौधुरलालजी ने बडी ख्याति पायी। वहाँ वह दीवान के पद पर पहुँच गये और प्रायः 25–30 वर्षों तक दीवान रहे। उन दिनों महाराज छत्रधारी साही गद्दी पर थे। उन्होंने अपने लड़के को राज्य न देकर पोते राजेन्द्रप्रताप साही को वसीयतनामा के ज़रिये राज्य दे दिया। उनका चौधुरलाल पर बड़ा विश्वास था और छोटे पोते की रक्षा का भार मरते समय उनपर डाल दिया। महाराज की मृत्यु के बाद छोटे कुमार पर बडी आफ़तें आयीं। कुटम्ब के लोगों ने राज पर दावा करके मुकदमा कर दिया जो प्रीवी-कौंसिल तक गया। प्रीवी-कौंसिल में फ़ैसला हुआ कि हथुआ-राज अविभाज्य (Impartible) है और अविभाज्य राज को वसीयत करने का अधिकार राजा को है, इसलिए राजेन्द्रप्रताप साही राज्याधिकारी हैं। इस मुकदमे के दौरान में राजेन्द्रप्रताप साही की ज़िन्दगी पर भी आफ़त थी और उनकी रक्षा करना कोई सहज काम न था। हमने सुना है कि उनकी रक्षा के लिए चौधरलालजी उनकी चारपाई के पास ही स्वयं सोया करते थे और जो कुछ उनको खाने को दिया जाता था वह पहले ज़हर के भय से स्वयं खा लिया करते थे।

चौधुरलालजी ने राजा की केवल रक्षा ही नहीं की; उन्होंने राज के इन्तज़ाम में भी काफी तरक्की की। गैर-आबाद ज़मीन को आबाद कराकर और दूसरे प्रकार की भी उन्नति करके उन्होंने राज की आमदनी प्रायः तिगुनी कर दी। महाराज राजेन्द्रप्रताप साही इन सब कारणों से उनको बहुत मानते थे और उनकी बडी प्रतिष्ठा किया करते थे। सुना है कि उनके सामने महाराज कभी तम्बाकू नहीं पीते थे और जब सुनते कि वह आ रहे हैं तब हुक्का हटवा दिया करते थे।

चौधुरलालजी बडे मुन्तजिम आदमी थे। राज की आमदनी तो उन्होंने दुगुनी-तिगुनी बढ़ा दी, तो भी वहाँ की रिआया उनसे प्रेम रखती और उनपर विश्वास करती, जिसका सबूत मुझे अपने अनुभव में भी मिला। जब मैं असहयोग के दिनों में उस इलाके में दौरा करने लगा, मैं जहाँ जाता वहाँ के बूढे लोग मेरा स्वागत, विशेष करके इस कारण से भी करते कि मैं चौधुरलालजी का पोता हूँ। चौधुरलालजी ने अपने कुटुम्ब की भी उन्नति की। उन्होंने 7–8 हज़ार वार्षिक आमदनी की ज़मीन्दारी अपनी भी ख़रीदी। यह ज़मीन्दारी विशेष करके चावल बेचकरके ही ली गयी थी। कई गाँव तो हमारी दोनों दादियों के नाम से ही लिये गये, क्योंकि चावल तो घर में वे ही तैयार करातीं, बेचतीं और रुपये देतीं।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, चौधुरलालजी ने अपने पुत्र जगदेव सहाय और भतीजे महादेव सहाय की शिक्षा का प्रबन्ध किया। अभी अँगरेजी की चाल नहीं चली थी, फ़ारसी की ही शिक्षा दोनों को मिली।

महाराज राजेन्द्रप्रताप साही की मृत्यु के बाद राज का इन्तज़ाम कुछ दिनों के लिए कोर्ट ऑफ़ वार्डस के हाथ में गया। चौधुरलालजी अँगरेजी तो जानते न थे, इसलिए दीवान तो रह नहीं सकते थे, और उस पद पर पच्चीस-तीस बरसों तक रहकर उससे कोई छोटा पद स्वीकार करना उन्होंने अपनी शान के ख़िलाफ़ समझा। तब से हम लोगों का कई पीढ़ियों का सम्बन्ध हथुआ-राज से छूट गया। यह मेरे जन्म के पहले की बात है।

2. मेरे भाई-बहन

ऊपर कह आया हूँ कि मेरे पिता की पाँच सन्तानों में सबसे बडी भगवती देवी हैं। उनका विवाह मेरे जन्म के पहले ही एक बडे धनी कायस्थ-परिवार में हुआ। बचपन में, जब मैं शायद -चार-पाँच बरस का था वहाँ गया था और उन लोगों की शान-शौकत देखी थी। मेरे बहनोई छः भाई थे। सबके लिए अलग-अलग नौकर और सिपाही थे। कई

घोडे-हाथी पाले जाते थे और कई किते की बडी हवेली थी। न मालूम किस तरह से चार-पाँच वर्षों के भीतर देखते-देखते ही सारी जमीन्दारी, जिसकी आमदनी सुनते हैं कि 70–75 हजार सालाना की थी, बिक गयी। मेरे बहनोई की मृत्यु भी उन्हीं दिनों मेरे ही घर पर जीरादेई में ही हो गयी। मैं छोटा था, फिर भी उस समय का कोलाहल और दादा, चचा, पिताजी और घर की स्त्रियों की करुण दशा का चित्र अभी तक नहीं भूलता। मैंने मृत्यु का दृश्य पहले-पहल वहीं अपने होश में देखा।

उनसे छोटी बहन की शादी उसके बाद हुई। भाई साहब की भी शादी हुई। इन दोनों शादियों को भी मैंने देखा। भाई की शादी में मैं बरात गया था। उस समय शायद चार बरस का था और वहाँ जाकर माँ के लिए रोने भी लगा था। उस समय तक शायद ही माँ से अलग होकर एक-दो दिनों के लिए कहीं गया होऊँ। भाई साहब मुझसे आठ बरस बडे थे। इसलिए मुझे बहुत बातों की सुविधा हुई। जो उनकी शिक्षा का क्रम हुआ वही मेरे लिए भी स्वभावतः हो गया और मैं उनके पीछे-पीछे बिना किसी विशेष कठिनाई के चलता गया।

घर में चौधुरलालजी रहते थे। मुझे अच्छी तरह याद है कि मैं और मेरे चचा की लडकी, जो मुझसे पाँच-छः महीने छोटी थी, उनके बदन पर लोटपोट करके खेला करते और बहुत प्यार से हम दोनों को खेलाया करते। मेरे चचा साहब जमीन्दारी का इन्तजाम करते और अक्सर छपरे आया-जाया करते, जहाँ जमीन्दारी के मुकदमे, जो हमेशा कुछ-न-कुछ लगे ही रहते हैं, हुआ करते थे। मेरे भाई साहब छपरे अँगरेजी पढ़ने के लिए भेज दिये गये थे। जब-तब उनको देखने के लिए भी वही जाया करते। जब कभी उनके छपरे से आने की खबर मिलती, हम बच्चे घर से कुछ दूर जाकर ही उनका स्वागत करते। स्वागत का अर्थ था उनसे मिठाई, फल इत्यादि की माँग पेश करना और कुछ मिल जाय उसे ले, उनसे पहले ही दौडकर घर पहुँच, माँ को दिखलाना।

मेरे पिताजी घर पर ही रहा करते थे। जमीन्दारी के इन्तजाम से उनका कम ही सरोकार रहता। उनको बाग लगाने का शौक था। वह बहुत समय बाग-बगीचे लगाने में ही बिताते। आज भी उनके लगाये आम के दो बडे-बडे बगीचे हम लोगों के कब्जे में हैं, जिनमें अच्छे-अच्छे आम पैदा होते हैं। वह फारसी के अच्छे विद्वान थे। कुछ-कुछ संस्कृत भी जानते थे। आयुर्वेद और तिब्ब में उनकी दिलचस्पी थी। इन विषयों की पुस्तकों का संग्रह भी कर रखा था और उनका अध्ययन भी किया करते थे। वह इस तरह बिना बाजाब्ता शिक्षा पाये, चतुर वैद्य या हकीम हो गये थे। उनके पास तरह-तरह के रोगी आया करते। जो दवा खरीद सकते उनको नुस्खे लिखकर देते। गरीबों को अपने पास से दवा भी देते। उनके साथ एक नौकर हमेशा दवा तैयार करने के लिए ही रहता। कभी किसी की नाडी नहीं देखते थे और न किसी के घर जाकर रोगी को ही देखते थे, हालत सुन कर ही दवा देते और बहुतेरे आराम भी हो जाते। इससे यश फैला था। वह शरीर से भी अच्छे पुष्ट थे। बचपन से कुछ कसरत भी अखाडे में उन्होंने की थी। मुझे याद है कि जब मैं स्कूल या कालेज में पढ़ता था और छुट्टियों में घर आया करता था, तो वह स्वयं मुगदर भाँजने को सिखाते थे और साथ-साथ मुगदर भाँजकर तरह-तरह के खेल दिखलाते थे। घोडे की सवारी अच्छी करते थे और हमेशा एक अच्छा घोड़ा रखा करते थे। बचपन में मुझे और भाई साहब को घोडे की सवारी करना भी उन्होंने सिखाया था। छोटी ही उम्र में हम दोनों भाई दो घोडों पर सवार होकर, कभी-कभी छुट्टियों में जीरादेई आने पर, घूमने-फिरने जाया करते।

लडकपन में हम लोग देहाती खेल भी खेला करते। खास करके वहाँ का प्रचलित खेल कबड्डी और चिक्का तो हम खूब खेलते। प्रायः कोई दिन बिना खेले नहीं बीतता होगा। यह क्रम उस समय तक जारी

रहा जब तक कालेज की पढ़ाई खतम नहीं हुई। जब कभी छुट्टियों में हम जीरादेई आते थे, खेल जरूर खेलते, जिसमें भाई भी शरीक होते। एक खेल और गाँवों में प्रचलित था। उसे 'दोल्हापाती' कहते हैं। उसमें गाछों पर चढ़ना होता है। मैं गाछों पर चढ़ने से डरता था, इसलिए उस खेल में कभी शरीक नहीं हुआ। इसी प्रकार, गाँव में बहती नदी के अभाव में, तैरना भी नहीं सीख सका।

माता और दादी मुझे बहुत प्यार करतीं। बचपन से ही मेरी आदत थी कि मैं संध्या को बहुत जल्द सो जाता था और उधर कुछ रात रहते ही, बहुत सवेरे ही, जाग जाता था। घर पक्का था, पर बना था पुराने तरीके पर। बीच में आँगन और चारों ओर ओसारे और कमरे। कमरों में एक दरवाजा और छप्पर के नजदीक हर कमरे में एक या दो छोटे-छोटे रोशनदान। जाड़ों में खास करके, लम्बी रात होने के कारण, रात रहते ही नींद टूट जाती और उसी समय से माँ को भी मैं सोने नहीं देता। रजाई के भीतर ही भीतर उनको जगाता। वह जाग कर पराती (प्रभाती) भजन सुनातीं। कभी-कभी रामायण इत्यादि की कथाएँ भी सुनातीं। उन भजनों और कथाओं का असर मेरे दिल पर बहुत पड़ता।

इसी प्रकार जब तक रोशनदान में बाहर की रोशनी नजर नहीं आती, पड़ा रहता और माँ से भजन गवाता रहता या कथा कहलाता रहता। जब रोशनी खूब आ जाती तब घर से बाहर निकलता। संध्या को इतना पहले सो जाता कि शायद ही कभी रात का खाना जागते-जागते खाया हो। उन दिनों रात का खाना भी बहुत देर के बाद तैयार होता। बच्चे क्या, बूढ़े लोग भी एक नींद सोकर उठने के बाद ही खाते। शायद ही किसी रात को 12–1 बजे के पहले खाना-पीना होता हो। पहले घर के पुरुष खाते, तब स्त्रियाँ खातीं, और तब नौकर खाते। गरमी के मौसम में तो नौकरों के खाते-खाते कभी-कभी सवेरा

तक हो जाता। इसलिए अगर मैं शाम को बिना खाये सो जाता, तो मैं अपना कोई कसूर मानने को तैयार नहीं हूँ।

घर में रसोई बनाने के लिए एक कायस्थ थे। इसलिए रसोई का भार मेरी चाची या माँ पर नहीं था। तो भी उन्हें तरकारी इत्यादि तो कुछ बनाना ही पड़ता। संध्या होते ही मैं माँ को पकड़ लेता और साथ सोने के लिए रोने लगता। अगर वह किसी काम में लगी रहतीं तो उसे छोड़ मेरे साथ उनको सोना पड़ता। पर मैं समझता हूँ कि यह क्रिया बहुत देर तक नहीं होती; क्योंकि मैं बहुत जल्द सो जाता और जब एक बार सो गया तो वह फिर उठकर चली जातीं और काम करतीं। मुझे स्मरण है कि हमेशा रात को मुझे जगाकर खिलाया जाता। आँखें खुलतीं नहीं, पर बदन हिलाकर माँ मैना-सुग्गा के नाम और क़िस्से कहकर मुँह तो खुलवा देतीं और उसमें भोजन दे देतीं। एक दाई थी जिसको हम काकी कहा करते थे। वह इस प्रकार खिलाने में बडी पटु थी। जब किसी दूसरे की हज़ार कोशिश पर भी आँख और मुँह बन्द ही रहते, तो भी वह किसी-न-किसी उपाय से मुँह तो ज़रूर खोलवा देती और भात खिला देती। साँझ के बाद ही सोने और भोर होते ही जागने की आदत मुझमें बराबर बनी रही। यहाँ तक कि जब मैं छपरे और पटने पढ़ने के लिए गया, तब भी, रात होते-होते ही बहुत जल्द सो जाता और पाँचवें क्लास में पहुँचने के समय तक शायद ही कभी रात में अपने हाथों खाया हो। एक ब्राह्मण रसोईदार थे, जो रात को मझे गोद में बिठाकर उसी पुरानी रीति से, आँखें बन्द रहने पर भी, खुले मुँह में भात के गोले रख दिया करते, जिनको मैं निगल लिया करता था।

जब मैं वकालत करता था तब तक साँझ ही सो जाने की आदत जारी रही। संध्या समय मवक्किलों का कागज़ लेकर देखने बैठता और उनके सामने ही, 7½, 8 बजे ही, झुकने लगता। तब काम बन्द कर देता। 1914–15 में, जब मैं एम. एल. परीक्षा के लिए तैयारी कर रहा था,

एक घटना घटी। उन दिनों कलकत्ता-हाईकोर्ट में मैं प्रैक्टिस करता था। लॉ-कालेज में प्रोफेसरी भी मिल गयी थी। कुछ मुकदमे भी हाथ में रहा करते थे। इसलिए सवेरे का समय मुकदमों की बहस की तैयारी में और लॉ-कालेज की पढाई की तैयारी में लग जाता। दिन का समय कचहरी में कट जाता। केवल रात का समय परीक्षा की तैयारी के लिए मिलता। इसलिए संध्या को ही पुस्तकें पढ़ता और जब पुस्तकें हाथ में आतीं, साथ-साथ नींद भी आ ही जाती।

एक दिन सोचा कि इस प्रकार से तो परीक्षा की तैयारी में सफलता नहीं मिलेगी, किसी तरह संध्या की नींद को रोकना चाहिए और कम से कम नौ बजे रात तक तो पढ़ना ही चाहिए। जब नींद आने लगी तो किताब हाथ में लेकर खड़ा हो गया। उसपर भी जब नींद का हमला कम न हुआ, तो कमरे के अन्दर टहल-टहलकर पढ़ने लगा। मालूम नहीं, कितनी देर तक यह क्रम चला। एकबारगी हाथ से किताब नीचे गिरी और मैं भी साथ धड़ाम से कमरे के फर्श पर चित हो रहा। न मालूम, सिर क्यों नहीं फूटा। कुछ तो चोट जरूर आयी। तब से उस प्रयोग को खतरनाक समझकर छोड़ दिया और जो कुछ समय बैठे-बैठे निकाल सकता उतना ही पढ़कर सब्र करता।

3. मौलवी साहब

पाँचवें या छठे बरस में मेरा अक्षरारम्भ कराया गया था। उस समय मेरे भाई अँगरेजी पढ़ने के लिए छपरे भेजे जा चुके थे। उस समय की प्रचलित प्रथा के अनुसार अक्षरारम्भ मौलवी साहब ने कराया था। जिस दिन अक्षरारम्भ हुआ, मौलवी साहब आये, बिसमिल्लाह के साथ अक्षरारम्भ हुआ, शीरनी बाँटी गयी और उनको रुपये भी दिये गये। ये मुझे और मेरे दो चचेरे भाइयों को पढ़ाने लगे।

मौलवी साहब

मौलवी साहब विचित्र आदमी थे। उनका बहुत बातों पर दावा था। मेरे एक चचा बलदेव प्रसाद बड़े मजाक-पसन्द थे। बडे ही हँसमुख और पुर-मजाक आदमी थे। बलदेव चचा के मजाक के लिए मौलवी साहब एक बहुत ही उपयोगी साधन बन गये। मौलवी साहब का दावा था कि वह शतरंज खेलना जानते थे। बलदेव चचा शतरंज खेलाते, पर बावजूद दावा के मौलवी साहब कभी जीतते नहीं। हम छोटे-छोटे बच्चे इन सारे मजाकों को भय और कौतूहल से देखते। हँसने का मौका आ जाय, तो भी हँसना मुश्किल हो जाता।

एक दिन बलदेव चचा ने मौलवी साहब से कहा कि बाग में हनुमान आ गये हैं, उनको किसी तरह भगाना चाहिए, वे गुलेल से मारकर भगाये जा सकते हैं। इतना कहना था कि मौलवी साहब ने दावा पेश कर दिया कि वह भी गुलेल चलाना खूब जानते हैं। बलदेव चचा तो खूब समझ गये थे कि वह कुछ नहीं जानते, पर मजाक उनको मंजूर था। वह उनको साथ लेकर बगीचे में गये। गुलेल और गोली उनके सुपुर्द कर कहा कि खूब खींचकर एक बन्दर को मारिये। मौलवी साहब ने खूब खींचकर जो गोली छोडी और देखना चाहा कि बन्दर को कैसी चोट लगती है कि इतने में उनके बायें हाथ के अँगूठे से तरतर खून टपकने लगा और चोट के दर्द से सहमकर बैठ गये। गोली बन्दर को लगने के बदले मौलवी साहब के अपने अँगूठे पर ही जा बैठी थी।

इस प्रकार के मजाकों के बीच हम लोग फारसी पढते रहे। कुछ छः आठ महीनों के बाद ये मौलवी साहब चले गये। हम लोग शायद अक्षर सीख चुके थे और करीमा पढ़ने लगे थे। फिर दूसरे मौलवी बुलाये गये जो बहुत गम्भीर थे और अच्छा पढ़ाते भी थे। वही दो बरसों तक रहे और करीमा, मामकीमा, खालकबारी, खुशहालसीमिया, दस्तूरुलसीमिया, गुलिस्ताँ, बोस्ताँ तक हम लोगों को पढ़ा सके। उसी जमाने में हम लोगों ने कैथी लिखना और गिनती करना सीख लिया; पर यह याद

नहीं है कि यह कब और कैसे सीखा। हफ़्ते में साढ़े पाँच दिन फ़ारसी पढ़ते थे। बृहस्पतिवार के दोपहर के बाद और शुक्रवार के दोपहर तक फ़ारसी से छुट्टी रहती थी और इसीमें कैथी अथवा गिनती वगैरह सीखते। इसके अलावा कुछ खेलने-कूदने के लिए भी अधिक समय दिया जाता।

बहुत सवेरे हम लोग उठकर मकतब में चले जाते। सवेरे पहले का पढ़ा हुआ सबक एक बार आमोख्ता करना पड़ता और जो जितना जल्द आमोख्ता कर लेता उसको उतना ही जल्द नया सबक पढ़ा दिया जाता। मैं अक्सर अपने दोनों साथियों से पहले मकतब में पहुँच जाता और आमोख्ता भी पहले खतम करके सबक भी पहले पढ़ लिया करता। यह करते सूर्योदय होकर कुछ दिन भी निकल आता। तब नौकर आता और साथ ले जाकर मुँह-हाथ धुला देता और घर माँ के पास कुछ खिलाने के लिए पहुँचा देता। इसके लिए प्रायः आध घंटे पौन घंटे की छुट्टी मिलती। नाश्ता करके लौटने पर सबक याद करना पड़ता और सबक याद करके सुना देने के बाद मौलवी साहब हुकुम देते, किताब बन्द करो। किताब बन्द करके तख्ती निकालनी पड़ती। इन दोनों क्रियाओं के बीच कुछ समय खेलने-कूदने का भी मिल जाता या दोबारा घर जाकर कुछ खा लेने का भी मौका मिल जाता। तख्ती पर लिखना होता और जब तख्ती भर जाती तो उसे धोना पड़ता। इस क्रिया में भी कुछ समय आपस में हँसने-खेलने का मिलता। दोपहर को नहाने-खाने के लिए एक-डेढ़ घंटे की छुट्टी मिलती और खाकर फिर मक़तब में ही उसी तख्तपोश पर सोना पड़ता। मौलवी साहब चारपाई पर सोते। हम लोगों को अक्सर नींद नहीं आती और तख्तपोश पर लेटे-लेटे शतरंज खेलते और जब मौलवी साहब के जागने का वक्त होता उसके पहले ही गोटियों को उठाकर रख देते।

उसी ज़माने में कभी शतरंज खेलना भी आ गया, पर इसका पता नहीं कि कब, कैसे और किससे सीखा। दोपहर को फिर से दूसरा सबक

मिलता और उसको कुछ हद तक याद करके सुनाने के बाद घंटा-डेढ़ घंटा दिन रहते खेलने के लिए छुट्टी मिलती। इसी समय गेंद, चिक्का इत्यादि खेल खेले जाते। संध्या को फिर चिराग-बत्ती जलते किताब खोल कर पढ़ने के लिए बैठना पड़ता। दिन के दोनों सबक याद करके, फिर सुनाने पड़ते और तब हुक्म होता, किताब बन्द करो। किताब बन्द करके, कायदे के मुताबिक मौलवी साहब को आदाब करके घर जाकर सो जाते। जो कुछ फ़ारसी का ज्ञान हुआ, उसी मौलवी साहब ने दिया। हम सब भी उनको प्यार करने लगे थे। जब घर छोड़ कर छपरे अँग्रेजी पढ़ने के लिए जाना पड़ा, तो मौलवी साहब को और हम लोगों को भी बड़ा दुख हुआ।

4. गाँव का जीवन

उन दिनों गाँव का जीवन आज से भी कहीं अधिक सादा था जीरादेई और जमापुर दो गाँव हैं, पर दोनों की बस्ती इस प्रकार मिली-जुली है कि यह कहना मुश्किल है कि कहाँ जीरादेई खतम है और कहाँ से जमापुर शुरू है। इसलिए आबादी के लिहाज़ से दोनों गाँवों को साथ भी लिया जाय तो कोई हर्ज नहीं। दोनों गाँवों में प्रायः सभी जातियों के लोग बसते हैं। आबादी दो हज़ार से अधिक होगा। उन दिनों भी गाँव में मिलनेवाली प्रायः सभी चीजें वहाँ मिलती थीं। अब तो कुछ नये प्रकार की दूकानें भी हो गयी हैं, जिनमें पान-बीडी भी बिकती हैं। उन दिनों ऐसी चीजें नहीं मिलती थीं, यद्यपि काला तम्बाकू और खैनी बिका करती थी। कपड़े की दूकानें अच्छी थीं, जहाँ से दूसरे गाँवों के लोग और कुछ बाहर के व्यापारी भी कपड़े ले जाया करते थे। चावल, दाल, आटा, मसाला, नमक, तेल इत्यादि वहाँ सब कुछ बिकता था और छोटी-मोटी दूकान दवा की भी थी, जिसमें हर्रे-बहेरा-पीपर इत्यादि तरह-तरह की चीजें मिल सकती थीं। जहाँ तक मुझे याद है, केवल मिठाई की कोई दूकान नहीं थीं। गाँव में कोयरी लोगों की काफी बस्ती है, इसलिए साग-सब्जी भी काफी मिलती थीं। अहीर कम थे,

पर आसपास के गाँवों में उनकी काफ़ी आवादी है, इसलिए दही-दूध भी मिलते थे। चर्खे काफ़ी चलते थे। गाँव में जुलाहों की भी आवादी थी, जो सूत लेकर बुन दिया करते। चुड़िहार चूड़ियाँ बना लेते। बिसाती छोटी-मोटी चीजें, जैसे टिकुली इत्यादि, बाहर से लाकर बेचते और कुछ खुद भी बनाते। मुसलमानों में चुड़िहार, बिसाती, थवई (राज), दर्जी और जुलाहे ही थे। कोई शेख-सैयद नहीं रहता था। हिन्दुओं में ब्राह्मण, राजपूत, भूमिहार, कायस्थ, कोयरी, कुरमी, कमकर, तुरहा, गोंड, डोम, चमार, दुसाध इत्यादि सभी जाति के लोग वसते थे। मेरा खयाल है कि सबसे अधिक बस्ती राजपूतों की ही है। उनमें कुछ तो ज़मीन्दार-वर्ग के हैं, जो पुराने खानदानी समझे जाते हैं और कुछ मामूली किसान-वर्ग के हैं। कायस्थ जीरादेई में ही पाँच घर थे, जिनमें तीन तो हमारे सगे थे और दो सम्बन्ध के कारण बाहर से आकर बस गये थे।

सब कुछ प्रायः गाँव में ही मिल जाता। इसलिए गाँव के बाहर जाने का लोगों को बहुत कम मौका आता था। गाँवों में हफ्ते में दो बार बाज़ार भी लगता था, जहाँ कुछ आसपास के गाँवों के दूकानदार भी अपना-अपना माल-सौदा सिर पर अथवा बैल, घोड़ा या बैलगाड़ी पर लाद कर लाते थे। बाज़ार में मिठाई की दूकान भी आ जाती थी और जो चाहते उनको मछली-मांस भी ख़रीदने को मिल-जाते। जिनकी ज़रूरत इस प्रकार पूरी नहीं होती, वे 'सीवान' जाते। वहीं थाना और मजिस्ट्रेट हैं—कचहरियाँ हैं और दूकानें भी हैं। वह एक कस्बा है, जो देहात के लोगों के लिए उन दिनों बहुत बडी जगह का रुतबा रखता था।

मुझे याद है कि गाँव में बाहर से सगे-सम्बन्धियों के सिवा बहुत कम लोग आया करते थे। मौलवी साहब के यहाँ दो-चार महीने में एक बार एक आदमी फ़ारसी की छोटी-मोटी किताबों की एक छोटी गठरी और एक-दो बोतलों में सियाही (आजकल की ब्लू ब्लैक रोशनाई नहीं) लिये आ जाता था। जब वह आता तो हम बच्चों के कौतूहल का ठिकाना न रहता।

कभी-कभी जाडों में कोई नारंगी-नींबू की टोकरी लिये बेचने आ जाता, तो हम बच्चे इतना खुश होते कि मानों कुछ नायाब मिल गया। एक दिन ऐसा ही एक आदमी आया और मैं दौड़ कर माँ से कहने गया। वहाँ से दौड़ कर जो बाहर आ रहा था कि पैर में ज़ोर से किसी चीज़ की ठोकर लगी, गिर गया। ओंठ में चोट आयी और खून बहने लगा। बहुत दिनों तक उसका चिह्न था। एक बार और किसी चीज़ के लिये दौड़ता हुआ गिर गया था। उसका निशान तो आज तक दाहिनी आँख के नीचे गाल पर मौजूद है। गाँव में फल—आम के दिनों में आम और मामूली तरह से कभी-कभी बाग़ से केले——मिल जाते थे। चचा साहब, जिनको हम लोग नूनू कहा करते थे, छपरे से कभी-कभी अंगूर लाया करते थे। अंगूर आज की तरह खुले आम गुच्छों में नहीं बिका करते थे, काठ की छोटी पेटी में रुई के फाहे के बीच में रख कर बिकते थे और दाम भी काफ़ी लगता था। गाँव के लोग केवल आम और केले ही मौसम में पाते थे।

गाँव में दो छोटे-मोटे मठ हैं, जिनमें एक-एक साधु रहा करते थे। गाँव के लोग उनको भोजन देते हैं और वह सुबह-शाम घड़ी-घंटा बजा कर आरती करते हैं। आरती के समय कुछ लोग जुट भी जाते हैं। कभी-कभी हम लोग भी जाया करते थे और बाबाजी तुलसीदास का प्रसाद दिया करते थे। रामनौमी और विशेषकर जन्माष्टमी में मठ में तैयारी होती थी। हम सब बच्चे काग़ज़ और पन्नी के फूल काट कर ठाकुरबारी के दरवाज़ों और सिंहासन पर साटते थे और उत्सव में शरीक होते थे, व्रत रखते थे और 'दधिकाँदो' के दिन खूब दही-हल्दी एक-दूसरे पर डालते थे।

प्रायः हर साल कार्तिक में कोई-न-कोई पंडित आ जाते, जो एक-डेढ़ महीना रह कर रामायण, भागवत अथवा किसी दूसरे पुराण की कथा सुनाते थे। जिस दिन पूर्णाहुति होती थी, उस दिन गाँव के सब लोग इकट्ठे होते और कुछ-न-कुछ पूजा चढ़ाते। मेरे घर से अधिक पूजा चढ़ती, क्योंकि हम सबसे बड़े समझे जाते थे। अक्सर कथा तो मेरे ही दरवाज़े

पर हुआ करती थी। उसका सारा खर्च हमको ही देना पड़ता था। जब गाँव में पंचायती कथा होती तब गाँव-भर के लोग बारी-बारी से पंडित के भोजन का सामान पहुँचाते, उसमें मेरा घर भी शामिल रहता। हम बच्चे तो शायद ही कथा का कुछ ज्यादा अंश सुन पाते हों; क्योंकि मैं तो सँझौत के बाद ही सो जाता। पर जब आरती होती तो लोग जगाते और प्रसादी खिला देते।

मनोरंजन और शिक्षा का एक-दूसरा साधन रामलीला थी। वह आस्विन में हुआ करती थी रामलीला करने वाली जमात कहीं से आ जाती और पन्द्रह-बीस दिनों तक खूब चहल-पहल रहती। लीला कभी जमापुर में होती, कभी जीरादेई में। लीला भी विचित्र होती। उसमें राम-लक्ष्मण इत्यादि जो बनते, कुछ पढ़े-लिखे नहीं होते। एक आदमी तुलसीदास की रामायण हाथ में लेकर कहता—'रामजी कही, हे सीता'—इत्यादि और रामजी वही दुहराते। इसी प्रकार, जिनको जो कुछ कहना होता उनको बताया जाता और वह पीछे पीछे उसे दुहराते जाते। लोगों का मनोरंजन इस वार्तालाप में अधिक नहीं होता, क्योंकि भीड़ बड़ी लगतीं और सब कारबार प्रायः 100–200 गज़ में फ़ैला रहता। मनोरंजन तो पात्रों की दौड़ धूप और विशेषकर लड़ाई इत्यादि के नाटच में ही होता। उत्तर में रामजी का गढ़ और दक्खिन में रावण का गढ़ बनता अथवा अयोध्या और जनकपुर बनता। जिस दिन जो कथा पड़ती उसका कुछ न कुछ स्वाँग तो होता ही। सबसे बड़ी तैयारी राम-विवाह, लंका-काण्ड के युद्ध और रामजी के अभिषेक—गद्दी पर बैठने के दिन होती। विवाह में तो हाथी-घोड़े मँगाये जाते और बरात की पूरी सजावट होती। लंका-दहन के लिये छोटे-मोटे मकान भी बना दिये जाते जो सच-मुच जला दिये जाते। हनुमान-वानर और निशाचरों के अलग-अलग चेहरे होते जो उनको समय पर पहनने पड़ते और हम बच्चों को वे सचमुच डरावने लगते। वानरों के कपड़े अक्सर लाल होते और निशाचरों के काले।

राम-लक्ष्मण-जानकी के विशेष कपड़े होते और उनके सिंगार में प्राय डेढ़-दो घंटे लग जाते। लीला संध्या समय 4 बजे से 6 बजे तक होती। राम-लक्ष्मण मामूली लोगों की तरह नहीं चलते। उनके कदम बहुत ऊँचे उठते और लड़ाई में पैंतरे देने की तो उनको खास तालीम दी जाती। जिस दिन राजगद्दी होती उसी दिन गाँव-जवार के लोग पूजा चढ़ाते, जो नज़र के रूप में रामजी के चरणों में चढ़ाई जाती। लीलावालों को भोजन के अलावा नगद जो कुछ मिलना होता उसी दिन मिलता। दूसरे दिन फिर राम-लक्ष्मण-जानकी को शृंगार करके बड़े-बड़े लोगों के घरों में ले जाते। स्त्रियाँ परदे के कारण भीड़-भाड़ में लीला देखने नहीं जाया करतीं। इसलिए वहाँ उनकी पूजा होती और उनपर रुपये चढ़ाये जाते।

एक चीज़, जिसका असर मुझपर बचपन से ही पड़ा रामायणपाठ है। गाँव में अक्षरज्ञान तो थोड़े ही लोगों को था। अक्षर पहचानना तो बहुत थोड़े लोग जानते, पर प्रायः प्रतिदिन संध्या के समय कुछ लोग कहीं न कहीं, मठ में या किसी के दरवाज़े पर, जमा हो जाते और एक आदमी रामायण की पुस्तक से चौपाई बोलता और दूसरे सब उसे दुहराते। साथ में झाल और ढोलक भी बजाते थे। जब रामायण का पाठ आरम्भ होता तो वन्दना का हिस्सा तो ज़रूर दुहराया जाता। इस प्रकार अक्षर से अपरिचित रहकर भी गाँव में बहुतेरे ऐसे लोग थे जो रामायण की चौपाइयाँ जानते और दुहरा सकते और विशेष करके वन्दना के कुछ दोहों को तो सभी प्रायः बरज़बान रखते थे।

त्योहारों में सबसे प्रसिद्ध होली है। उसमें अमीर-ग़रीब सभी शरीक होते थे। वसन्त-पंचमी के दिन से ही होली गाना शुरू होता। उसे गाँव की भाषा में 'ताल उठना' कहते थे। उस दिन से होली के दिन तक जहाँ-तहाँ झाल-ढोलक के साथ कुछ आदमी जमा होते और होली गाते। कभी-कभी जीरादेई और जमापुर के लोगों में मुकाबला हो

जाता और एक गीत एक गाँव के लोग जैसे ही खतम करते, दूसरें गाँव के लोग दूसरा शुरू करते। कभी-कभी आसपास के दूसरे गाँवों के लोग भी गोल बाँधकर आ जाते और इस प्रकार का मीठा प्रतियोग बड़े उत्साह से हुआ करता।

मुझे याद है कि एक बार दो गाँवों में बाजीं-सी लग गयी और रात-भर गाते-गाते सवेरे सूर्योदय के बाद तक लोग गाते हीं रह गये, और तब उनको कहकर हटाया गया। इस गाने में जो आदमी ढोलक बजाता है उसे काफ़ी मेहनत पड़तीं है और वह पसीने-पसीनें हो जाता है। एक गाँव में ढोलक बजानेवाला एक ही आदमी था। वह सारीं रात बजाता रह गया! उसके हाथों में छाले पड़ गये, पर वह कहाँ रुकने वाला था, गाँव की इज़्ज़त चली जातीं! छाले उठे और फूट गये और इस प्रकार रात-भर में कई बार छाले उठे और फूटे, पर उसने गाँव कीं इज़्ज़त नहीं जाने दी। यह बात दूसरे दिन प्रतियोगिता खतम होने पर सवेरे मालूम हुई और सब लोगों ने उसकी हिम्मत कीं सराहना की।

होली के दिन बहुत गन्दा गाली-गलौज हुआ करता। उसमें बूढ़े और जवान और लड़के भी एक साथ शामिल होते। गाँव के एक कोने से एक जमात चलती, जो प्रायः हर दरवाज़े पर खड़ी होकर नाम ले-लेकर गालियाँ गाती और गन्दी मिट्टी, धूल और कीचड़ एक दूसरे पर डालती गाँव के दूसरे सिरे तक चली जाती। यही एक अवसर था जब बड़े-छोटे का लिहाज़ एकबारगी उठ जाता था। बड़े-छोटे केवल उम्र में ही नहीं, जाति और वर्ग की बड़ाई-छोटाई भी उठ जाती थीं। चमार, ब्राह्मण और राजपूत एक दूसरें को गालियाँ सुनाते और एक दूसरे पर कीचड़ फेंकते। जब कोई नया आदमी साफ़-सुथरा मिल जाता तो उसकी जान नहीं बचती, मानों उसे भी कीचड़ लगाकर जाति में मिला लेना सभी अपना फ़र्ज़ समझतें थें। यह धुरखेल दोपहर तक जारी रहता। उसके बाद सभी स्नान करते और घर-घर में पूजा होती। उस दिन का विशेष

भोजन पूरी-मालपुआ है। गरीब लोग भी किसी न किसी प्रकार कुछ प्रबन्ध कर ही लेते। भोजन के बाद दोपहर को गुलाल और अबीर से रंग खेला जाता। सब लोग सफ़ेद कपड़े पहनते। उसपर लाल-पीले रंग डाले जाते, अबीर और अबरख का चूर्ण छिड़का जाता। गरी-छुहारा, पान-कसैली बाँटी जाती और ख़ूब होली गायी जाती।

दीवाली भी अच्छी मनायी जाती थीं। दशहरा तो ख़ास करके ज़मीन्दारों का त्योहार माना जाता था। पर नवरात्र में कभी-कभी कालीजी की पूजा हुआ करतीं थी। उसके लिए मूर्ति लायी जाती और बड़ी धूमधाम से पूजा होती।

इनके अलावा एक और त्योहार था जिसमें सभी लोग शरीक होते थे। वह था अनन्तचतुर्दशी का व्रत। यह भादों सुदी चतुर्दशी को हुआ करता था। दोपहर तक का ही व्रत था। दोपहर को कथा सुनने के बाद पूरी-खीर खाने की प्रथा थी और संध्या को कुछ नहीं खाना होता था। सूर्यास्त के बाद पानी भी नहीं पिया जाता था। इस व्रत में हम सब बच्चे भी शरीक होते। कथा समाप्त होने पर एक क्रिया होती जो बच्चों के लिए बहुत मज़ाक की चीज़ होती। एक बड़े थाल में एक या दो खीरे रख दिये जाते और थोड़ा जल उसमें पंडित डाल देते। सभी कथा सुननेवाले उस थाल में हाथ डालते और पंडित पूछते—क्या ढूंढते हो और लोग जवाब देते—अनन्त फल। तब फिर पंडित पूछते—पाया और उत्तर मिलता—पाया। पंडित कहते, सिर पर चढ़ाओ और सब लोग जल अपने सिर पर छिड़कते। यह क्रिया समाप्त होने पर सभी लोगों को अनन्त, जो सूत में चौदह गाँठ देकर बनाया जाता था, दिया जाता और वे उसे अपनी बाँह पर बाँध लेते। हम बच्चों के लिए सुन्दर रंगीन, कभी-कभी रेशम का अनन्त पटहेरे के यहाँ से खरीद करके आता। कोई-कोई साल-भर बाँह पर अनन्त बाँधे रहते थे; इसलिए वे अपना अनन्त अपने हाथों मज़बूत और काफ़ी लम्बा बनाते जिसमें वह सुभीते से

बाँधा जा सके। इस प्रकार जो अनन्त बाँधता वह मांस-मछली नहीं खाता था। इसी प्रकार, जो तुलसी की लकड़ी की माला या कंठी पहनता, वह भी मांस-मछली नहीं खाता।

कथा, रामलीला, रामयण-पाठ और इन व्रत-त्योहारों द्वारा गाँव में धार्मिक जीवन हमेशा जगा रहता था। इनके अलावा मुहर्रम में ताजिया रखने का भी रिवाज था। इसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल होते थे। जीरादेई और जमापुर में कुछ हिन्दू ही कुछ सम्पन्न थे, इसलिए उनका ताजिया गरीब मुसलमानों के ताजिया से अधिक बड़ा और शानदार हुआ करता था। मुहर्रम-भर प्रायः रोज़ गदका, लाठी, फरी वगैरह के खेल लोग करते और पहलाम के दिन तो बहुत बड़ी भीड़ होती। गाँव-गाँव के ताजिया कर्बला तक पहुँचाये जाते। तमाम रास्ते में 'या अली, या इमाम' के नारे लगाये जाते और गदका इत्यादि के खेल होते। बड़ा उत्साह रहता और इसमें हिन्दू-मुसलमान का कोई भेद नहीं रहता। शीरनी और तिचौरी (भिगोया हुआ चावल और गुड़) बाँटी जाती। सभी उसे लेते और खाते; पर हिन्दू लोग मुसलमानों से पानी या शर्बत छुलाकर नहीं पीते। मुसलमान भी इसे बुरा नहीं मानते। वे समझते थे कि यह हिन्दुओं का धरम है, इसलिए वे स्वयं हट जाते।

जिस तरह हिन्दू मुहर्रम में शरीक होते उसी तरह मुसलमान भी होली के शोरगुल में शरीक होते। हम बच्चे दशहरा, दीवाली और होली के दिन मौलवी साहब की बनायी 'ईदी' अपने बड़ों को पढ़कर सुनाते और उनसे रुपये माँगकर मौलवी साहब को देते। ईदी कई दिन पहले से ही हम याद करते। कागज़ पर, मौलवी साहब की मदद से, सुन्दर फूल बनाकर उसे लाल, हरे, नीले और बैंगनी रंगों से रँगते। उसी पर मौलवी साहब सुन्दर अक्षरों में ईदी लिख देते जिसे हम लोग पढ़कर सुनाते। उसमें जो लिखा जाता वह भी कुछ अजीब संमिश्रण होता। जैसे, दीवाली की ईदी में लिखा होता—'दीवाले आमदे हंगाम जूला' इत्यादि; दशहरे

की ईदी में लिखा जाता—'दशहरे को चले थे रामचन्दर, बनाकर रूप जोगी वो कलन्दर' इत्यादि। मुशाहरे के अलावा मौलवी साहब को, प्रत्येक बृहस्पतिवार को कुछ पैसे जुमराती के रूप में और त्योहारों पर ईदी के वदले में, कुछ मिल जाया करता था।

5. अंग्रेज़ी-शिक्षा शुरू

मैं पहले कह चुका हूँ कि भाई के कारण मेरे लिए सब बातों में रास्ता साफ़ हो जाता था। मेरे बहुत छुटपन में ही भाई को पढ़ने के लिए पहले 'सीवान' भेजा गया। वहाँ कुछ दिनों तक वह रहे, मगर वहाँ कोई ठीक सुविधा नहीं जमी। भाई छपरे भेज दिये गये और वहाँ ज़िला-स्कूल में नाम लिखाकर पढ़ने लगे। जब छुट्टियों में वह घर आते तो हम लोगों से छपरे और स्कूल की बातें कहते। हम बच्चे बहुत उत्सुकता से उन्हें सुनते। शायद उस समय तक मैं अपने होश में जवार के कुछ गाँवों के सिवा, जहाँ कभी-कभीं रामलीला या दूसरा कोई मेला देखने गया होऊँ, और कहीं नहीं गया था। हाँ, सुनता हूँ कि वहुत बचपन में माँ के साथ ननिहाल गया था, जो वलिया-ज़िले में हमारे गाँव से प्रायः 18–20 कोस की दूरी पर है; पर उसका मुझे कुछ भी स्मरण नहीं है।

छपरे में मेरे पढ़ने की बात तय हो जाने के बाद नूनू ने एक बार मुझे वहाँ ले जाकर सब कुछ दिखला देना अच्छा समझा, और साथ ले गये। मैं छपरे में कुछ दिनों तक भाई के साथ ठहरा और फिर घर वापस चला आया। मुझे जहाँ तक स्मरण है, यही पहला अवसर था जब मैं रेल पर चढ़ा था। पर इस यात्रा में स्कूल में मैं दाखिल नहीं हुआ। जीरादेई लौटकर मौलवी साहब के पास फिर पढ़ने लगा। इसी बीच एक दुर्घटना हो गयी—नूनू की मृत्यु हो गयी।

उनकी मृत्यु से घर में बड़ा कोलाहल मचा। बाबा के वह एक ही पुत्र थे। घर का प्रायः सब कारबार बाहर-भीतर वही सँभालते थे।

बाबा की अवस्था प्राय: सत्तर बरस की थी; पर वह अभी 45 से अधिक नहीं रहे होंगे। बाबूजी घर के कारबार में कम ही दिलचस्पी लिया करते थे। इसलिये और भी सब कुछ अव्यवस्थित हो चला। फलत: कुछ दिनों के लिये मेरा छपरा भेजा जाना रुक गया।

प्राय: एक-डेढ़ साल के बाद मैं छपरे भेजा गया। छपरे में एक छोटा-सा मकान, तीन या चार रुपये मासिक भाड़े पर, ले लिया गया था। वहीं भाई, एक नौकर और रसोई बनानेवाले एक कायस्थ के साथ रहते थे। कुछ दिनों तक शुरू में उनको पढ़ाने के लिए एक मास्टर भी रखे गये थे, पर जब मैं पहुँचा तब दूसरा कोई नहीं था। मैं भी उनके साथ रहने लगा। मेरे छपरा पहुँचने के कुछ ही दिनों बाद ज़िला-स्कूल के आठवें दर्जे में, जो उन दिनों सबसे आरम्भिक दर्जा था, मेरा नाम लिखा दिया गया। मैंने वहीं ए बी सी और नागरी अ आ इ ई की एक साथ शिक्षा आरम्भ की। भाई उस समय दूसरे दर्जे से तरक्की पाकर औवल दर्जे अर्थात् एण्ट्रेन्स क्लास में पहुँचे थे। मेरे लिये कोई मास्टर नहीं रखा गया। मैं स्कूल की पढ़ाई के अलावा अगर कुछ पूछना होता तो भाई से पूछ लेता। घर पर मुझे पढ़ाने के लिए मास्टर का न रखना बहुत अच्छा हुआ। स्कूल की पढ़ाई पर खूब ध्यान देने की आदत लग गयी। आरम्भिक काल से ही अपने ऊपर कुछ भरोसा करना भी आ गया। साल के अन्त में भाई एण्ट्रेन्स-परीक्षा की तैयारी कर रहे थे और मैं अपना सालाना इम्तहान दे रहा था। इम्तहान में मेरा बहुत अच्छा नम्बर आया। मैं अपने दर्जे में औवल हुआ और नम्बर भी इतना ज़्यादा आया कि हेडमास्टर ने मुझे डबल तरक्की देने की बात सोची।

फलत: सातवाँ लाँघकर मुझे छठे क्लास में उन्होंने भेज दिया। थोड़े ही दिनों के बाद भाई परीक्षा देने पटने गये और परीक्षा देकर ज़ीरादेई चले गये। मैं उस समय से छपरा डेरे पर अकेले, नौकर और रसोइया के साथ, रहता। हाँ, मेरे मकतब के साथी जमुना भाई और

गंगा भाई भी छपरे आ गये थे और स्कूल में नाम लिखा लिये थे। हम तीनों वहाँ भी साथ ही रहते और पढ़ते थे। उस समय मेरी अवस्था शायद 10–11 के बीच की होगी।

भाई एण्ट्रेन्स पास हो गये। पटने में कालेज में उनके पढ़ने की बात हुई और वह पटने जाने लगे। राय ठहरी कि मैं भी पटना उनके साथ ही चला जाऊँ और ऐसा ही हुआ। हम तीनों सहपाठी, भाई के साथ, पटने गये भाई ने पटना-कालेज में नाम लिखाया और हम लोगों के नाम टी. के. घोष एकेडेमी में, जो उन दिनों बड़ा अच्छा स्कूल समझा जाता था और जिसमें बहुत लड़के पढ़ते थे, लिख दिये गये।

पटने में प्रायः दो बरस बीत गये। भाई ने एम. ए. की परीक्षा दी और मैं छठे से पाँचवें और पाँचवें से चौथे दर्जे में पहुँच गया। इम्तहान देकर भाई घर चले गये। मैं, जमुना भाई और गंगा भाई पटने में नौकर के साथ अकेले ही दो-तीन महीने तक रहे। जब गर्मी की छुट्टी हुई, हम लोग घर आये।

6. विवाह

मुझे ठीक याद नहीं है कि मैं पाँचवें दज में पढ़ता था या चौथे में आ चुका था जब मेरी शादी हुई—शायद मैं पाँचवें में ही पढ़ता था। गर्मी की छुट्टी में ही शादी हुई थी। जब हम लोग छपरे में पढ़ते थे तभी बाबा की मृत्यु और हमारी दादी की भी मृत्यु हो चुकी थी। उन लोगों की बीमारी का हाल पाकर हम सब छपरे से जीरादेई आ गये थे और हम सबके सामने ही दोनों—थोड़े ही दिनों के अन्तर में—चल बसे थे। इसलिए अब मेरे पिताजी ही घर के मालिक थे। मेरी शादी का इन्तज़ाम उनको ही करना पड़ा था।

मेरे ससुर आरा में मुख्तार थे और उनके एक छोटे भाई बलिया में वकालत करते थे। दोनों भाई जीरादेई आये थे। मुझे बाबूजी ने अन्दर

माँ के पास से बुलवाया। उन लोगों ने देखा—कुछ सवाल भी किये और पसन्द करके चले गये। कुछ दिनों के बाद तिलक आया जिसमें प्रथा के अनुसार कपड़े बर्तन इत्यादि के अलावा रुपये भी आये। जहाँ तक मुझे स्मरण है, रुपये के लिये बाबूजी ने कुछ ज्यादा ज़ोर नहीं दिया था। तो भी उन लोगों ने प्रायः दो हज़ार, नगद और सामान मिलाकर, भेजा था। मेरी अवस्था 12 बरस से कुछ अधिक की थी।

उन दिनों 2,000 रुपये का तिलक अच्छा तिलक समझा जाता था। आजकल तो पाँच हज़ार, सात हज़ार भी हम लोगों की औकात के लोग कम मानते हैं। जितना ज़्यादा तिलक हो उतनी ही अधिक बरात की तैयारी होनी चाहिए और लड़की के लिये उतना ही ज्यादा जेवर जाना चाहिए। मेरी शादी के समय पिताजी की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। एक तो तीन-चार बरसों में एक पर एक तीन मृत्युएँ हो चुकी थीं और उनके प्रत्येक के श्राद्ध में काफ़ी खर्च हो चुका था। दूसरे, अकाल के कारण, ज़मीन्दारी से वसूली कम हो गयी थी। खर्च बढ़ गया था। हम लोगों के पढ़ने के लिए छपरे और पटने में प्रतिमास कुछ न कुछ नगद भेजना ही पड़ता था। एक मुकद्दमा जो बहुत दिनों से चला आता था, उसकी पेशी बहुत दिनों तक चली थी और उसमें भी बहुत खर्च पड़ा था। इन सब तरद्दुदों के रहते हुए भी शादी में खर्च करना ही था, क्योंकि इसीमें घर की प्रतिष्ठा थी।

जहाँ तक जेवर वगैरह का खर्च था वह तो उन्होंने खूब किया। दूसरी तैयारी में भी वह कमी नहीं करना चाहते थे, क्योंकि उनके ज़माने में यही पहली शादी थी। और, अगर पुरानी मिकदार से खर्च न हुआ, शान-शौकत न हुई, तो लोग कहेंगे कि भैयाजी (मेरे बाबा को सब लोग उसी नाम से पुकारा करते थे) के मरने के बाद ही घर की शान में कमी आ गयी। इसलिये बाबूजी का विचार था कि किसी तरह से यह शादी शान में कम न हो।

हमारे यहाँ शादी में जलूस के लिए हाथी-घोड़े मँगनी माँगकर लाये जाते हैं। और भी जलूस की चीज़ें मँगनी लायी जाती हैं। शादी का दिन ऐसा पड़ा जिस दिन बहुत कड़ा लगन था। गाँव की भाषा में 'कड़ा लगन' उसे कहते हैं जिसमें ग्रह अच्छे पड़ने के कारण मुहूर्त बहुत अच्छा पड़ता है और बहुत लोग उस दिन को शादी करना शुभ समझते हैं। जिस दिन कड़ा लगन पड़ता है उस दिन मँगनी के सामान मिलने में कठिनता होती है, क्योंकि बहुत लोग मँगनी माँगते हैं। मेरी बरात के लिए बहुत हाथी-घोड़े माँगे गये, मगर कड़ा लगन के कारण पहुँच नहीं सके। एक ही हाथी और दो-चार घोड़े पहुँच सके।

मेरी शादी बलिया ज़िले के दलन-छपरा में, जीरादेई से 18–20 कोस की दूरी पर, होनेवाली थी। दो दिनों का रास्ता था। बीच में सरजू (गोगरा) नदी थी जिसे नावों पर पार करना था। बरात जीरादेई की रस्मों को समाप्त करके रवाना हुई। हाथी-घोड़े कम होने के कारण पालकी की सवारी अधिक लेनी पड़ी और बैलगाड़ियों पर सामान चला। मैं एक ख़ास किस्म की पालकी पर, जिस पर वर जाया करते हैं, चला। घर में एक बड़ा घोड़ा था, भाई उसी पर चले। वह सबको रवाना करके सबसे पीछे चले, और जहाँ दोपहर को खाने का स्थान मुकर्रर था वहाँ सबसे पहले पहुँच गये। इन्तज़ाम में वह बहुत भाग ले रहे थे। बाबूजी पालकी पर थे। कुटुम्ब और सम्बध के दूसरे लोग पालकी या दूसरी सवारियों पर थे।

वर की पालकी बहुत बेढंगी हुआ करती है। उसमें ऊपर से साये के लिए छत नहीं होती, पर कपड़े की छँहियाँ बाँध दी जाती है। जेठ के महीने में शादी थी। गरमी ख़ूब पड़ रही थी। गर्म हवा भी ख़ूब चल रही थी और मुझे उस पालकी पर जाना था। हवा से वह छँहियाँ भी उड़ जाती। पालकी चाँदी की थी, इसलिए वज़न काफ़ी था। कहारों को वज़न सँभालना ही कठिन था और उसपर हवा के मारे छँहियाँ बैलून का

काम करती; बेचारे बहुत मुश्किल में थे। मैं धप और हवा दोनों का शिकारथा।

किसी तरह दिन कटा और रात को सरजू के किनारे के गाँव में डेरा पड़ा था। कच्ची पक्की रसोई बनी। सब लोगों ने भोजन किया। सवेरे सरजू पार करने का काम शुरू हुआ। सामान, पालकी, बैलगाड़ी, बैल, घोड़े इत्यादि तो नावों पर लादे गये और हाथी को यों ही तैराकर पार कराने का प्रयत्न होने लगा। वह हाथी भी कुछ वैसा ही था; वह नदी नहीं पार करना चाहता था। कुछ दूर जाता और फिर वापस आ जाता। फिर कई नावों के बीच में करके पार कराने का प्रयत्न हुआ, पर सब बेकार गया। अन्त में राय ठहरी कि उसे छोड़ देना चाहिए और बरात बिना हाथी के चली। बाबूजी को इसका बड़ा अफ़सोस था कि बरात में एक हाथी भी नहीं गया। जहाँ मेरी शादी हो रही थी उससे थोड़ी ही दूर पर बाबूजी की भी शादी हुई थी। उस समय बाबा हथुआ के दीवान थे और उस बरात में पचासों हाथी गये थे। बाबूजी को यह बात बहुत अखरती कि जहाँ उनकी शादी में पचासों हाथी गये वहाँ उनके लड़के की शादी में एक भी हाथी न पहुँच सका। मगर करना क्या था। बरात वापस तो हो नहीं सकती। हाथी के झमेले में इतना समय लगा कि उस गाँव में पहुँचने में रात हो जायगी, ऐसा भय मालूम होने लगा।

बरात बहुत तेज़ी से चली और जहाँ दोपहर को पहुँचना था वहाँ पहुँचते-पहुँचते तीन-चार बज गये। वहाँ भोजन वगैरह करके बरात आगे बढ़ी। रात हो गयी। इस बीच में एक घटना हो गयी। बरात जब गाँव से एक-दो मील पर थी कि दो-तीन हाथी आते हुए नजर आये। वे किसी दूसरी बरात में गये थे और उसकी रसम पूरी करके कहीं जा रहे थे। पीलवानों से बात हुई। उनको कुछ रुपये दिये गये और वे

बरात में शामिल होने को राज़ी हो गये। इस तरह हाथी का हौसला तो एक प्रकार से पूरा हो गया, पर बरात पहुँचते-पहुँचते रात के 10–11 बज गये।

वहाँ लोग घबरा रहे थे—कुढ़ रहे थे। अन्त में बरात पहुँची। मेरी आदत सही-शाम को ही सोने की थी, जो शादी के कारण कुछ छूटने-वाली थी नहीं। मैं बरात पहुँचने के पहले ही पालकी में खूब सो गया था। पहुँचने के समय किसी तरह मैं जगाया गया और परिछावन की रसम अदा हुई। शादी की दूसरी रस्में भी एक-एक करके पूरी की गयीं। गरमी में दो दिनों का सफ़र और वह भी पालकी में। साँझ ही सोने की आदत और उसपर इतनी थकावट। मेरे लिए जागते रहना कठिन समस्या थी। सब रस्में हो गयीं। और मेरा शुभ विवाह भी उसी रात को हो गयी। मुझे आज वे रस्में भी पूरी तरह याद नहीं हैं और न यह याद है कि उनमें मेरा क्या हिस्सा रहा। लड़कपन में मेरी बहन गुड़ियों के विवाह का खेल किया करती और उसमें मैं भी शरीक हुआ करता था। यह विवाह मेरे लिए कुछ वैसा ही था। मैंने न तो विवाह महत्व को समझा और न यह महसूस किया कि मेरे ऊपर कोई ज़िम्मेदारी आयी। मेरा हाथ न विवाह का निश्चय करने में रहा था और न इन रसमों में। जो कुछ पंडितों या हजाम या अपने घर की अथवा ससुराल की स्त्रियाँ बताती गयीं वह करता गया और अन्त में लोगों ने समझ लिया कि मेरा विवाह हो गया! मुझे तो इतना भी ज्ञान नहीं हुआ कि क्या हुआ। हाँ, इतना समझ गया था कि मेरी भौजाई जिस तरह घर में आ गयी थीं, उसी तरह एक दिन कोई मेरी बहू भी आ जायगी।

हमारे यहाँ यह भी चाल है कि कहीं-कहीं शादी के बाद ही लड़की को नहीं लाते हैं। कुछ दिनों के बाद एक छोटी-मोटी दूसरी बरात

जाती है और तब लड़की लायी जाती है। इसे 'दुरागमन' कहते हैं। मेरी शादी के बाद भी बहू साथ नहीं लायी गयी। एक बरस के बाद दुरागमन की बरात गयी और तब वह लायी गयी। बरात दो दिनों तक ठहरकर वापस आयी। ससुराल के लोग, देर करके बरात पहुँचने और उनकी आशा के अनुकूल पूरी शानशौकत की न होने के कारण, कुछ रंज थे। पर जब उन्होंने जेवर, कपड़े, मिठाई वगैरह—जो लड़की के लिए और दूसरों के लिए वर की ओर से दिये जाते हैं—देखा तब उनका रंज दूर हो गया और सब लोग ख़ुश हो गये। मैं समझता हूँ कि वर को देख कर भी घर की स्त्रियाँ और दूसरे आये हुए लोग ख़ुश हुए होंगे, यद्यपि मेरे पास इसका कोई सबूत नहीं है।

एक साल के बाद दुरागमन हुआ और बहू घर में आयी। दुरागमन की बरात शादी की बरात से छोटी हुआ करती है। इस बार एक या दो हाथी मिल गये थे और बरात में गये भी थे। हमारे यहाँ पर्दा बहुत सख़्त होता है। मैंने देखा था कि जब मेरी भौजाई आयीं तो उनके साथ दो लौंडियाँ आयी थीं और वह केवल उन दोनों से ही बातें कर सकती थीं! जीरादेई में एक कमरे में रहती थीं। कभी ओसारे में भी निकलने की इजाज़त नहीं थी! उन दिनों ऐसे ही पुरुष नौकर घर के अन्दर जा सकते थे जो उम्र में बहुत कम होते थे और जिनका जन्म हमारी माँ-चाची के सामने गाँव में हुआ था और जो बहुत बचपन से अपनी माँ के साथ आँगन में आया-जाया करते थे। जो सयाने नौकर थे वे भीतर नहीं जाते थे। एक रसोईदार था जो रसोई बनाने के लिए आँगन में जाता था। मगर वह भी जाने के पहले पुकार लेता और हमारी माँ-चाची कमरों में चली जातीं तब वह जाता और रसोईघर में घुस जाता। वहाँ से अगर किसी चीज़ की ज़रूरत होती तो वह किसी लौंडी को पुकार कर माँग लेता और बाहर जाने के समय फिर उसी तरह पुकार कर सबको हटा देने के बाद ही वह बाहर जाता।

मेरी भौजाई तो कमरे से बाहर निकलती ही न थीं। हाँ, नित्य-क्रिया के लिए जाने के समय पहले सब लोग हटा दिये जाते। लोगों में दूसरा कोई शामिल नहीं था—सिर्फ़ जीरादेई की लौंड़ियाँ थीं! मर्द सूरत तो कोई आँगन में रहता ही नहीं था। अगर कोई छोटा लड़का होता तो वह भी हटा दिया जाता। इतने से भी काफ़ी पर्दा नहीं होता और उनके नैहर की दाइयाँ कपड़े का पर्दा लगाकर उनको ले जातीं। मैं बहुत छोटा था। इसलिये मैं कभी खेलता-कूदता उनके कमरे में चला जाता और शायद दो-एक बार उनका मुँह भी मैंने देख लिया था। मेरी माँ, चाची और बहन भी जब उनके कमरे में जातीं तो वह घूँघट तान के बैठ जातीं। जीरादेई की कोई दाई भी वहाँ जाने नहीं पाती थी।

जब मेरी स्त्री दुरागमन के बाद आयीं तो उनके साथ भी यही सब बखेड़ा रहा। यह बहुत दिनों तक चला और आहिस्ता-आहिस्ता कम हुआ। नैहर की लौंड़ियाँ चली गयीं। जीरादेई की एक लौंड़ी आने-जाने लगी। उससे कुछ-कुछ बातें करने की इजाजत हुई। जब तक मेरी माँ जीतीं रहीं तब तक न तो मेरी भौजाई और न मेरी स्त्री ही कभी अपने कमरे से निकल आज़ादी के साथ आँगन में घूम-फिर सकीं या बैठ सकीं। मेरी हालत यह थी कि मैं जब कभी गाँव पर छुट्टियों में आता, बाहर ही सोता। रात के समय जब सब लोग सो जाते तो माँ दाई को भेजतीं कि जगा लाओ और वह जगाकर मुझे ले जातीं और उस कमरे में छोड़ देतीं जिसमें मेरी पत्नी रहतीं। नींद के मारे मुझे उस वक्त रात को जागना कठिन हो जाता। अक्सर मैं, कितनी भी कोशिश होतीं, जागता ही नहीं। दूसरे दिन माँ या चाचीं डाँटतीं कि रात को जागते नहीं और बुलाने पर भीं आते नहीं। सवेरे जब सब लोग सोये ही रहते उठकर चला आना होता और बाहर की चारपाई पर सो जाता जिसमें किसी को यह पता न चले कि रात को कहीं दूसरीं जगह गया था! यहाँ तक कि साथ के नौकर को भीं इसका पता कम ही लगता।

7. हथुआ-स्कूल में दाखिल—छपरा-स्कूल में वापस

भाई एफ. ए. की परीक्षा पास कर गये। उनकी इच्छा हुई कि वह कलकत्ते में जाकर मेडिकल कालेज में पढ़ें। उन दिनों बिहारी लोगों में शायद ही कोई मेडिकल कालेज में पढ़ता था। एक तो कलकत्ता जाना और वहाँ का खर्च जुटाना ही मुश्किल। दूसरे वहाँ बिहारियों के लिये जगह मिलनी भी मुश्किल! जब उनके कलकत्ते जाने की बात तय हो गयी तो सवाल हुआ कि मैं कहाँ पढ़ूँ। मेरे लिए कलकत्ता जाना उचित नहीं समझा गया। भाई कलकत्ते गये, मैं पटने से नाम कटाकर हथुआ-स्कूल में नाम लिखाने के लिए भेजा गया। वहाँ की हालत कुछ विचित्र थी। पढ़ाने-लिखाने का तरीका छपरा-जिला-स्कूल और पटना टी. के. घोष एकेडेमी से कुछ जुदा था। पहले तो नाम लिखाने में ही थोड़ी दिक्कत हुई। मास्टर ने कहा कि वह परीक्षा लेकर नाम लिखेंगे।

खैर, किसी तरह नाम लिखा गया। पढ़ाई का तरीका यह था कि जो कुछ सबक दिया जाता था, खास करके इतिहास में, उसे दूसरे दिन कण्ठस्थ करके आना चाहिए और मास्टर साहब कहते, सबक सुनाओ, और सब शुरू से आखिर तक किताब बन्द करके ज़बानी सुनाना पड़ता। मेरी आदत इस प्रकार बिना समझे-बूझे किसी चीज़ को ज़बानी रटने या सुनाने की नहीं थी और शाब्दिक स्मरणशक्ति भी कमज़ोर थी। मैं प्रायः छः महीने तक उस स्कूल में रहा, पर शायद एक दिन भी सबक पूरा याद नहीं कर सका।

अन्त में मैं बहुत बीमार पड़ गया और सालाना इम्तहान के समय तक बीमार ही रहा। सालाना इम्तहान शायद दे देता तो किसी प्रकार पास भी कर जाता और तरक़्क़ी भी हो जाती। छुट्टियों म भाई घर आये और सब हाल उन्होंने देखा-सुना तो उनकी राय हुई कि सालाना इम्तहान देकर तरक़्क़ी लेने की ज़रूरत नहीं है, इस स्कूल को छोड़कर छपरा-जिला-स्कूल में फिर वापस जाना ही अच्छा होगा। ऐसा ही

निश्चय हुआ और मैं वहाँ से फिर छपरा-स्कूल में चौथे क्लास में ही दाखिल हुआ।

उधर भाई साहब की भी अजीब हालत रही। मेडिकल कालेज में किसी कारण से उनका नाम नहीं लिखा गया और वह फिर पटने में वापस आकर बी. ए. क्लास में पढ़ने लगे। चूँकि मेरा नाम हथुआ-स्कूल में लिखा जा चुका था, वहाँ से तुरन्त फिर पटने ले जाना उचित नहीं समझा गया और छः महीनों तक मैं हथुआ में ही रहा।

स्कूल की पढ़ाई पर ही मैं भरोसा रखता था। घर पर पढ़ाने के लिए कभी कोई मास्टर नहीं रखा गया था। हथुआ की पढ़ाई की परेशानी के कारण हैरान होकर मैं एक मास्टर के घर पर जाया करता जो एक प्रकार के सम्बन्धी भी होते थे। वह पढ़ा भी दिया करते, पर सबक एक दिन भी मैं पूरा नहीं कर सका। उस स्कूल से चला आना मेरे लिए एक बड़ी बात हुई। छपरा पहुँचते ही मानो खोई हुई बुद्धि फिर लौट आयी। चौथे दर्जे में छपरा-स्कूल में बहुत लड़के थे, इसलिए उसके तीन भाग हो गये थे। वहाँ एक बंगाली मास्टर श्री रसिकलाल राय थे। वह एक सेक्शन के, जिसमें मैं था, क्लास-मास्टर थे। बड़े सज्जन थे। पढ़ाने का तरीक़ा भी बहुत अच्छा था।

रसिक बाबू मुझे विशेष प्यार करने लगे। मैं इतने लड़कों के बीच किसी भी परीक्षा में अभी औवल स्थान नहीं पा सकता था, पर रसिक बाबू ने मुझसे उन्हीं दिनों कहा कि देखो मेहनत करो—अन्त में तुम्हारा और रामानुग्रह का ही मुकाबला रहेगा और दूसरे साथी तेज़ होने पर भी तुमसे नीचे हो जायँगे। न मालूम उन्होंने क्यों ऐसा कहा। पर बात ऐसी ही हुई—केवल उनकी भविष्यवाणी पूरी होने में दो-तीन साल लग गये। सालाना इम्तहान में मेरा स्थान चौथा हुआ। कुछ इनाम मिला, मगर दूसरों को अधिक मिला।

तीसरे से दूसरे दर्जे में तरक्की हुई और सालाना इम्तहान में मैंने तीसरा स्थान पाया। इसी प्रकार दूसरे से औवल दर्जे में जाने के पहले जो परीक्षा हुई उसमें मैं औवल और रामानुग्रह दूसरे स्थान में आये। रसिक बाबू की बात पूरी हुई।

उन दिनों तीन प्रकार की छात्रवृत्तियाँ मिला करती थीं। दो या तीन दस रुपयों की, जो ज़िले-भर में औवल दो या तीन लड़कों को— दूसरी दो या तीन पन्द्रह रुपये मासिक की, जो डिवीजन-भर में, जिसमें उन दिनों आजकल के पटना और तिर्हुत डिवीजनों के सात ज़िले शामिल थे, औवल दो या तीन लड़कों को—और तीसरी 20 रुपये मासिक की, जो सारी युनिवर्सिटी भर में औवल दस लड़कों को मिलती थीं। बिहार-सूबा बंगाल का हिस्सा था और कलकत्ता युनिवर्सिटी का अधिकार बंगाल, बिहार, उड़ीसा, आसाम और बर्मा पर था। एक ही परीक्षा होती थी और इन सब सूबों के लड़कों में जो सबसे ऊपर आते उन दस लड़कों को ही 20 रुपये की छात्र-वृत्ति मिलती। मेरी उच्चाभिलाषा हद से हद 10 रुपये या 15 रुपये की छात्र-वृत्ति पाने तक जा सकती थी। इससे ऊपर कभी गयी ही नहीं। पर इसके लिए भी मैं समझता था कि काफ़ी परिश्रम की ज़रूरत है, इसलिए मैं काफ़ी मेहनत करता था।

परीक्षा हुई और पटने से मैं घर आया। भाई भी छुट्टियों में घर आये। हम सब संध्या के समय टहलने जा रहे थे कि किसी ने आकर कहा कि परीक्षा-फल गजट में निकल गया। हम लोग सीवान गये तो केवल इतना ही मालूम हुआ कि हमने पहले दर्जे (फर्स्ट डिविज़न) में पास किया है। अभी छात्र-वृत्ति की घोषणा नहीं हुई थीं। कुछ दिनों के बाद उसी प्रकार एक दिन संध्या को टहलने के समय एक आदमी ने आकर एक तार दिया जिसमें लिखा था कि मैं युनिवर्सिटी में औवल हुआ। भाई ने तार पढ़ा, और बहुत खुश हुए। हम लोग दौड़ते-दौड़ते घर आये, और बाबूजी से कहा। भाई ने उनको समझाया कि युनिवर्सिटी में औवल होने

का क्या अर्थ है। बाबूजी की तथा घर में माँ और सब लोगों को खुशी का ठिकाना न रहा मैंने, भाई की राय से, पहले से ही ठीक कर रखा था कि पास करने पर मैं कलकत्ते के प्रेसिडेन्सी कालेज में ही पढ़ूँगा। एण्ट्रेन्स की परीक्षा की दर्खास्त भेजने के समय उसमें लिख भी दिया था कि छात्रवृत्ति अगर मिलेगी तो मैं उसे प्रेसिडेन्सी कालेज में ही पढ़कर भोगूँगा। उसी निश्चय के मुताबिक मेरा कलकत्ते जाना जल्दी ही तय पा गया।

छपरा-स्कूल में पढ़ने के समय मैं वहाँ एक पंडितजी के साथ रहा करता था जो बड़े नामी ज्योतिषी थे और आज भी हैं। उनका नाम है पंडित विक्रमादित्य मिश्र। वही मेरे अभिभावक (Guardian) के स्थान पर थे। वह स्वयं विद्यार्थीयों को पढ़ाया करते थे। प्रतिदिन सरजू-स्नान किया करते—किसी दूसरे का छुआ हुआ जल तक भी ग्रहण नहीं करते। पूजा-पाठ खूब हुआ करता। वहीं पर एक छोटी ठाकुरबारी भी हथुआ-राज की थी। इन सबका असर हम छोटे लड़कों के दिल पर वैसा ही पड़ा जैसा पड़ना चाहिए। हम लोग अपने को कट्टर सनातनी समझते और अगर कोई आर्यसमाजी आजाता तो उससे बहस भी छेड़ देते। स्कूल में महामहोपाध्याय रघुनन्दन त्रिपाठी हेडपंडित थे। स्कूल में मैं फारसी पढ़ता था, पर उनके द्वारा घर पर कुछ संस्कृत पढ़ना भी आरम्भ किया। लघुकौमुदी के कुछ सूत्र घोख भी लिये; पर इसको जारी नहीं रख सका। छपरा-स्कूल के संस्मरण आज भी दिल पर असर रखते हैं, जो सुन्दर और सुखमय हैं।

मुझे याद है कि छुट्टियों के अलावा मैं कभी घर नहीं जाता था। छुट्टियों म घर जाने पर माँ अक्सर कुछ अधिक दिनों तक वहाँ रोक लेना चाहती। पर मैं इसपर जल्दी राजी नहीं होता। छुट्टियों में तो जीरादेई में खूब खेलना ही एक काम रहता और सारा समय प्रायः चिक्का में लगता। भाई भी घर आजाते और हम लोगों के साथ खेल में शरीक होते।

छपरे का जीवन बहुत सादा था। पास में रुपये शायद ही कभी रहते। वहाँ एक मोदी से तय था कि वह सब चीजें हमें दिया करेगा। यह प्रथा छपरे में भाई के पढ़ने के समय से चली आती थी। रोज़ाना पुर्जा लिखकर उसी मोदी के यहाँ से चावल, दाल, घी, लकड़ी और जलपान के लिए कचौरी-मिठाई भी आजाती। वह जाती का हलवाई था। इसलिये वह सब चीजें दे सकता था। इसी प्रकार एक कुँजड़िन थी जो तरकारी पहुँचा देती। मोदी जीरादेई आता और पुर्जों को पेश करता, हिसाब होता और उसे रुपये वहीं मिल जाते। कुँजडिन को जीरादेई नहीं आना पड़ता। उसका हिसाब करके वहीं एक कारपरदाज दे देते थे, जो मामला-मुकद्दमा देखने के लिये छपरे जाया-आया करते। स्कूल की फ़ीस के लिये रुपये भी वही देते। अगर कपड़े की ज़रूरत होती तो वही खरीद देते। इस प्रकार छपरे में पढ़ने के समय मेरे हाथों में रुपये शायद कभी होते।

घर की अवस्था भी कुछ अच्छी नहीं थी। ज़मीदारी तो उतनी ही थी जितनी बाबा और नूनू के समय में। मगर उन लोगों के मरने के बाद से बाबूजी कुछ तरद्दुद में पड़ गये थे। हम लोगों के ख़र्च के लिये नगद रुपए जुटाने में उन्हें कष्ट होता। मोदी को भी हमेशा नगद जीरादेई में नहीं मिलता। कभी-कभी किसी गाँव के तहसीलदार के नाम चिट्ठी मिलतीं और वह जीरादेई से उस गाँव पर जाता और वहाँ से रुपये लेता। छपरे का खर्च कम था और इस तरह किसी प्रकार चल जाता। मुझे कभी रुपये की कमी का अनुभव नहीं हुआ। एक और कारण यह था कि भाई इसपर ध्यान रखते और जब छुट्टियों में आते तो कुछ न कुछ प्रबन्ध करा जाते। पर भाई का ख़र्च महीने-महीने इलाहाबाद भेजना पड़ता। इसमें बाबूजी को प्रायः कष्ट हुआ करता। पर उन्होंने निश्चय कर लिया था कि चाहे जो हो, लड़कों को पढ़ाने का खंच किसी तरह से जुटाना ही होगा।

एक दीवान थे जो ज़मीन्दारी का इन्तज़ाम किया करते थे। वह बाबा के समय से ही थे और ज़मीन्दारी का पूरा हाल जानते थे। बाबूजी ने बाबा के रहते जमीन्दारी देखी नहीं थी, इसलिए उन्हें दीवानजी पर भरोसा करना पड़ता। मुझे याद है, भाई को परीक्षा की फ़ीस देनी थी; उनका पत्र आया कि किसी निश्चित तिथि के पहले 50 या 60 रुपये फ़ीस दाखिल कर देनी होगी, नहीं तो एक साल के लिए इम्तहान से वंचित रहना होगा। रुपये बाबूजी के पास थे नहीं। दीवानजी देहात से रुपये दे नहीं सके। बाबूजी बहुत तरद्दुद में पड़े। माँ का सोने का कंठा बन्धक रख कहीं से रुपये मँगवाकर समय पर भेजा। सब कुछ रहते हुए ऐसी अवस्था पहुँच गयी थी कि कभी-कभी रसोई बनने में भी देर हो जाती थी। भाई समझते थे कि यह सब कुछ दीवानजी की बदइन्तजामी से है और बहुत कुढ़ते थे, पर कुछ कर नहीं सकते थे। छुट्टियों में एक बार आकर उन्होंने कुछ कारबार सँभालना शुरू किया; पर जब तक इलाहाबाद पढ़ते रहे, कुछ विशेष कर नहीं सके।

ज़मीन्दारी की आमदनी सालाना प्रायः सात-आठ हजार की थी, जिसमें सरकारी मालगुज़ारी देकर पाँच से छः हज़ार की बचत थी। सैकड़ों बीघे जीरात के खेत थे जिनमें काफी धान, गेहूँ, मकई, अरहर। जव इत्यादि होते और ऊख से गुड़ बनाकर कुछ नगद रुपये भी आ जाते ,, यही खेत थे जो हमारे बचपन में हमेशा इतना अन्न दिया करते कि घर भरा रहता। गाय-भैंस दूध काफ़ी दे देतीं और कई जोड़े बैल भी रहते। पर इस समय न मालूम क्या हो गया था कि घर-खर्च के लिए भी पूरा धान नहीं होता और अन्न भी खरीदना पड़ता। बाबूजी ने नुकसान ही नुकसान देखकर कुछ दिनों के लिए खेती का काम बन्द भी कर दिया था। वे दिन कुछ दुख के थे, पर बाबूजी धीरज से रहते और लोगों से बातों में कहा करते कि हमारे दोनों लड़के ही हमारे धन हैं।

इस सम्बन्ध में एक और घटना यहाँ कह देने योग्य है। नूनू के मरने के बाद बाबा और बाबूजी रह गये। हम लोग बच्चे थे। हम

ऊपर कह चुके हैं कि बाबा ने ही सारी ज़मीन्दारी ख़रीदी थी और सब कुछ उनका ही उपार्जन किया हुआ था। नूनू के केवल एक लड़की थी। नूनू के मरने के बाद किसी ने बाबा को समझाया कि उनके (बाबा के) मरने के बाद उस लड़की को और हमारी चाची को कष्ट हो सकता है, इसलिए कुछ न कुछ प्रबन्ध कर देना चाहिए। बाबा ने एक वसीयतनामा लिखने का निश्चय किया और वह सीवान से तैयार होकर आया। उसके अनुसार चाची के खर्च के लिए प्रायः 1 00 रु. सालाना की आमदनीवाले दो गाँव उनकी ज़िन्दगी तक के लिए दिये गये थे और बहिन को सारी ज़मीन्दारी में से सात आने का हिस्सा दिया गया था, और हम लोगों को बाकी नव आने।

खानदान बराबर इजमाल रहा था, इसलिए यह निश्चित नहीं था कि बाबा इस प्रकार की वसीयत करने के अधिकारी थे या नहीं। बग़ैर वसीयत के उनके मरने पर सारी सम्पत्ति के मालिक बाबूजी हो जाते, चाची केवल खोरिश का हकदार होतीं और लड़की को कोई हिस्सा नहीं मिलता। इसलिए कुछ लोगों ने सलाह देकर वसीयत करने की बात बाबा को सुझायी। बाबूजी को इसकी ख़बर नहीं दी गयी। सब कुछ तैयार हो जाने पर एक दिन रजिस्ट्रार रजिस्ट्री करने के लिए जीरादेई आये। लोगों ने राय दे दी कि बाबूजी अगर वसीयतनामे पर गवाही बना देंगे, तो फिर उनको उसके ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने का हक नहीं होगा और सब बात पक्की हो जायगी। रजिस्ट्रार के जीरादेई पहुँचने पर ही बाबूजी को सब बातें मालूम हुईं। बाबा ने उनको गवाही बना देने को कहा। बाबा के दिल में कुछ सन्देह पैदा कर दिया गया था कि बाबूजी इसमें शायद उज्र करेंगे। बाबूजी ने बाबा से साफ़-साफ़ कहा कि आप जो हुकुम दें, मुझे मंज़ूर है, आप ही ने हमको पाल-पोसा है, आप ही ने सब कुछ पैदा किया है, आप अगर सोलह आने भी चन्द्रमुखी को दे दें तो मुझे कुछ उज्र नहीं है, मेरे लिये धन तो दोनों लड़के हैं, उनको आप आशीर्वाद दे देवें। हम लोग भी वहाँ बुलाये गये। बाबा फूट-फूटकर

रोने लगे और उन लोगों को गालियाँ देने लगे जिन लोगों ने बातें बनाकर उनके मन में तरह-तरह के सन्देह पैदा करने का प्रयत्न किया था। बाबूजी ने गवाही बना दी और वसीयतनामे की रजिस्टरी करके रजिस्ट्रार चले गये।

दुर्भाग्यवश, जिस समय मैं हथुआ-स्कूल में पढ़ता था उसी समय, कुछ दिनों तक बीमार रहकर, हज़ार कोशिश के बाद भी, चन्द्रमुखी अविवाहित मर गयी। चाची बहुत दिनों तक जीती रहीं और मिली हुई आमदनी को तीर्थ-व्रत में खर्च करती रहीं। उनके मरने के बाद सारी ज़मीन्दारी हम दोनों भाइयों को पूरी-पूरी मिल गयी। वह प्रायः सभी तीर्थों में गयी थीं। इसमें उनका साथ देनेवाली मेरी विधवा बहन थी, जो विधवा होने के बाद से बराबर मेरे ही घर में रही हैं और अभी तक हैं। इन दोनों में तीर्थ-व्रत में मानों होड़ होती थी और शायद ही कोई स्नान या समैया होता हो जिसमें ये शरीक़ न होती हों।

घर के साथ मेरा सम्बन्ध कम ही रहता था। केवल छुट्टियों में आना-जाना होता। शादी हो गयी थी, पर पत्नी से मुलाकात कम ही होती। छुट्टियों में आने पर रात के समय भेंट हो जाती। एक बार मेरी स्त्री को हैज़ा हो गया। मैं उस समय घर पर ही था। बाबूजी के दवा-इलाज करने से वह अच्छी हो गयी। पर बाबूजी बहुत चिन्तित हो गये थे। मेरी हालत भी कुछ अच्छी नहीं थी। किसी का अपनी स्त्री के सम्बन्ध में बहुत फिक्र रखना उन दिनों की प्रथा के अनुसार बदसलीक़ा-पन (bad form) समझा जाता था। मैं चिन्तित था। जानना और देखना भी चाहता था, पर किसीसे न तो पूछ सकता था और देखने की ख्वाहिश ज़ाहिर कर सकता था।

इस प्रकार घर में बराबर बन्द रहते-रहते मेरी भौजाई और मेरी स्त्री दोनों का स्वास्थ्य ख़राब हो जाना स्वाभाविक था। ऐसा ही हुआ

भी। दोनों ही कुछ दिनों तक, एक के बाद दूसरी, गठिया से तकलीफ़ पाती रहीं, जो बहुत दिनों के बाद, जब वे आँगन में खूब घूमने-फिरने लगीं, तभी छूटी।

8. कालेज में दाखिल

कलकत्ते में भाई पहले से ही ईडन-हिन्दू-होटल में रहा करते थे और डफ कालेज में एम. ए. क्लास में हिस्ट्री और रिपन कालेज में बी.एल. के लिये कानून पढ़ा करते थे। मैं भी उनके साथ ही वहाँ गया। यह पहला ही मौका था कि मैं कलकत्ते गया। वहाँ के मकानों, सड़कों ट्रामगाड़ी इत्यादि को देखकर चकित रहा और जब होस्टल में पहुँचा, तो वह मेरे छपरे के डेरे के मुकाबले में महल-जैसा लगा। मैं इतनी देर करके पहुँचा था कि होस्टल में विद्यार्थी खचाखच भर गये थे, एक भी जगह नहीं थी। मैं तब तक भाई के साथ ही कमरे में ठहरा। जब प्रेसिडेन्सी कालेज में पहुँचा, तो मालूम हुआ कि वहाँ भी काफ़ी लड़के आ चुके हैं और नये लोगों की भरती बन्द हो गयी है। डॉक्टर पी. के. राय प्रिंसिपल थे। भाई ने उनसे मुलाकात की और उन्होंने मुझे भरती कर लेने का हुक्म दे दिया। कालेज में तो मैं दाखिल हो गया, पर होस्टल में जगह थी ही नहीं। उसके लिये भी कोशिश की गयी और जिस कमरे में भाई रहते थे उसीमें चार की जगह पाँच चौकियाँ रख दी गयीं और मैं रहने लगा।

जब मैं क्लास में गया तो वहाँ भी दूसरी ही समा थी। मैंने इतने सिर-खुले बंगाली लड़के एक साथ कभी देखे नहीं थे। उनमें कुछ कोट-पतलून-हैट पहननेवाले भी थे। वे ऐसे लोगों के ही लड़के थे जिनके पिता विलायत से लौटकर बैरिस्टरी या डॉक्टरी वग़ैरह कर रहे थे। मैंने किसी हिन्दुस्तानी लड़के को उस दिन तक हैट-कोट पहनते देखा ही नहीं था।

इससे मेरे दिल में शक हुआ कि ये लोग ऐंगलो-इण्डियन या क्रिस्तान होंगे। पर जब नाम पुकारा गया तो मालूम हुआ कि ये हिन्दू ही हैं। उन दिनों यह प्रथा थी कि मुसलमान लड़के नाम के लिये तो मदरसा के छात्र समझे जाते थे पर एफ. ए. क्लास में पढ़ते थे प्रेसिडेन्सी कालेज में ही। उनको फीस 12 रु. के बदले 4 रु. मासिक देनी पड़ती और उनका नाम अलग रजिस्टर में लिखा रहता। और सब बातों में वे प्रसिडेन्सी कालेज के लड़कों से किसी बात में अलग नहीं थे। उनका होस्टल अलग था। टोपीवाले वहीं देखने में आये और दो-एक मारवाड़ी लड़के भी। कालेज में भी सब लड़के एक क्लास में नहीं समाविष्ट हो सके थे, इसलिए तीन विभाग कर दिये गये थे। पढ़ाई एक ही थी।

मैं उन दिनों चपकन, पाजामा और टोपी पहनकर कालेज-क्लास में जाया करता। एफ. ए. में अंग्रेजी, एक दूसरी भाषा और हिस्ट्री, लॉजिक (तर्कशास्त्र), गणित के अतिरिक्त सब लड़कों को फ़िसिक्स और केमिस्ट्री भी पढ़नी पड़ती थी। एफ. ए. में डॉक्टर जे. सी. बोस फ़िसिक्स (पदार्थ-विज्ञान) और डॉक्टर पी. सी. राय केमिस्ट्री (रसायन-शास्त्र) पढ़ाया करते थे। मैं जब पहले दिन कालेज में नाम लिखाकर पहुँचा, तो पहला घंटा केमिस्ट्री का था। वहाँ डाक्टर पी. सी. राय आये। उन्होंने हाज़िरी लेनी शुरू की। मैं सबसे पीछे की एक बेंच पर बैठा था। प्रेसिडेन्सी कालेज के सब लड़कों के नम्बर पुकारे गये और सबने उत्तर दिये। मुझे अपना नम्बर मालूम ही नहीं था। अन्त तक मैं इन्तज़ार करता रहा। जब आखिरी नम्बरवाले लड़के ने भी जवाब दे दिया और वह रजिस्टर बन्द करने लगे, तो मैंने खड़ा होकर कहा कि मैं अपना, नम्बर नहीं जानता हूँ। उन्होंने मेरी ओर आँख उठाकर देखा और कहा, ठहरो, अभी मैंने मदरसा के लड़कों की हाज़िरी नहीं ली है, और यह कह झट दूसरा रजिस्टर उठाया। मैं समझ गया कि पाज़ामा-टोपी के कारण उन्होंने मुझे मुसलमान मान लिया है। मैंने कहा कि मैं मदरसा में नहीं पढ़ता हूँ प्रेसिडेन्सी कालेज में आज ही नाम लिखवाया है, इसलिये नम्बर नहीं

जानता। उन्होंने नाम पूछा और जब मैंने नाम बताया तब सब लड़के मुड़कर मेरी ओर देखने लगे; क्योंकि वे तो जानते थे कि मेरे नाम का कोई लड़का उस साल युनिवर्सिटी में फ़र्स्ट हुआ है। डाक्टर राय ने कहा कि अभी नाम दर्ज नहीं है, जब दर्ज हो जायगा तो आज की भी हाज़िरी वह पीछे लिख देंगे। फिर उन्होंने इतनी देर से नाम लिखाने का कारण पूछा और इस प्रकार मेरी उनसे पहली मुलाकात हुई और दूसरे साथियोंने भी पहले-पहल मुझे देखा।

हिन्दी जाननेवाले लड़के तो क्लास में बहुत कम ही थे और स्वाभावतः मेरी घनिष्ठता मारवड़ी देवीप्रसाद खेतान से दो ही एक दिन के भीतर हो गयी। इसका एक विशेष कारण यह भी था कि वह भी मेरी तरह बिहार से हीं, जहाँ उनके पिताजी जेलर थे, पास करके आये थे। बंगाली लड़कों से भी जान-पहचान शुरू हो गयी। उनमें से कुछ ऐसे निकले जिनके साथ जल्द घनिष्ठता हो गयी और आज तक जारी है। केवल दो-तीन के नाम यहाँ देता हूँ। योगेन्द्रनारायण मजुमदार जो इस समय बंगाल के स्टैंडिंग कौन्सिल हैं, गिरीश्चन्द्र सेन जो डिप्टी कलक्टर हुए और इस समय गवर्नमेंट के सेक्रेटरी हैं और अविनाशचन्द्र मजुमदार जो गवर्नमेंट के ट्रांसलेटर रहे हैं। जे. एम. सेन गुप्त, जो दुर्भाग्यवश अब नहीं रहे, मेरे साथ ही पढ़ते थे और उसी होस्टल में रहा करते थे।

मैं एक हफ्ते से कम हीं कालेज में हाज़िरी दे सका कि फिर से जाड़ा-बुखार शुरू हो गया। छपरे में ही जो मलेरिया का आक्रमण हो गया था वह फिर और ज़ोरों से आया। मैं महीनों तक वहाँ बीमार रहा। होस्टल के डाक्टर ने हज़ार कोशिश कीं, पर रोज़ाना जाड़ा-बुखार हो ही जाता। कभी एक-दो दिन अच्छा भी हो जाता, तो फिर तीसरे-चौथे दिन ज़ोरों से जाड़ा हो जाता। भाई बहुत परेशान रहे।

छुट्टियों में किसी प्रकार घर आया। वहाँ अच्छा हो गया। छुट्टी प्रायः एक महीने की थी। इसमें चंगा होकर कलकत्ते गया

और वहाँ पहुँचते ही फिर ज्वर आ गया। जी बहुत घबराया। भाई भी बहुत चिन्तित हुए। अन्त में डाक्टर नीलरतन सरकार के पास भाई ले गये। उन्होंने नुस्खा दिया। ज्वर आना बन्द हुआ और मैं चंगा हो गया। वह नुस्खा प्रायः एक बरस तक चलता रहा। न मालूम इस साल-भर में कितना कुनैन खा लिया होगा। होमियोपैथिक डाक्टर ने 25-26 बरसों के बाद कहा कि आज का दम्मा उसी कुनैन का नतीजा है। मालूम नहीं, क्या सत्य है।

अच्छा हो जाने पर मैं बहुत परिश्रम से पढ़ने लगा। तीन-चार महीना पढ़ाई में पिछड़ गया था। उसको पूरा करना था और साथ ही यह भी चिन्ता थी कि यूनिवर्सिटी में अपनी जगह नहीं खोनी चाहिए। प्रत्येक विषय को मैं इस ख्याल से पढ़ने लगा कि उसमें फ़र्स्ट होऊँ। मैं प्रत्येक विषय की एक पुस्तक के अलावा, जो क्लास में पढ़ाई जाती, प्रायः तीन-चार और पुस्तकें पढ़ गया। मैं अपने को हिसाब में कमज़ोर समझता था, इसलिए उस पर विशेष ध्यान दिया और अलजबरा, ट्रिगोनोमिट्री, कौनिकसेक्शन की जितनी पुस्तकें मिल सकीं और उनमें जितने उदाहरण दिये गये थे, एक-एक करके सबको बना लिया। यूनिवर्सिटी में जितने प्रश्न उस समय तक पूछे गये थे, एक-एक को उसी तरह से लगा लिया।

मेरी इच्छा थी कि एफ. ए. पास करके मैं साइन्स पढ़ूँगा। डाक्टर जे. सी. बोस और डाक्टर पी. सी. राय के पढ़ाने का तरीका इतना अच्छा था कि उस ओर रुचि बहुत हो गयी और उन विषयों के अधिक जानने का शौक़ हो गया। यों तो हिस्ट्री पढ़ानेवाले प्रोफ़ेसर विनयेन्द्रनाथ सेन भी बहुत अच्छे शिक्षक ही नहीं, बल्कि बहुत उच्च कोटि के सज्जन पुरुष भी थ, जिनकी कृपा मुझ पर बहुत रहती थी, और जो बीमारी की हालत में होस्टल में आकर मुझे देख भी गये थे। पर अधिक झुकाव विज्ञान की ओर ही था। उन विषयों में जी लगने लगा और जहाँ तक पुस्तकें पा सका, पढ़ गया। उन दिनों क्रियात्मक रूप से लैब्रेटरी में एफ़. ए. के

लड़कों को कुछ नहीं करना पड़ता था; पुस्तकी ज्ञान ही पर्याप्त समझा जाता था। मैंने प्रायः बी. एस-सी. क्लास तक का पुस्तकी ज्ञान प्राप्त कर लेने की चेष्टा की थी। एक ही दिक्कत मालूम होती थी। ऊपर जाकर अधिक गणित की ज़रूरत होगी और इतने परिश्रम के बाद भी गणित में मेरा दिमाग़ नहीं चलता था। इसलिए उस पर अधिक परिश्रम करता।

एफ़. ए. की परीक्षा के लिए मैंने खूब तैयारी की। परीक्षा का नतीजा भी एक प्रकार से ठीक निकला। मैं उसे एक प्रकार से ठीक निकला इसलिए कहता हूँ कि यद्यपि मैं सबसे ऊपर आया, तथापि मेरी यह इच्छा पूरी नहीं हुई कि मैं साइन्स में और गणित में सबसे ऊपर आऊँ। इन विषयों में अधिक परिश्रम किया था। अंग्रेज़ी, फ़ारसी, लॉजिक इत्यादि में उनके मुकाबले बहुत कम परिश्रम किया था। पर जब परीक्षा-फल निकला, तो मालूम हुआ कि अंग्रेज़ी, फ़ारसी और लॉजिक में मैंने सबसे अधिक नम्बर पाया है, और दूसरे विषयों में औरों से थोड़े-थोड़े नम्बरों के लिए पीछे पड़ गया हूँ—यद्यपि सब मिलाकर औरों से ऊपर हूँ। एन्ट्रेंस-परीक्षा के फल स्वरूप सबसे अधिक नम्बर पाने के लिए 20 रु. मासिक की छात्रवृत्ति के अलावा अंग्रेज़ी में भी औवल होने में 20 रु. मासिक की अलग छात्रवृत्ति एक बरस के लिए मिली थी। एफ़. ए. में सबसे ऊपर होने के लिए 25 रु. मासिक की दो बरसों तक के लिए छात्रवृत्ति मिली। इसके अलावा अंग्रेज़ी में औवल होने के लिए 10 रु. मासिक की एक छात्रवृत्ति, और भाषाओं में फ़र्स्ट होने के लिए 15 रु. मासिक की छात्र-वृत्ति—जिसे डफ़-स्कालरशिप कहते थे—मिली, और लॉजिक में फ़र्स्ट होने के लिए पुस्तकों का इनाम मिला। इसका नतीजा यह हुआ कि मैंने समझ लिया, मैं गणित में सफल नहीं हो सकूँगा और इसलिए विज्ञान भी मेरे लिए कठिन होगा।

परीक्षाफल के बाद मैंने पूर्व निश्चय को बदल दिया और विज्ञान की ओर न जाकर बी. ए. क्लास में नाम लिखाया। दो बरसों तक पूरे

ध्यान से मैंने रसिक बाबू की बात याद करके फिर फ़र्स्ट होने के लिये कोशिश की, और उसमें सफल रहा। रसिक बाबू इस बीच में बदलकर कलकत्ते चले गये थे। मुलाकात करने पर बहुत खुश हुए। कभी-कभी जाकर उनसे मिलता। कुछ दिनों के बाद उनकी मृत्यु हो गयी।

9 परीक्षा के प्रति अश्रद्धा

बी. ए. क्लास में पहुँचकर मेरी हालत कुछ बदल गयी। परीक्षा की ओर से रुचि कुछ हट गयी। ध्यान और चीज़ों की ओर कुछ बँट गया। बचपन ही आदत थी, मैं भरसक जो कुछ क्लास में पढ़ाया जाता उसे बहुत ध्यानपूर्वक सुनता और क्लास का समय किसी तरह बरबाद नहीं होने देता। इसका शुरू में तो एक कारण यह था कि घर पर कोई पढ़ानेवाला या बतानेवाला मास्टर नहीं था, इसलिये सब कुछ स्कूल के मास्टर के बताने पर ही निर्भर रहता। पीछे आदत ही ऐसी पड़ गयी। कालेज़ में भी यही बात रही। नाम लिखाते ही यह प्रश्न हुआ कि किस विषय में ऑनर्स लिया जाय। उन दिनों बी. ए. में तीन विषय पढ़ने होते, जिनमें अंग्रेज़ी और फ़िलासाफ़ी अनिवार्य थे और तीसरा विषय ऐसा था जिसको चुन लेने का अधिकार विद्यार्थी को था; पर चुन लेने के बाद उसे भी अन्य दो अनिवार्य विषयों की तरह ही पढ़ना होता और उसमें भी परीक्षा पास करनी होती। मैंने हिस्ट्री और एकनौमिक (अर्थशास्त्र) चुन लिया। मेरे सामने प्रश्न यह था कि मैं किस विषय में ऑनर्स लूँ—दो विषयों में या तीनों में। मैंने पहले कुछ निश्चय नहीं किया और तीनों विषयों में ऑनर्स में शरीक होने लगा।

इस प्रकार कुछ दिनों तक तो कालेज में खूब जी लगाकर पढ़ता रहा, पर कुछ ऐसे संयोग घटे कि परीक्षाफल से मन उचट गया और ध्यान दूसरी ओर जाने लग गया। उन्हीं दिनों श्री सतीशचन्द्र मुखर्जी ने

एक संस्था कायम की थी, जिसका नाम था 'डॉन सोसाइटी' (Dawn Society)।

मैं किसी प्रकार इस सोसाइटी के एक लेक्चर में पहुँच गया। सब बातें बहुत अच्छी लगीं। मैं इसमें शरीक हो गया। सतीश बाबू की कृपा रहती, जो आज तक बनी हुई है। मुझे स्मरण है कि साल के अन्त में डॉन सोसाइटी की छात्रवृत्ति और इनाम भी मुझे मिले, जिनको सभा में सर गुरुदास बनर्जी ने कुछ उत्साहवर्धक शब्दों के साथ मुझे दिये थे। सोसाइटी में जाने से विचारों का संचार शुरू हुआ।

मैं अखबारों को पढ़ा करता था। काँग्रेस का नाम जानता था। जब उसका सालाना जलसा होता तो उसके भाषणों को ध्यानपूर्वक पढ़ता। यों तो जब कभी कोई सार्वजनिक सभा होती और बड़े लोगों के भाषण होते—जैसे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के—तो मैं उसमें जाकर भाषणों को सुनता। पर डॉन सोसाइटी से अधिक दिलचस्पी थी। स्वदेशी का प्रेम तो भाई ने स्कूल के समय में ही पैदा कर दिया था, पर वह भी अभी पूरी तरह प्रस्फुटित नहीं हुआ था। यह डॉन सोसाइटी और सतीश बाबू के सत्संग का ही प्रसाद था कि यह जो विचार और प्रवृत्तियाँ अंकुर-रूप में पहले से मौजूद थीं और जो बिना किसी उद्देश्य या समझ के अंधकार में काम कर रही थीं, कुछ परिष्कृत हो गयीं। मैं कुछ आगे का भी सोचने लगा।

10. वंगभंग का आन्दोलन

1904 में मैंने एफ. ए. परीक्षा पास की। 1905 में वंगभंग का आन्दोलन शुरू हुआ। मैं सभी सार्वजनिक सभाओं में पहले से ही जाया करता था। वंग-भंग-विरोधी सभाओं में भी खूब जाता। उन दिनों इस बात में रोक-टोक अभी नहीं थी। 7 अगस्त, 1905 की बड़ी सभा में

जिसमें विदेशी वस्तुओं का बायकाट और स्वदेशी के प्रचार का निश्चय हुआ, मैं शरीक था। उसमें बहुत उत्साह था। लोगों ने व्रत लिया कि स्वदेशी का ही वे व्यवहार करेंगे। मेरे लिए इसमें कोई कठिनाई थी नहीं; क्योंकि मैं बहुत पहले ही से केवल स्वदेशी वस्तुओं का ही व्यवहार किया करता था। आन्दोलन खूब ज़ोरों से चला। प्रायः प्रतिदिन कहीं न कहीं सार्वजनिक सभाएँ होतीं। हम सब जाते। कहीं सुरेन्द्र बाबू, कहीं विपिनचन्द्र पाल, कहीं ए. चौधरी, कहीं अरविन्द घोष के भाषण होते। होस्टल के लड़कों में बड़ी हलचल थी। जो लोग कभी स्वदेशी नहीं बर्तते थे उन्होंने भी स्वदेशी बर्तना आरम्भ किया। बड़ों की तो मुझे खबर नहीं, पर विद्यार्थियों में नया जोश और नया उत्साह पैदा हो गया।

1905 का साल इस प्रकार एक बड़े आन्दोलन और जागृति का साल था। विशेष करके विद्यार्थियों में एक नये जीवन का संचार हो गया था और बहुतेरों ने पढ़ना छोड़ दिया था। उसी समय कलकत्ते में राष्ट्रीय शिक्षा की एक बड़ी संस्था खुली। श्री सतीश बाबू उसमें चले गये और डॉन सोसायटी का काम कुछ दिनों के बाद ढीला पड़ गया। सोसायटी के साथियों में से कई उस संस्था में शरीक हो गये। मैं तब सब सभाओं में बराबर आया-जाया करता और भाषणों को सुनता, पर मेरे दिल में किसी समय कालेज छोड़ कर इस राष्ट्रीय संस्था में जाने की इच्छा नहीं हुई।

पर इन सब आंदोलनों का नतीजा यह तो अवश्य हुआ कि पुस्तकों के पढ़ने में समय कम लगा और परीक्षाफल की ओर से एक प्रकार की उदासीनता-सी हो गयी। कालेज की परीक्षा हुई। मेरे दिल में इसका तो भय था नहीं कि इस परीक्षा में पास ही नहीं करूँगा। हाँ, यह हो सकता था कि औरों से नम्बर कम आवे। कुछ साथियों ने मिल कर सलाह की, परीक्षा के पहले के

प्राय: पाँच-सात सप्ताह कहीं बाहर जाकर बिताये जायँ, जहाँ शांति से हम पढ़ सकें और परीक्षा के लिए तैयार हो सकें। हम लोगों ने विहार के संथाल-परगना ज़िले के 'जामतारा' स्थान में जाकर रहना निश्चित किया। वहाँ एक मित्र ने छोटा-सा मकान भाड़े पर ठीक कर दिया। कालेज की परीक्षा देकर उसके फल का इन्तज़ार न करके हम लोग वहाँ चले गये।

जब परीक्षा के दिन नज़दीक आये, तो मैं कुछ घबराया। कुछ ख़याल पैदा हुआ कि इस बार भी अगर औवल न हुआ, तो शिकायत होगी। पर इस बार इच्छा कुछ तीव्र नहीं थी और अब समय भी नहीं रह गया था कि उसके लिए एफ. ए. परीक्षा की तरह तैयरी की जाय। परीक्षाफल में स्थान केवल ऑनर्स के नम्बर से ही मिलता था। इसलिए मैंने ऑनर्स के विषयों पर ही ध्यान दिया। फिलासफी, जिसमें केवल पास ही करना था, एक तरह से छोड़ दिया। पहले भी डाक्टर पी. के. राय के लेक्चरों को ही ध्यान से सुना करता था। किताबें कम पढ़ी थीं। इसमें एक बार एक घटना से प्रोत्साहन भी मिला था। एक दिन डाक्टर राय बीमार पड़ गये। उन्होंने उस दिन पढ़ाया नहीं। कुछ सवाल दे दिये और सबको उन सवालों का उत्तर लिख कर देने कहा। सबने उत्तर लिखे। मैंने किताबें तो पढ़ी नहीं थीं। केवल लेक्चर में जो उन्होंने कहा था उसे ही, जहाँ तक हो सका, लिख दिया। डाक्टर ने सब उत्तरों को घर पर ले जाकर पढ़ा और दूसरे दिन उस तात्कालिक परीक्षा का फल यह सुनाया कि मैं ही सबसे ऊपर हूँ और जिन लोगों ने उस विषय में ऑनर्स किया है उनसे भी मैंने अधिक नम्बर पाया है। इसके बाद से मुझे और भी विश्वास हो गया कि फ़िलासफ़ी के लिए बहुत पढ़ने की ज़रूरत नहीं है।

साइकालजी और एथिक्स तो उलटकर देख गया। इन विषयों को डाक्टर राय ने पढ़ाया भी था। पर लॉजिक देखने का समय नहीं मिला।

घबराकर एक साथी के पास गया। सब हाल कहा। उसने लॉजिक के सभी अध्यायों के शीर्षक कह दिये और प्रत्येक शीर्षक के सम्वन्ध में कुछ बातें कह दीं। उस समय मालूम होता था कि मैं एक नई चीज़ पहले-पहल पढ़ रहा हूँ। इतने में जाने का समय हो गया। दौड़कर दस-पन्द्रह मिनटों में मुँह धोकर स्नान करके भात निगलकर दौड़ता हुआ युनिवर्सिटी में पहुँचा। पहुँचने के पहले ही पहली घंटी बज चुकी थी। दौड़कर स्थान पर बैठ गया और परचा हाथ में आ गया। इतना घवराया था कि कुछ पता नहीं चलता था कि एक प्रश्न का भी उत्तर लिख सकूँगा या नहीं। डर यह होता था कि और विषयों में ऑनर्स पाकर ही क्या होगा अगर इस विषय में फेल कर गया। किसी एक भी विषय में फेल करने पर सारी परीक्षा में आदमी फेल हो जाता था।

परचा मिलने पर कुछ शान्ति लाने की कोशिश की। आहिस्ता-आहिस्ता प्रश्नों को पढ़ा। कुछ ऐसा मालूम हुआ कि पहले प्रश्न का उत्तर दे सकूँगा। लिखना शुरू किया। जब खतम किया, तो ऐसा समझा कि उत्तर कुछ बुरा नहीं हुआ। इसी प्रकार दूसरे प्रश्न और उसके बाद तीसरे प्रश्न इत्यादि सबका उत्तर लिख गया। उधर समय भी पूरा हो गया। अब मन में विश्वास हो गया कि फेल नहीं होऊँगा। सारी घबराहट कम हो गयी। आध घंटे की छुट्टी के बाद दूसरा परचा मिला। उसमें भी वैसा ही हुआ। प्रायः सभी प्रश्नों का उत्तर लिख दिया, केवल एक बाकी रह गया था। उसका भी उत्तर कुछ तो दे सकता था, पर पूरा नहीं; क्योंकि उसका सम्बन्ध उस अध्याय के साथ था जिसका शीर्षक तो मैंने देखा था और साथी ने संक्षेप में कुछ कहना भी शुरू किया था। पर उसे वह पूरा नहीं कर पाया था, और मैं घड़ी देखकर जल्दी में हॉस्टल से चला आया था। मैंने उसका उत्तर नहीं दिया और समय से पहले ही चला आया। मुझे विश्वास हो गया था कि अब फेल होने का तो कोई डर हीं नहीं है। जब नतीजा निकला तो हिस्ट्री ऑनर्स में मैं अव्वल आया। अंग्रेजी में भी ऑनर्स तो मिला, पर

अव्वल स्थान नहीं मिला। फ़िलॉसफ़ी में बहुत अच्छा नम्बर आया था। सब विषयों को मिलाकर मैं ही सबसे ऊपर था और वह दोनों छात्रवृत्तियाँ, एक पचास मासिक की और दूसरी चालीस की, मुझे फिर मिल गयीं। इस बार का फल किसी प्रयत्न का नतीजा नहीं था, क्योंकि मैंने कोई प्रयत्न किया ही नहीं था।

11. छात्र-सम्मेलन और कांग्रेस

बी. ए. पास करके मैं कलकत्ते में एम. ए. और बी. एल. पढ़ने लगा। स्वदेशी आन्दोलन उन दिनों बहुत ज़ोरों से चल रहा था। हम कुछ बिहारी छात्रों पर भी, जो कलकत्ते में पढ़ते थे, उसका असर पड़ता ही था। हम लोगों ने सोचा कि बिहार के छात्रों का एक सम्मेलन किया जाय। बिहारी क्लब के सामने इस प्रकार का प्रस्ताव रखा गया। उसे केवल छात्रों ने ही नहीं, बड़ों ने भी बहुत उत्साहपूर्वक स्वीकार किया। मैं पटने भेजा गया। वहाँ पहले छात्रों से और फिर बड़े लोगों से मैं मिला। उनमें प्रमुख थे मिस्टर सच्चिदानन्द सिन्हा और (स्वर्गीय) बाबू महेशनारायण, जो उन दिनों 'बिहार-टइम्स' का सम्पादन करते थे। इन सब लोगों ने सहानुभूति दिखलाई। निश्चय हुआ कि पटने में ही पहला सम्मेलन किया जाय और नामी बैरिस्टर मिस्टर शर्फ़ुद्दीन सभापति बनाये जायँ। पटने के छात्रों ने एक स्वागत-समिति बनाकर सब प्रबन्ध भी किया।

पहला सम्मेलन पटना-कालेज के बड़े हॉल में हुआ। बिहार के सभी कालेजों और अनेक स्कूलों के छात्र उस सम्मेलन में बड़े उत्साह के साथ शरीक हुए। सम्मेलन के उद्देश्य बतलाने का भार मेरे ऊपर दिया गया। मैंने एक लम्बा भाषण अंग्रेज़ी में लिखकर तैयार किया था, उसे पढ़ सुनाया। औरों के भाषण भी अक्सर अंग्रेज़ी में ही हुए। सम्मेलन में

निश्चय हुआ कि पहले उन शहरों में, जहाँ कालेज हैं और फिर जहाँ-जहाँ स्कूल हैं, छात्र-समितियाँ क़ायम की जायँ, जो सम्मेलन से सम्बद्ध रहें। एक बड़ी नियमावली तैयार की गयी। उसके अनुसार सारे बिहार के छात्रों की प्रतिनिधि-स्वरूप एक स्थायी मिति पटने में क़ायम हुई। इसमें सभी जगहों के छात्रों के प्रतिनिधि लिये गये। यही सब छात्र-समितियों पर नियंत्रण और सम्मेलन का काम साल-भर जारी रखती थी।

छात्रों का संगठन बहुत अच्छा हो गया। प्रायः सभी शहरों में इसकी शाखाएँ हो गयीं। कलकत्ते में तो बिहारी-क्लब इसकी शाखा बन ही गया, हिन्दू-यूनिवर्सिटी की स्थापना के बाद वहाँ के बिहारी छात्रों ने भी एक शाखा बना ली। सभी शाखाओं मे प्रायः प्रति सप्ताह सभा होती, जिसमें छात्र विविध विषयों पर लेख पढ़ते, भाषण करते और खेल-कूद में भाग लेते। इसके लिये जहाँ-तहाँ क्लब क़ायम किये गये। सालाना जल्से में निबन्धों और भाषणों की प्रतियोगिता होती। सबसे अच्छे लेखों, भाषणों और खेल-कूद के लिये इनाम दिये जाते। कालेज के लड़कों की अलग प्रतियोगिता होती, स्कूल के छात्रों की और लड़कियों की अलग। लड़कियों को लेख और भाषण के अलावा सीना-पिरोना इत्यादि में प्रोत्साहन देने के लिये अलग इनाम दिये जाते। इस प्रकार साल-भर काम चलता। सम्मेलन, दसहरे की हरेक छुट्टी में, कहीं न कहीं बिहार के किसी शहर में होता। इस सालाना सम्मेलन के सभापति-पद को बिहार और बाहर के बहुत बड़े-बड़े लोगों ने सुशोभित किया है। जैसे बिहार के मिस्टर शर्फुद्दीन, मिस्टर हसन इमाम, डाक्टर सच्चिदानन्द सिन्हा, बाबू परमेश्वर लाल, बाबू दीपनारायणसिंह, बाबू व्रजकिशोर प्रसाद प्रभृति। बाहर के लोगों में श्रीमती एनी बेसेण्ट, श्रीमती सरोजिनी नायडु, महात्मा गाँधी, मिस्टर एण्ड्रूज़ प्रभृति।

यह सम्मेलन 1906 में क़ायम हुआ और प्रति वर्ष अपना सालाना जलसा 1920 तक, जब असहयोग-आन्दोलन शुरू हुआ, करता रहा। जितने

दिनों तक यह काम करता रहा बड़े उत्साह और लगन के साथ सारे सूबे के छात्र इसमें शरीक होते रहे। इसीके द्वारा छात्रों ने संगठन को क्रियात्मक रूप से सीखा, बहुतोंने भाषण करना सीखा। उन पन्द्रह बरसों में जितने भी जानदार और उत्साही युवक बिहार में हुए, सब इससे ही अनुप्राणित हुये।

असहयोग-आन्दोलन ने छात्रों से बहुत बड़े त्याग की माँग की। छात्र-सम्मेलन इसके लिये तैयार नहीं था। प्रस्ताव तो पास हो गया, पर थोड़े ही छात्र अन्त तक उस आन्दोलन में ठहर सके। जो ठहरे वे अधिकतर सम्मेलन के ही कार्यकर्ता थे। दूसरे जो वकील-वर्ग में से आये उनमें भी अधिकतर सम्मेलन के ही कार्यकर्ताओं में से थे। 1920 तक अपना काम इस प्रकार से पूरा करके सम्मेलन मरता-जीता जीवन बिताने लगा। इसने एक प्रकार से अपना काम पूरा कर दिया था। नयी जागृति, नया जीवन सारे सूबे में पैदा कर दिया था और भविष्य के लिये खेत तैयार करके बीज भी बो दिया था, जिसका फल असहयोग-आन्दोलन को मिला और आज तक सूबे को मिल रहा है।

1906 के दिसम्बर में काँग्रेस कलकत्ते में होनेवाली थी। मैं काँग्रेस की खबर तो कुछ पहले से ही पढ़ा करता था पर अभी तक काँग्रेस देखने का सौभाग्य और सुअवसर मुझे नहीं मिला था। 1905 के दिसम्बर में कांग्रेस बनारस में हुई, मैं बी. ए. परीक्षा के फ़ेर में था और नज़दीक होने पर भी वहाँ नहीं जा सका था। 1906 की काँग्रेस में पहले-पहल स्वयंसेवक की हैसीयत से मैं शरीक हुआ। काँग्रेस का अधिवेशन बड़े जोश का हुआ। गरम दल और नरम दल का आविर्भाव हो चुका था। गरम दल नेता समझे जाते थे लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, विपिनचन्द्र पाल, अरविन्द घोष प्रभृति। नरम दल के नेता थे सर फ़िरोजशाह मेहता, गोखले प्रभृति। जहाँ तक मैं समझ सकता था, सुरेन्दनाथ बनर्जी और पंडित मदनमोहन मालवीय बीच का स्थान रखते थे।

आपस के झगड़े को मिटाने या कम करने के लिए दादाभाई नौरोजी विलायत से बुलवाकर सभापति बनाये गये थे। सौभाग्य से मुझे काँग्रेस-पंडाल की ड्यूटी मिली थी। इसलिए मैं विषयनिर्धारिणी समिति में सब बहसें सुन सका था। कांग्रेस-पंडाल में अधिवेशन के समय पहले दिन मैं कुछ दूर पर रखा गया था, जिससे सभापति का भाषण नहीं सुन सका। मैंने देखा कि अधिकांश स्वयंसेवक अपने स्थान को छोड़कर भीतर चले गये। मैंने ऐसा करना उचित नहीं समझा और अपने नियुक्त स्थान पर ही डटा रहा। सरोजिनी देवी, मालवीय जी और मिस्टर जिन्ना के भाषण पहले-पहल इसी कांग्रेस में सुने। कांग्रेस के साथ प्रदर्शनी भी बहुत जबरदस्त हुई थी। अधिवेशन देखकरके कांग्रेस के बारे में श्रद्धा अधिक बढ़ गयी, पर अभी कई बरसों तक मुझे इसमें बाजाब्ता शरीक होने का अवसर नहीं मिला। यह अवसर मिला पहले-पहल 1911 में, जब कांग्रेस फिर कलकत्ते में हुई। उसी समय से आज तक मैं अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी का मेम्बर रहा हूँ और थोड़ा-बहुत कांग्रेस का काम करता आया हूँ।

12. विदेश-यात्रा का निष्फल प्रयत्न

डॉन सोसाइटी और स्वदेशी आन्दोलन का असर मेरे ऊपर यह पड़ा कि मेरे मन में आया, देश के लिए किसी तरह कुछ करना चाहिए। भाई के साथ का भी असर कुछ वैसा ही पड़ता रहा था। पर अभी तक यह स्पष्ट नहीं हुआ था कि यह इच्छा किस प्रकार पूरी होगी और न यही साफ सूझता था कि कौन-सी सेवा की जाय तथा इसके लिए क्या करना चाहिए। यह एक इच्छा मात्र थी जो कभी-कभी उठा करती और फिर इधर-उधर की झंझटों में विलीन हो जाती। छात्र-सम्मेलन का संगठन एक रास्ता मिला था, पर वह भी स्थायी होगा या उसमें भी परिवर्तन आ जायगा, कुछ समझता न था और न कह सकता था। हाँ एक बात जी में आ गयी थी, वह यह थी—सरकारी नौकरी नहीं करनी चाहिए। इसलिए बी. ए. पास करने के बाद डिपटी-मजिस्ट्रेटी के लिए दर्खास्त नहीं दी।

भाई भी नहीं चाहते थे कि यह मैं करूँ। बाबूजी की इच्छा थी कि मैं वकालत करूँ। भाई दुर्भाग्यवश एम. ए., नहीं पास कर सके। घर से अधिक खर्च लाकर कलकत्ते में या और कहीं अब रहना नहीं चाहते थे। वह डुमराँव राज-स्कूल में शिक्षक का काम करने लगे। मैं डिप्टीगरी का ख्याल छोड़कर कलकत्ते में एम. ए. बी. एल., पढ़ने लगा था।

छात्र-सम्मेलन हो जाने के बाद मुझपर यह एक धुन सवार हो गयी। यह नहीं कह सकता कि यह विचार कैसे उठा और किसके प्रोत्साहन से; पर यह ख्याल हुआ कि अब किसी प्रकार विलायत जाकर आई. सी. एस. की परीक्षा पास करनी चाहिए। सरकारी नौकरी की इच्छा नहीं थी, तो भी न मालूम मन को कैसे सन्तोष हो गया कि यह करने योग्य है। इसमें भाई ने भी प्रोत्साहन दिया। घरसे इतने रुपये मिल नहीं सकते थे कि विलायत का खर्च जुट सके, इसलिए कोई दूसरा ही प्रबन्ध होना चाहिए। मिस्टर सच्चिदानन्द सिन्हा ने जब यह सुना कि मेरी ऐसी इच्छा है तो खुश हुए और बाबू ब्रजकिशोर तो इसके लिए हमेशा तैयार ही रहते थे। डॉक्टर गणेश के भोज के बाद बाबू अम्बिकाचरण को उन्होंने जापान जाने में बहुत प्रोत्साहन दिया था। मेरे लिए विलायत जाना उन्होंने एक प्रकार से अनिवार्य समझा और लग गये रुपये जुटाने की धुन में। मुंशी ईश्वरशरण भी इसमें दिलचस्पी लेने लगे। आरा से रायबहादुर हरिहर प्रसाद ने कुछ रुपये दिये। सोचा गया कि मेरे चले जाने के बाद और रुपये भाई इन लोगों की मदद से अथवा घर से किसी प्रकार भिजवाते रहेंगे। इस बात का डर हम लोगों को था कि बाबूजी और माँ इस बात को पसंद नहीं करेंगी और घर में बहुत बावेला मचेगा मैं इस सिलसिले में पटने और इलाहाबाद भी गया। भाई भी साथ थे। बाबूजी से यह बात गुप्त रखी गयीं; क्योंकि उनकी आज्ञा मिलने की कोई आशा नहीं थी। हमने जाने के लिए दिन भी मुकर्रर कर लिया। कलकत्ते में कपड़े भी बनवा लिये।

उस समय अंग्रेजी ढंग का कोई कपड़ा मैंने कभी पहना नहीं था। पर विलायत में हमारे कपड़े तो पहने नहीं जा सकते, वहाँ जरूरत थी। इसलिए अँगरेजी ढंग के कपड़े एक अंग्रेजी दूकान में ही बनवाये गये। यही एक अवसर था जब मैंने विदेशी कपड़े, 1869 के बाद से आज तक, खरीदे हैं। पासपोर्ट के लिए दरख्वास्त दी गयी। कार्रवाई हो रही थी। हम लोग समझते थे कि यह बात पूरी हो जायगी, जाने के पहले बाबूजी को ख़बर नहीं मिलेगी और घर की ओर से कोई बाधा नहीं आवेगी। इस षड्यंत्र में कालेज के साथियों में से तीन-चार और थे जिनमें एक मेरे बिहारी मित्र शुकदेवप्रसाद वर्मा थे और बाकी बंगाली लोग थे। मेरे अपने लोगों में भाई, बाबू ब्रजकिशोर, मिस्टर सिन्हा, मुंशी ईश्वरशरण और रायबहादुर हरिहर प्रसाद सिंह थे।

भाई और बाबू ब्रजकिशोर के साथ मैं इलाहाबाद गया। मुंशी ईश्वरशरण के साथ ठहरा। वहाँ मेरी ससुराल के लड़के कालेज में पढ़ रहे थे। उनमें किसी से मुलाकात तो नहीं हुई, पर उनको किसी न किसी तरह ख़बर लग गयी। वे खोजते-ढूंढ़ते मुंशी ईश्वरशरण के यहाँ पहुँच गये। वहाँ पर लोगों ने कह दिया कि मैं नहीं हूँ! उन्होंने घर पर तार दे दिया कि मैं छुपकर विदेश जा रहा हूँ और उस दिन प्रयाग में हूँ! तार पाते ही बाबूजी और घर के सब लोग बहुत घबराये। बाबूजी अस्वस्थ थे, इसलिए वह नहीं निकल सकते थे, पर मेरी माँ और बहन सीधे इलाहाबाद चली गयीं। उन लोगों की यह ग़लत धारणा थी कि मैं इलाहाबाद से ही चला जाने वाला था। मैं तो अभी सलाह-बात करने और रुपयों के जुगाड़ में गया था। वहाँ एक दिन रह कर वहाँ से सीधे फिर कलकत्ते चला आया था।

जब माँ इलाहाबाद पहुँचीं, तो मैं वहाँ नहीं था। मुंशी ईश्वरशरण के यहाँ तलाश करने पर उनको ख़बर मिल गयी कि मैं कलकत्ते वापस चला गया। मुझे कलकत्ते में इन बातों की ख़बर नहीं थी। वहाँ तार पहुँचा कि

बाबूजी बीमार हैं। मैं वहाँ से उनसे मिलने घर आया, तो सब बातें मालूम हो गयीं। वह सचमुच बीमार थे, पर अभी बीमारी कुछ कड़ी नहीं थी; दुःखित जरूर थे। घर में रोना-पीटना पड़ गया था। भाई भी आये। बाबूजी उनसे बहुत रंज थे कि मुझे विदेश भेजने का षड्यंत्र वही कर रहे थे। मेरे पहुँचते ही सबकी करुणा उमड़ पड़ी। खूब जोरों से रोआ-रोहट मच गयी। मुझे जाने से साफ़-साफ़ मना कर दिया। कह दिया कि मैं अगर विलायत गया तो वे नहीं बचेंगे। जो बातें हुई थीं, मैंने सब साफ़-साफ़ कह दीं। वादा भी कर दिया कि नहीं जाऊँगा। जब बाबूजी को मेरी बात पर विश्वास हो गया तब फिर उन्होंने कलकत्ते जाने की इजाजत दे दी।

13 विद्यार्थी-जीवन की समाप्ति

बाबूजी की बीमारी बढ़ती गयी। कुछ दिनों में उनकी हालत खराब होने लगी। खबर मिलने पर मैं कलकत्ते और भाई डुमराँव से जीरादेई पहुँचे। कुछ दिनों में वह जाते रहे। मरने के पहले हम सबसे भेंट हो गयी। उस वक्त तक भाई के दो लड़कियां और एक लड़का जनार्दन के जन्म हो चुके थे। मेरे भी मृत्युञ्जय का जन्म उसी साल में हुआ था। पोता देखकर वह बहुत सन्तुष्ट रहते थे। जब बीमारी बढ़ गयी तब सबको इकट्ठा करके आशीर्वाद दिया।

बाबूजी की मृत्यु से घर में गड़बड़ी तो मची, हम सब दुखी हुए; पर मुझे एक बात की खुशी भी रही। वह यह कि अच्छा ही हुआ, मैं विलायत नहीं गया। अगर गया होता और उनकी इस प्रकार मृत्यु हो जाती, तो मैं न मालूम कितना दुखी होता। मैं फिर कलकत्ते चला गया। भाई डुमराँव चले गये। घर का इन्तज़ाम तो भाई कुछ पहले से ही देखा करते थे। अब सारा भार उनपर ही आ गया और वह डुमराँव से आकर जब-तब घर देख जाया करते। मेरे लिए खर्च वगैरह का भी

इन्तज़ाम वही करते। उनको पढ़ने के समय जब-तब ख़र्चे के लिए कुछ कष्ट भी उठाना पड़ा। घर से रुपये जाने में देर हो जाया करती। पर मुझे उन्होंने बाबूजी के रहने के समय, और उनकी मृत्यु के बाद भी ख़र्च की चिन्ता में कभी पड़ने नहीं दिया। उनकी अभिलाषा थी कि जब मैं पढ़ने में तेज हूँ और सब परीक्षाएँ इस प्रकार सफलतापूर्वक पास करता हूँ, तो मुझे केवल पढ़ने में ही मन लगाने का पूरा मौका देना चाहिए और किसी तरह की दूसरी चिन्ता नहीं होने देना चाहिए।

छात्रवृत्ति मुझे बराबर काफी मिलती गई। उसको बाबूजी या भाई खर्चे में कभी नहीं जोड़ते थे। खर्च के रुपये तो हमेशा अलग से ही भेजते रहे। उन रुपयों में से मैं कालेज की फीस दिया करता। बाकी रुपया किताब खरीदने में ही लगता। बी. ए. पास करने पर दो छात्रवृत्तियाँ मिलीं, एक 50 रुपये मासिक की जो हर महीने मिला करती। यह तो मैं खर्च करता गया। दूसरी 40 रु. मासिक की जिसकी शर्त थी कि एम. ए. पास करने पर एक साथ जोड़कर मिलेगी। जब एम. ए पास करने के बाद एक साथ रु. 480 मिले, तो विलायत-यात्रा के जनून में जो कुछ कर्ज लिया था उसको अदा कर दिया।

पहले कह चुका हूँ कि एफ. ए. पास करने के बाद ही परीक्षा की ओर से कुछ उदासीनता-सी हो गयी। बी. ए. में न मालूम कैसे फिर औवल हो गया। एम. ए. के समय यह उदासीनता और बढ़ गयी। इस बरस विलायत-यात्रा के जनून और बाबूजी की मृत्यु के कारण समय दूसरे कामों में लगा। मन भी विचलित रहा। बाबूजी की मृत्यु 1907 के फ़रवरी या मार्च महीने में हुई थी। परीक्षा अगले नवम्बर या दिसम्बर में होने वाली थी। गर्मी की छुट्टियों में कुछ दिनों के लिए मैं साथियों के साथ खरसान (करसियांग Kurseong) चला गया। वहीं परीक्षा के लिए तैयारी की। एम. ए. की परीक्षा में मेरा स्थान औवल नहीं हुआ। मेरे ऊपर कई साथी आ गये। मुझे इसका कुछ अफ़सोस नहीं रहा;

क्योंकि मैंने कोई आशा भी नहीं की थी और न कोई विशेष प्रयत्न ही किया था ।

इसके बाद प्रश्न हुआ कि क्या किया जाय । परीक्षा देकर मैं भाई के पास डुमराँव चला गया । कुछ दिनों तक वहीं रहा । सोचता रहा कि वकालत की परीक्षा दूँ या नहीं । उस ओर जी नहीं जाता था । यह भी महसूस होने लगा कि मैं वकालत भी कर सकूँगा । कुछ अपनी शक्ति में अविश्वास-सा हो गया था । सरकारी नौकरी न करने की तो पहले ही ठान ली थी ।

इसी बीच में एक मित्र बाबू वैद्यनाथ नारायण सिंह ने लिखा कि मैं मुजफ़्फ़रपुर-कालेज में प्रोफ़ेसर हो जाऊँ तो बहुत अच्छा होगा । वह उस कालेज में प्रोफ़ेसरी कर रहे थे । उनके कहने से मैंने दर्खास्त भेज दी । मेरी नियुक्ति हो गयी । 1908 की जुलाई में, कालेज खुलने पर, मैं वहाँ चला गया । उस काम में जी भी लगता था । वहाँ के लोगों से जान-पहचान भी हो गयी । पर भाई इससे सन्तुष्ट नहीं थे । आहिस्ता-आहिस्ता कालेज की आर्थिक स्थिति खराब होती जाती थी । अन्त में निश्चय हुआ कि मैं फिर वकालत की तैयारी करूँ । कालेज की पढ़ाई तो मैंने खतम कर ली थी; पर परीक्षा नहीं दी थी । भाई की राय हुई कि मैं फिर कलकत्ते जाऊँ और वहाँ परीक्षा देकर वकालत शुरू करूँ । इस प्रकार विद्यार्थी-जीवन समाप्त हुआ । संसार में प्रविष्ट होने का समय आ गया । जब उन दिनों का स्मरण आता है तो मालूम होता है, मानो वह सुख का युग था । कभी-कभी अफ़सोस होता है तो इसीका कि उसका जितना अच्छा उपयोग हो सकता था, नहीं किया गया । मुझे इस बात की सुविधा तो मिली थी कि भाई पथप्रदर्शक रहे । जितने अच्छे विचार या अच्छी प्रवृत्तियाँ दिल में उठीं, सबके बीज उन्होंने ही बोये थे । पढ़ने के समय किसी प्रकार का कष्ट मैं अनुभव न करूँ, इसका प्रबन्ध वह बराबर करते रहते । उन्होंने कभी यह नहीं महसूस करने दिया कि घर में

कोई आर्थिक कठिनाई है। कलकत्ते में और उसके पहले छपरे में अपने साथियों के साथ मेरा बराबर प्रेम रहा। जहाँ तक मुझे स्मरण है, किसी के साथ कभी किसी प्रकार की खटखट तक नहीं हुई, झगड़े का तो कोई सवाल ही नहीं है; बल्कि सबके साथ प्रेम का ही व्यवहार रहा। थोड़े लोगों से तो बड़ी घनिष्टता हो गयी, जो बराबर क़ायम रही। यद्यपि पढ़ने में स्पर्धा और प्रतियोगिता काफ़ी रही, तथापि कभी किसी ने मेरे साथ न तो चालाकी की, न धूर्तता ही की, न कभी किसी के साथ अन्य-मनस्कता ही हुई। जहाँ-कहीं किसीको कोई दिक्कत या कठिनाई होती, हम बराबर एक दूसरे की मदद करते; बल्कि जो मेरे प्रतिस्पर्धी साथी थे उनके साथ मिलकर परीक्षा की तैयारी की गयी। जब मैं एफ़. ए. की परीक्षा के लिये तैयारी कर रहा था तो वह मित्र (जिसे मेरे साथ एण्ट्रेन्स में दूसरा स्थान मिला था) और मैं, दोनों एक साथ ही, पयीक्षा की तैयारी करते रहे। इसी प्रकार और परीक्षाओं में भी सब मिलजुलकर पढ़ते रहे।

कलकत्ते जाना और इडेन-हिन्दू-हॉस्टल का जीवन मेरे लिये बहुत लाभदायक हुआ। कलकत्ते जाने से ही आँखें खुलीं। यह सोचना बेकार है कि वहाँ अगर नहीं गया होता तो क्या होता। पर मेरा विश्वास है कि अन्यत्र कहीं मुझे इतना लाभ नहीं पहुँचता। इडेन-हिन्दू-हॉस्टल में रहने से बंगाली साथियों में हिलमिल जाने का जैसा सुअवसर मिला वैसा शायद दूसरी जगह कहीं रहने से नहीं मिलता। बंगाली साथियों की स्मृति अत्यन्त सुखकर है। मुझे किसीके भी खिलाफ़ कोई भावना हुई ही नहीं और न उसमें किसीने मेरे साथ कभी कोई बुरा बर्ताव किया। कभी किसीने कटु शब्द भी नहीं कहे। मैं मानता हूँ कि उनके साथ जो दिन बीते वे अत्यन्त सुखद और लाभप्रद हुए। उनके साथ रहते-रहते, बिना प्रयास के ही मैंने बँगला बोलना सीख लिया। आज भी मेरे बहुतेरे मित्र सारे बंगाल में भरे पड़े हैं। बहुत दिनों के बाद जब मैं असहयोग के दिनों में

बंगाल में दौरा करने गया, तो जहाँ जाता वहीं छ पुराने जाने-पहचाने मित्र मिल जाते और पुरानी स्मृतियाँ जाग उठतीं।

जब मैं कांग्रेस-प्रेसिडेंट हुआ, बिहार में फिर 1938-39 में बंगाली-बिहारी प्रश्न उठा। उसके वाद कांग्रेस में मुझे कुछ ऐसे काम करने पड़े जो बंगाल के कुछ लोगों को नापसन्द आये। मेरे ऊपर बहुत बौछारें हुईं। कटु लेख लिखे गये। गाली-गलौज भी काफ़ी मात्रा में हुई! पर मैं अभी तक यह नहीं महसूस करता हूँ कि उनके साथ मेरा कोई द्वेष है या उनके प्रति कभी किसी दूसरे प्रकार की भावना दिल में उठी भी हो। यह हो भी कैसे सकता है? इतने दिनों का सुन्दर सुहावना साथ, प्रेम का आदान-प्रदान, पुरानी सुखकर स्मृतियाँ, क्या यह सब मनुष्य भूल सकता है?

कलकत्ते में मेरी घनिष्ठता बहुत बिहारियों से भी हुई। जब मैं कलकत्ते में पढ़ने के लिये गया तो थोड़े ही बिहारी छात्र वहाँ थे। आहिस्ता-आहिस्ता उनकी संख्या बढ़ने लगी। पीछे तो वे खासी तादाद में वहां पहुँच गये। हम लोगों ने अपना बिहारी-क्लब वना लिया था जिसमें हर सप्ताह सब मिला करते थे। जाति-पाँति का झगड़ा इतना साथ लेते गये थे कि हिन्दू-हॉस्टल में हमने अपने लिए अलग चौका रखा था जिसमें बिहारी ब्राह्मण रसोई बनाता था। यद्यपि मैं डाक्टर गणेशप्रसाद के साथ भोज में शरीक़ हुआ था, तथापि जाति का बन्धन बहुत मानता था। वह तो मेरी अपनी जाति के आदमी (कायस्थ) थे; किसी भी दूसरी जाति के आदमी का छुआ हुआ कोई अन्न, जो अपने देश (बिहार) में नहीं खाया जाता है, वहाँ नहीं खाया। इतने दिनों तक वहाँ रहा, मगर बंगाली 'मेस' में कच्ची रसोई एक दिन भी नहीं खायी।

बिहारी साथियों में बहुतेरों से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया, जो आज कई ज़िलों में बिखरे हुए अपने-अपने स्थान पर कुछ न कुछ कर रहे

हैं। इसलिए जहाँ जाता हूँ, कोई न कोई कलकत्ते का साथी मिल ही जाता है। मेरे घनिष्ठ मित्रों में चम्पारन ज़िले के शिकारपुर के श्री अवधेशप्रसाद और जगन्नाथ प्रसाद, शाहाबाद के श्री शुकदेव प्रसाद वर्मा, भागलपुर के श्री कृष्ण प्रसाद, राँची के बदरीनाथ वर्मा, बलभद्र प्रसाद ज्योतिषी, डाक्टर साधुसिंह, डाक्टर राजेश्वर प्रसाद, वटुकदेव प्रसाद वर्मा, विन्ध्यवासिनी प्रसाद वर्मा प्रभृति थे। इनमें कितने चले गये और कितने आज भी कायम हैं। अवधेश बाबू की मित्रता बहुत फलदायक हुई और उससे लाभ हुआ। पीछे उनके साथ शादी का सम्बन्ध भी हो गया।

14. वकालत की तैयारी

मुजफ्फ़रपुर-कालेज में 9–10 महीनों तक काम करके 1909 के मार्च में मैं कलकत्ते फिर वापस चला यगा। उन दिनों बी. एल. की दो परीक्षाएँ होती थीं। एक परीक्षा मैंने तुरंत पास कर ली और दूसरी की तैयारी करनी थी। हाईकोर्ट में वकालत करने के लिए किसी वकील के साथ दो बरसों तक काम करना चाहिए था। एक छोटी-सी परीक्षा और पास करनी पड़ती थी जिसमें जज लोग स्वयं कुछ पूछताछ कर लिया करते थे। अगर मैं चाहता तो बी. ए. पास करने के बाद, किसी वकील के दफ्तर में नाम लिखाकर, 1908 में ही ये दो साल पूरा कर सकता था। पर उस समय इस ओर ध्यान नहीं गया। इसलिए जब मैं 1909 में कलकत्ते गया, तो उस समय से दो वरस की उम्मीदवारी करनी थी। इच्छा हुई कि किसी अच्छे वकील के साथ काम सीखूँ। खाँ बहादुर सैयद शम्सुलहुदा के पास मैं एक मित्र द्वारा पहुँचाया गया। उस समय उनके साथ दो उम्मीदवार थे और नियम के अनुसार दो ही हो सकते थे। उन्होंने कहा कि जगह खाली होते ही तुमको अपने साथ उम्मीदवारी (आर्टिकल-क्लर्क) रख लूँगा, तब तक दूसरे मित्र के साथ तुम्हें रखा देता हूँ। उन्होंने मुझे जहादुर रहीम ज़ाहिद के साथ रखा दिया। ये सज्जन भी अच्छे वकील थे। कुछ दिनों के बाद

विलायत गये और बारिस्टर होकर आये। पीछे हाईकोर्ट के जज भी हुए। बाद अपने नाम में इन्होंने 'साहोवर्दी' जोड़ दिया था, इसलिए जस्टिस साहोवर्दी के नाम से ही मशहूर हुए।

जब शम्सुलहुदा साहब के यहाँ जगह खाली हुई, मैं उनके साथ काम करने लगा। मैंने समय का अच्छा उपयोग किया। मैं रोज़ सवेरे शम्सुलहुदा साहब के घर पहुँच जाता। वहाँ दस बजे तक उनके हाथ के मुक़दमों के कागज़ों को पढ़ता। उनपर अपना नोट, जैसा उन्होंने बता दिया था, तैयार करता। थोड़े ही दिनों में उन्होंने देख लिया कि मैं उनके लिए अच्छा नोट तैयार कर देता हूँ, जिससे उनको पूरी मदद मिल जाती है, और 'जूनियर' वकील की बहुत ज़रूरत नहीं होती है।

मैं एक 'मेस' में रहा करता था जो उनके घर से बहुत दूर था। वहाँ कुछ दूर तक ट्राम पर जाना होता। ट्राम से उतरकर प्रायः एक मील पैदल जाना होता। वह स्वयं बहुत सवेरे उठकर कागज़ वग़ैरह पढ़ा करते थे। मैं सात बजे पहुँच जाता और दस बजे तक उनके साथ काम करता। फिर उसी तरह अपने 'मेस' में आता। भोजन करके एक बजे हाईकोर्ट जाता। वहाँ मुकदमों की बहस सुनता। खास करके उन मुकदमों में बहुत जी लगता जिनके लिए मैं उनको नोट तैयार कर देता। संध्या को हाईकोर्ट से लौटकर फिर भवानीपुर, जो हमारे 'मेस' से प्रायः चार मील पर था, जाकर रात में लड़के को पढ़ाता और 9–10 बजे लौटकर सोता। इस तरह काफ़ी परिश्रम करता। काम भी मैं अच्छी तरह सीख गया। पीछे शम्सुलहुदा साहब ने कहा कि तुमको आने-जाने में बहुत तकलीफ़ होती है और समय भी लगता है, तुम मेरे ही मकान में आ जाओ, तुम्हारे लिए—जो बन्दोबस्त कहो—कर दूँगा। उन्होंने एक कमरा रहने के लिए और एक अलग रसोई के लिए मुझे दे दिया। मैं वहाँ रहने लगा। तब रात को भी सवेरे भी, जब 4-5 बजे उठते और ज़रूरत समझते तो, मुझे पुकार लेते। अपने साथ ही मुझे रोज़ अपनी गाड़ी में कचहरी ले

जाते। उनसे घनिष्ठता इतनी बढ़ गयी कि घर के लड़के की तरह मुझे मानने लगे।

आजकल, जब हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न बहुत ज़ोरों से खड़े होते हैं, एक छोटी घटना का उल्लेख कर देना अच्छा होगा। शम्सुलहुदा साहब नामी वकील थे। मुसलमानों के एक नेता समझे जाते थे। मुस्लिमलीग के प्रेसिडेण्ट भी हुए थे। युनिवर्सिटी-सिनेट के और लेजिसलेटिव कौंसिल के मेम्बर भी थे। पीछे तो बंगाल के गवर्नर की एग्जिक्यूटिव (कार्यकारिणी) कौंसिल के मेम्बर हो गये। हाईकोर्ट के जज तक हो गये। लेजिसलेटिव कौंसिल के प्रेसिडेण्ट भी हो गये। 'सर' का खिताब भी मिला था। उस समय वह अभी खाँ बहादुर मात्र थे, पर हाईकोर्ट में मवक्किल और जज दोनों ही उनकी बड़ी प्रतिष्ठा करते थे। उनके हाथ में मुकदमें भी बहुत रहा करते थे। मिज़ाज भी उनका बहुत अच्छा था। धार्मिक प्रवृत्ति के आदमी थे। मुसलमान छात्रों को कुछ छात्रवृत्तियाँ भी दिया करते। कुछ विद्यार्थी केवल खाने के समय आकर वहाँ भोजन कर जाया करते थे।

मैं उनके मकान में ठहरा था। बकरीद का दिन आ गया। मुहल्ला भी मुसलमानी मुहल्ला था, जिसमें बहुत आबादी मुसलमानों की ही थी। मैंने सोचा कि शायद इस मौक़े पर गाय की क़ुर्बानी उनके घर में या आसपास के घरों में हो। मैं एक सनातनी हिन्दू था। मैंने सोचा, अच्छा होगा कि इस मौके पर दो-चार दिनों के लिये कहीं हट जाऊँ। मैं चुपचाप, उनको बग़ैर कुछ कहे ही, वहाँ से चला गया। 'मेस' में जाकर मित्रों के साथ ठहर गया। तीन-चार दिनों बाद लौटकर आया। उन्होंने पूछा कि कहाँ चले गये थे। मैंने सब बातें साफ़ नहीं कहीं। इतना ही कहा कि कुछ मित्रों के पास दो-तीन दिनों के लिये चला गया था। उन्होंने कहा—'मैं समझ गया, तुम बक़रीद के कारण चले गये थे। तुमने सोचा होगा कि यहाँ गाय की क़ुर्बानी होगी, इसलिये यहाँ रहना नहीं

चाहिए। क्या तुमने मेरे साथ बेइनसाफ़ी नहीं की ? तुमने समझ लिया कि तुम्हारी भावना का मैं कुछ भी खयाल नहीं करूँगा ? तुम तो तुम हो, मेरे घर में कई नौकर हिन्दू । फुलवारी का माली हिन्दू है, गायों को खिलाने के लिये नौकर हिन्दू है; क्या उनकी भावना का मैं खयाल नहीं रखता हूँ ? क्या उनका दिल नहीं दुखता ? तुमको मुझसे पूछ लेना चाहिए था। मेरे घर में अपने घर के हिन्दू नौकरों के खयाल से गाय की कुर्बानी नहीं होती है।"

मुझे बहुत शर्मिन्दा होना पड़ा। मैं समझ गया कि मैंने उनके साथ बेइन्साफ़ी की थी। उस समय वंगभंग का आन्दोलन चल ही रहा था। बंगाली मुसलमान इस आन्दोलन का विरोध कर रहे थे। पूरब-बंगाल में, जहाँ के रहनेवाले शम्सुलहुदा साहब थे, हिन्दू-मुस्लिम दंगे भी बहुत हुए थे। वह स्वयं वंगभंग के पक्ष में थे। यह सब होते हुए भी उनकी ऐसी भावनाएँ थीं, इस प्रकार का हमारे साथ व्यवहार था !

इसी बीच मैंने बी. एल., की परीक्षा भी पास कर ली थी। उसपर मैंने कभी ध्यान ही नहीं दिया, किसी तरह केवल पास कर गया। जब मेरे दो बरस उमीदवारी के खत्म होने पर आये, उसी समय उनके बंगाल के गवर्नर की एग्ज़िक्यूटिव कौन्सिल के मेम्बर होने की खबर आने लगी। उनको इसका पता चल गया। उन्होंने मुझसे कहा कि अब तो वह बहुत दिनों तक वकालत नहीं कर सकेंगे और इस तरह मुझको वकालत शुरू करने के वाद उनसे मदद नहीं मिलेगी। मगर मैंने सोचा, काफ़ी काम सीख लिया है और मैं खुद सब कर लूँगा।

1911 के अगस्त महीने में मैंने वकालत शुरू की। जिस दिन नाम लिखा गया उस दिन एक मुकदमा उन्होंने मुझे दिलवाया। स्वयं मेरे साथ जाकर जजों के सामने बैठे और मुझे बहस करने दिया। हाईकोर्ट में वकालत शुरू करने के वाद केवल चन्द दिनों के लिए हाईकोर्ट खुला रहा।

उसके बाद दुर्गापूजा की लम्बी छुट्टी हो गयी। छुट्टी के पहले ही मैं बिहार चला गया। वहाँ पूज्य मालवीयजी हिन्दू-विश्व-विद्यालय के लिए चन्दा जमा करने के सिलसिले में बिहार का दौरा कर रहे थ। चन्द दिनों तक उसी काम में लगा रहा। जिस समय हाईकोर्ट खुला और मैं कलकत्ते पहुँचा, उस समय शम्सुलहुदा साहब की नियुक्ति की खबर बहुत गर्म थी। मवक्किल भी समझने लगे थे कि अब यह वकालत नहीं करेंगे। हाईकोर्ट ढाई-तीन महीने बन्द रहने के बाद जब खुलता है, तो इन महीनों में जमा हुए बहुत मुकदमे नये दायर होते हैं। शम्सुलहुदा साहब के पास जो मुकदमे आये उनमें से कई में उन्होंने मुझे मुकर्रर कर दिया। रुपये तो कम मिले या नहीं भी मिले; पर उन्होंने कहा कि अब तो मैं नहीं रहूँगा, ये मुकदमे तुम्हारे ही हाथ में रहेंगे, अगर ठीक काम करोगे तो मवक्किल तुमसे ही काम लेते रह जाएँगे। इस बात का जिक्र केवल उनकी मुहब्बत दिखाने के लिए ही नहीं, पर एक दूसरे-उद्देश्य से भी जरूरी था।

कुछ दिनों के बाद इन्हीं मुकदमों में से एक पेश हुआ। मवक्किल ने मुझे बाजाब्ता फीस देकर तो रखा नहीं था' पर चूँकि वकालतनामा पर मेरा भी दस्तखत था, फ़िहरिस्त में मेरा नाम भी आया। एक दूसरे वकील को उसने पीछे मुकर्रर कर लिया। पर ऐसे जितने मुकदमे थे, जिनमें शम्सुलहुदा साहब ने मेरा नाम भी लिखवा दिया था, जब पेश होते, मैं उनके कागजों को खूब पढ़ लेता और कानून वगैरह देखकर तैयार हो जाता। उस दिन भी उसी तरह तैयार होकर गया। कानूनी सवाल उसमें बहुत उठते थे। मेरे सीनियर वकील साहब उतनी गहराई तक नहीं उतरे थे। मुकदमा जस्टिस सर आशुतोष के इजलास में था। मैं वकीलसाहब को मदद दे रहा था और नजीर पर नजीर पेश करने के लिए उनके हाथ में देता जा रहा था। सर आशुतोष सब देख रहे थे। कुछ देर के बाद उन्होंने मुझसे ही पूछा कि और कौन नजीर कहाँ है, बता दो तो किताबें मँगा लूँ। पीछे एक अच्छा फैसला दिखलाया, जो रिपोर्टों में प्रकाशित हुआ।

यह बात तो हो गयी। मैं उस मुकदमे की बात भूलना चाहता था कि दो दिनों के बाद एक दूसरे वकील ने, जिनके साथ मैं अक्सर काम किया करता था और जो युनिवर्सिटी-सिण्डीकेट के मेम्बर थे, मुझसे पूछा कि तुमको अगर लॉ-कालेज में प्रोफेसर की जगह मिले तो मंजूर करोगे ? मुझे आश्चर्य हुआ, क्योंकि मैंने इसके लिए किसीसे कहा नहीं था। सर आशुतोष से भी, जो वाइस-चान्सलर थे और जिनके यहाँ वकीलों का दरबार-सा लगा रहता था, मैंने न मुलाकात की थी और न कुछ कहा ही था। मैं यह भी नहीं जानता था कि मेरे ऐसे अभी दो बरस के वकील को भी यह जगह मिल सकती है। मैंने आश्चर्य से उनसे पूछा कि यह जगह मुझे कैसे मिल सकती है, मैंने न तो किसी से मुलाकात की है और न दर्ख़ास्त ही दी है। उसपर उन्होंने कहा कि किसी मुकदमे में तुमने सर आशुतोष के इजलास में काम किया है और वह बहुत खुश हुए हैं। तुम उनसे जाकर मिलो। मैं गया और चन्द दिनों के बाद लॉ-कालेज में जगह मिल गयी। केस में रुपये तो ज्यादा नहीं मिलते थे, पर पढ़ाने के लिए कानून घर पर खूब पढ़ना पड़ता था जिससे पूरा लाभ हुआ। इस प्रकार एक अनजान और बिना रुपये के मुकदमे ने मुझे यह इज्ज़त दी।

15. तिलक-दहेज की प्रथा

उपरोक्त घटना के थोड़े ही दिनों के बाद माँ की मृत्यु हो गयी। दशहरे की लम्बी छुट्टी में मैं घर आया था। कातिक के महीने में उनकी आदत थी कि संध्या के समय भी स्नान करके तुलसीपूजन करतीं और दिया जलातीं। इसीमें एक दिन ठंड लग गयी। ज्वर और कफ की बीमारी हो गयी। हम दोनों भाई घर पर ही थे। बहुत दवा-इलाज किया गया, पर वह बच न सकी। चार-पाँच दिनों की बीमारी के बाद ही जाती रहीं। उस समय भाई के पैरों में कुछ दर्द हुआ था। कुछ ऐसी भावना लोगों में थी कि पिता का श्राद्ध बड़े लड़के को और

माता का श्राद्ध छोटे लड़के को करना चाहिए। इसलिए सब क्रिया मैंने ही की।

भाई की बड़ी लड़की अब इतनी बड़ी हो चुकी थी कि उसका विवाह कर देना जरूरी था। माँ के जीवन-काल से ही बातचीत चल रही थी। हमारे समाज में लड़की का विवाह एक भारी हंगामा है। पहले तो पसन्द के लायक लड़का मिलना कठिन होता है। इसमें जाति-पाँति का बखेड़ा तो रहता ही है। इसके अलावा यह भी देखना पड़ता है कि उसके घर में कुछ सम्पत्ति भी होनी चाहिए ताकि लड़की को वहाँ जाकर कष्ट न होवे। छुटपन में शादी होने के कारण लड़का अभी स्वावलम्बी हुआ नहीं रहता। इसलिए घरवालों पर ही लड़की के पालन-पोषण का भार पड़ जाता है और यह देखना जरूरी हो जाता है कि घरवाले इस योग्य हैं या नहीं। मेरी अपनी शादी शायद ग्यारह बरस की उम्र में हुई थी। मैं पच्चीस-छब्बीस बरसों का हो चुका था। अभी तक पढ़ता ही रहा। उन चन्द महीनों के सिवा, जब मुजफ़्फ़रपुर-कालेज में प्रोफ़ेसरी करता रहा, अभी तक कुछ कमाया नहीं था। भाई ने भी कुछ उपार्जन नहीं किया था। स्कूल की मास्टरी में उन्हें जो थोड़ा मिलता था वह वहीं पर ख़र्च हो जाता था। इसलिए घर में जो ज़मीन्दारी थी उसीसे सब काम चलता था। भाई ने इन्तजाम अच्छा कर लिया था। इसलिए अब वैसा कष्ट नहीं अनुभव होता था जैसा बाबूजी के मरने के समय हुआ था। तो भी लड़की की शादी में तो बहुत ख़र्च होता ही।

भाई की लड़की की शादी जाने हुए घर में होने की बात थी, क्योंकि वर के बड़े भाई लोग हम लोगों के साथ कलकत्ते में पढ़ते थे और लड़का भी वहाँ पढ़ा करता था। इसलिए आशा थी कि सब बातें आसानी से तय हो जायँगी। पर पुरानी रूढ़ि जल्दी छूटती नहीं, इसलिए हम लोगों को भी दिक्कत उठानी ही पड़ी। ईश्वर की दया से सम्बन्ध बहुत अच्छा हो गया, और दोनों पक्ष बहुत संतुष्ट हैं। सब कुछ

होने पर भी घर में रुपये तो थे नहीं। अन्न तो खेतों में पैदा होता था, इसलिये उसकी बहुत चिन्ता नहीं थी; पर नकद ख़र्च के लिए हम दोनों भाइयों को कर्ज़ लेना पड़ा।

16. वकालत का आरंभ और एम. एल. की परीक्षा

भतीजी की शादी के थोड़े दिनों के बाद मैंने कलकत्ते में वकालत शुरू कर दी। काम शुरू करते ही मुझे मुकदमे मिलने लगे। मैंने जिस दिन से वकालत शुरू की. घर से अपने ख़र्च के लिये कभी कुछ नहीं लिया। मुझे इस बात की चिन्ता थी कि घर से कुछ मँगाना पड़ेगा तो भाई पर बड़ा बोझ पड़ेगा और विशेषकर लड़की की शादी के ख़र्चे के बाद उनकी कठिनाई अब और भी अधिक हो जाएगी। पर कुछ इत्तफ़ाक ऐसा हुआ कि हर महीने थोड़ी-बहुत आय हो जाती और वह ख़र्च के लिए काफ़ी होती। कलकत्ते में खर्च तो छोटे शहरों के मुकाबले अधिक पड़ता ही है, तो भी काम चल निकला। जैसा जस्टिस चटर्जी ने कहा था, मेरे पास धनी मवक्किल नहीं आये। केवल एक आदमी—रायबहादुर हरिप्रसाद सिंह ने, मैंने जिस दिन से वकालत शुरू की उसी दिन से, अपनी ज़मीन्दारी के सब छोटे-बड़े मुकदमे मेरे सुपुर्द किये। वह मुझे जानते थे और विलायत जाने के समय उन्होंने कुछ रुपये भी दिये थे। ऐसा इत्तफाक हुआ कि उनका ही मुकदमा मेरी वकालत का आख़िरी मुकदमा भी हुआ, क्योंकि वकालत छोड़ने के समय उनके ही बहुत बड़े मुकदमे में मैं काम कर रहा था।

ग़रीब मवक्किलों के मुकदमों में कोई दूसरा वकील भी नहीं होता था और अक्सर मुझे ही बहस करनी पड़ती थी। परिश्रम करके काम करता; इसलिए बहुत जल्द जज लोग भी मुझे पहचानने लगे। बहुत

लोगों की आदत होती है कि जजों से बहुत मिला करते हैं; मैंने ऐसा कभी नहीं किया। उनसे मेरी मुलाकात इजलास ही में रही। उनमें बहुतेरे, जिनके सामने मुझे काम करने का मौका मिला, मुझसे खुश रहे। सर लॉरेन्स जेन्किन्स चीफ जस्टिस थे। मेरे वकालत शुरू करने के एक-डेढ़ साल बाद ही वह चले गये, पर इतने थोड़े दिनों की वकालत में ही मुझसे इतने प्रसन्न थे कि जाने के समय अपने हस्ताक्षर के साथ अपनी एक तस्वीर मुझे दे गये। सर आशुतोष की बात ऊपर लिख ही चुका हूँ कि उन्होंने एक मुकदमे में जूनियर वकील की हैसियत से मुझे काम करते हुए देखकर लॉ-कालेज की प्रोफेसरी मुझे दे दी। इस तरह मैं अपनी कामयाबी से खुश था।

मुजफ्फरपुर-कालेज के मेरे पुराने साथी बाबू बैद्यनाथनारायण सिंह ने भी कलकत्ते में आकर हाईकोर्ट में मेरे साथ ही वकालत शुरू कर दी थी। हम दोनों में घनिष्ठ मित्रता हो गयी। इसी बीच में बिहार सूबे की भी, 1911 के दिसम्बर में शाही दरबार के वक्त, बंगाल से अलग होने की घोषणा हुई और 1912 के अप्रैल से बिहार एक नया सूबा हो गया। अभी तक हाईकोर्ट और यूनिवर्सिटी अलग कायम नहीं हुई थीं। बिहार के मुकद्दमे कलकत्ते में ही फैसला हुआ करते थे और बिहार के विद्यार्थी कलकत्ता-यूनिवर्सिटी की ही परीक्षाओं में बैठते थे। पर सूबा अलग होने के थोड़े ही दिनों बाद हाईकोर्ट अलग करने की बात होने लगी। जर्मनी के साथ लड़ाई शुरू हो जाने की कुछ विलम्ब होने की सम्भावना हो जाने पर हाईकोर्ट भी खुल जायेगा।

बैद्यनाथ बाबू ने मुझसे कहा कि एम. एल. की परीक्षा देनी चाहिए। मैं उस समय वकालत में बहुत दिलोजान से काम करता था और खूब कामयाब भी होना चाहता था। मैंने उनकी बात मानली। हम दोनों एक साथ एम. एल. की परीक्षा के लिए तैयारी करने लगे। कलकत्ता-यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं में यह सबसे कठिन परीक्षा समझी जाती थी।

हम दोनों को कचहरी में काम भी काफी रहता था; इसलिये पढ़ने का समय कम मिलता था। फिर लॉ-कालेज में प्रोफेसरी हो जाने के बाद तो मैं और भी अधिक समय का अभाव अनुभव करने लगा। कभी-कभी इस परीक्षा की झंझट से बच जाने का भी जी चाहता था; पर वैद्यनाथ बाबू छोड़ना नहीं चाहते थे। वह बार-बार ज़ोर देकर मुझको पढ़ने के लिये कहते रहते। कभी-कभी तो जिस तरह मास्टर लड़कों को पढ़ाते हैं, उस तरह मुझे पढ़ाते। वह मुझसे बार-बार कहते—"आपने एण्ट्रेन्स से बी. ए. तक सब परीक्षाओं में अव्वल स्थान पाया, एम. ए. में कुछ नीचे हुए और बी. एल. तो किसी प्रकार पास किया। इन अंतिम परीक्षाओं का फल आपके विद्यार्थी-जीवन का कलंक है। उसको धो देना चाहिए और वह कलंक एम. एल. पास करके ही आप धो सकते हैं।" इन सब दलीलों का और उनकी मास्टरी का नतीजा यह हुआ कि हम दोनों खूब परिश्रम करने लगे। विचार हुआ कि 1915 के दिसम्बर में होने-वाली परीक्षा में हम दोनों बैठेंगे और ऐसा सोचकर उसकी तैयारी की गयी। परीक्षा के समय मैं अन्तिम दो-तीन महीनों में 15-16 घंटों तक पढ़ा करता था। कचहरी, लॉ-कालेज तथा परीक्षा की तैयारी मिलाकर इतनी मेहनत पड़ी कि एक बार सख्त बीमार पड़ गया और भय हुआ कि सब मामला अब खत्म हो जाएगा।

1916 के मार्च से पटने में हाईकोर्ट खुलनेवाला था। हम दोनों समझ गये थे कि कलकत्ते में रहते हुए अगर हमने पास नहीं किया, तो पटना जा कर हमसे यह काम नहीं होगा; 1915 की परीक्षा ही हम लोगों के लिये प्रथम और अन्तिम परीक्षा होगी; इसलिये हमको ज़रूर पास करना चाहिए। परीक्षा के समय जजों से कहकर कुछ दिनों के लिए छुट्टी ले ली; अपने मुकद्दमों को मुलतवी करा दिया। हम लोगों के मुकद्दमें प्रायः बिहार के ही होते थे; इसलिये कुछ दिनों से वे वहाँ भी उन्हीं जजों के यहाँ पेश होते थे जिनके पटना आने की ख़बर थी। कहने से उन्होंने खुशी से मुकद्दमें मुलतवी कर दिये।

परीक्षा देकर हम लोग हाईकोर्ट के साथ पटने चले आये। परीक्षा का फल पटने आने के बाद मालूम हुआ। हम दोनों ही पास हुए। मैं फ़र्स्ट-क्लास में पास हुआ और वैद्यनाथ बाबू सेकेण्ड-क्लास में। हम ही दो बिहारी थे जिन्होंने पहले-पहल यह परीक्षा पास की। पीछे मालूम हुआ कि मुझे बहुत अधिक नम्बर मिले थे। यूनिवर्सिटी के नियम के अनुसार एम. एल. परीक्षा पास करने के बाद मौलिक निबन्ध लिखकर देने पर डी० एल० की उपाधि मिल सकती है और इस तरह आदमी कानून का डॉक्टर हो सकता है। हम दोनों पटने में विचार करने लगे कि का डॉक्टर हो सकता है। हम दोनों पटने में विचार करने लगे कि किसी अच्छे विषय पर निबन्ध लिखा जाय। इस सम्बन्ध में सर गुरुदास बनर्जी से भी हम मिले थे और राय ली थी।

सन् 1916 के मार्च में पटने में हाईकोर्ट खुला। सभी बिहारी वकील, जो कलकत्ता-हाईकोर्ट में काम करते थे, और बहुतेरे बंगाली वकील भी—जिनको बिहार के मुकद्दमे मिला करते थे—पटने चले आये। मैं भी पटने चला आया। उन दिनों पटने में मकान मिलना कठिन हो गया। भाड़े का एक मकान लेकर मैं रहने लगा। कलकत्ते में ही मेरे हाथ में मुकद्दमे बहुत रहा करते थे। पटने में आने पर वकालत और भी चल निकली। मैं भी बहुत जी लगाकर काम करने लगा।

कलकत्ते से पटने आने के पहले छात्र-सम्मेलन के मुंगेरवाले अधिवेशन का मैं सभापति बनाया गया। उसीमें यूनिवर्सिटी-सम्बन्धी नेशन-कमिटी की रिपोर्ट का विरोध किया गया था। इसके अलावा जहां अधिवेशन होता, मैं जाता और दूसरे प्रकार से भी संगठन की सहायता देता।

उन्हीं दिनों हिन्दी के साथ भी प्रेम बढ़ा। स्कूल में, एक या दो बरसों तक, नीचे के वर्ग में, मैंने संस्कृत पढ़ी। उसके बाद फारसी पढ़ने लगा। संस्कृत छोड़ने का मुख्य कारण यह था कि बाबूजी चाहते थे,

मैं वकील बनूँ। उनका ख़याल था कि मुकद्दमे के कागज़-पत्र फ़ारसी में लिखे मिलते हैं, इसलिये फ़ारसी पढ़ने से वकालत में मदद मिलेगी। पीछे मैंने घर पर कुछ संस्कृत पढ़ने की कोशिश भी की थी, पर वह बहुत दिन चल न सकी। इसलिये स्कूल और कॉलेज में मैंने बराबर फ़ारसी ही पढ़ी। फ़ारसी में नम्बर भी ख़ूब आता था। अगर फ़ारसी का नम्बर न होता तो मैं एन्ट्रेन्स में अव्वल नहीं होता; क्योंकि गणित में मुझे कम नम्बर आये थे। हिन्दी पढ़ने का तो कभी मौक़ा ही नहीं आया। हिन्दी का अक्षर-मात्र जानता था। घर में माँ आदि रामायण पढ़ा करती थीं। इसलिये मुझे भी रामायण पढ़ने की चाह हो गयी थी। बहुत दिनों तक तो सबेरे रामायण का पाठ करके ही कुछ खाता-पीता। यह नियम कुछ दिनों तक चला था। हिन्दी के दूसरे ग्रन्थों को देखने का कभी मौक़ा नहीं मिला था।

परीक्षा में एक पर्चा आता था जिसमें अंग्रेज़ी से किसी देशी-भाषा में और देशी-भाषा से अंग्रेज़ी में उलथा करने को कुछ दिया जाता था। एन्ट्रेन्स और एफ़. ए. की परीक्षा में मैंने देशी-भाषा के रूप में उर्दू ही ली थी। बी. ए. में पहुँचकर इच्छा हुई कि हिन्दी ले लूँ। बी. ए. में एक निबन्ध भी लिखना पड़ता था। मैंने हिन्दी ले ली। हिन्दी में पास भी कर गया। हिन्दी से सम्बन्ध इसी प्रकार आरम्भ हुआ।

कलकत्ते में हिन्दी के लेखक, विद्वान्, साहित्यिक और सेवक कई सज्जन रहते थे। उनमें से पंडित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी बिहार के रहने वाले थे। बिहारी-क्लब में वह अक्सर आया-जाया करते थे। विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय के प्रिन्सिपल पंडित उमापतिदत्त शर्मा भी बिहारी थे। उनसे भी उसी क्लब में मुलाक़ात हो गयी। इन लोगों के ज़रिये दूसरे लोगों से भी परिचय हो गया। कलकत्ते में हिन्दी-साहित्य-परिषद की स्थापना हुई। उसमें मैं काफ़ी दिलचस्पी लेने लगा। उसके जन्म का साल तो याद नहीं है, पर इतना याद है कि उसके अधिवेशनों में मैंने

भी कभी-कभी लेख पढ़े थे, जिनको विद्वानों ने पसन्द किया था। हममें से कुछ के दिल में खयाल उठा कि अखिल-भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन भी होना चाहिए; और इस विषय के लेख लिखे गये। हिन्दी-साहित्य-सेवियों ने इस प्रस्ताव का स्वागत किया और काशी में पहला अधिवेशन हुआ। मैं भी उसमें उपस्थित था और पूज्य मालवीयजी सभापति हुए थे। इस प्रकार सम्मेलन के साथ मेरा सम्बन्ध उसके आरम्भ से ही हुआ।

17. गांधीजी से भेंट

1916 में लखनऊ की कांग्रेस बड़े समारोह के साथ हुई थी। 1907 से जब कांग्रेस में दो दल हो गये, और गरम पार्टी कांग्रेस से अलग हो गयी, तब से कांग्रेस की लोकप्रियता कम हो गयी थी। उसके सालाना जलसों में भी कम लोग आया करते थे। यहाँ तक कि 1912 में जब पटने में कांग्रेस हुई, प्रतिनिधियों की संख्या बहुत कम थी। देश-हितैषियों की कोशिश थी कि दोनों दल मिला दिये जायँ जिससे कांग्रेस में फिर से जान आ जाय। यह प्रयत्न चलता रहा, पर यह सफल हुआ 1916 की कांग्रेस में ही। इसमें सभी विचार के लोग उपस्थित थे। एक तरफ़ लोकमान्य तिलक दल-बल के साथ आये थे। दूसरी ओर नरम दल के प्रायः सभी नेता उपस्थित थे। मिसेज़ बेसेण्ट भी आयी थीं। उसी साल मुस्लिम लीग के साथ समझौता भी हुआ। मुसलमान भी बड़ी संख्या में उपस्थित थे। महात्मा गांधी भी इस कांग्रेस में आये थे। वह 1915 में ही दक्खिन अफ्रिका से लौट कर सारे देश में भ्रमण करते रहे। पर इस कांग्रेस में वह किसी प्रस्ताव पर बोले नहीं।

गांधीजी का इरादा था कि वह चम्पारन में जा कर वहाँ के रैयतों से मिलें और उनका दुख उन्हीं के मुँह से सुनें। पर वहाँ की ग्रामीण बोली

वह समझ नहीं सकते थे। इसलिये वह चाहते थे कि कोई दु-भाषिया का काम करने के लिए उनके साथ जाय। उनका विचार था कि दो-चार दिनों में सब बातें मालूम हो जाएँगी। राजकुमार शुक्ल ने भी ऐसा ही कहा था। इसलिये वह दो-चार दिनों के लिये ही तैयार हो कर आये थे। बाबू ब्रजकिशोर को ठीक उसी वक्त कलकत्ते में कुछ काम था। वह खुद गांधीजी के साथ न जा सके। पर उन्होंने दो मित्रों को गांधीजी के साथ कर दिया, जो वकील थे। उन्होंने यह भी सोच लिया कि कलकत्ते से लौटने पर वह खुद चम्पारन जायँगे और ज़रूरत होगी तो मुझे भी साथ ले जायँगे।

चम्पारन जिले का सदर शहर मोतीहारी है। गांधीजी वहाँ पहुँचे। पहुँचने के बाद उन्होंने देहात जाने का इरादा कर लिया। एक गाँव से एक प्रतिष्ठित रैयत आये, जिनका घर दो-चार ही दिन पहले नीलवर की ओर से लूट लिया गया था। उस लूट-खसोट के निशान अभी तक मौजूद थे। उन्होंने आ कर सारा किस्सा कहा। गांधीजी वहीं जाना चाहते थे। रास्ते में ही कलक्टर का हुक्म पहुँचा कि आप ज़िला छोड़कर चले जाइए। उन्होंने ज़िल छोड़ने से इनकार कर दिया। वह उदूल-हुक्मी के मुकद्दमे का इन्तज़ार करने लगे। उसी दिन यह भी मालूम हो गया कि मुकद्दमा चलेगा। मैं उसी दिन पूरी से पटना लौटा था। कच-हरी में मेरे पास ये सारी बातें उन्होंने तार द्वारा लिख भेजीं।

यह पहला ही अवसर था जब गांधीजी से मेरा किसी प्रकार का सम्पर्क हुआ। मैंने कलकत्ते तार दे कर बाबू ब्रजकिशोर को बुला लिया। दूसरे दिन सवेरे की गाड़ी से मिस्टर मज़हरुलहक और मिस्टर पोलक—जो उस समय हिन्दुस्तान में ही थे—उसी रात को, गांधीजी का तार पा कर, पटने पहुँच गये। बाबू ब्रजकिशोशर, अनुग्रह नारायण और शम्भूशरण के साथ मैं मोतीहारी के लिये रवाना हो गया। हम लोग दिन में तीन बजे के करीब, सिपहर को, वहाँ पहुँचे। उस समय तक

मामला अदालत में पेश हो चुका था, बल्कि सुनवाई के बाद हुक्म के लिए तीन-चार दिनों के वास्ते मुलतवी कर दिया गया था।

बाबू गोरखप्रसाद के मकान पर गांधीजी ठहरे थे। हम लोग जब वहाँ पहुँचे तो गांधीजी एक कुर्ता पहने हुए बैठे थे। हम लोगों से उनका परिचय पहले से नहीं था। जब परिचय कराया गया, तो मुझसे हँसते हुए उन्होंने कहा—"आप आ गये? आपके घर पर तो मैं गया था।" मैंने कुछ किस्सा तो सुन लिया था, इसलिए कुछ शर्मिन्दा भी हुआ। उन्होंने, जो कुछ कचहरी में हुआ था, सब कह सुनाया।

गांधीजी ने सब बातें कहकर हमसे कहा कि अपने साथी बाबू धरनीधर और बाबू रामनौमी से और सब बातें सुन लीजिए। इतना कह वह मि० पोलक से बातें करने लगे। हम लोगों ने उन दोनों भाइयों से विस्तार-पूर्वक सारा हाल सुना। मालूम हुआ कि गांधीजी प्रायः रात-भर जागकर वायसराय तथा नेताओं के पास भेजने के लिए पत्र लिखते रहे हैं और कचहरी के लिए अपना बयान भी उन्होंने रात में ही तैयार कर लिया था। उन दोनों से, जो दुभाषिये का काम करने के लिए ही आये थे, गाँधीजी ने पूछा था कि मेरे कैद हो जाने के बाद आप लोग क्या करेंगे। वे लोग प्रश्न की गूढ़ता को शायद पूरा समझ न सके थे। बाबू धरनीधर ने मजाक में कह दिया था कि आपके (गांधीजी के) कैद हो जाने के बाद दुभाषिये का काम नहीं रह जायगा—हम लोग अपने-अपने घर चले जाएँगे। यह सुनकर गांधीजी ने प्रश्न किया—और इस काम को ऐसे ही छोड़ देंगे? इस पर उन लोगों को कुछ सोचना पड़ा। बाबू धरनीधर ने, जो बड़े थे, उत्तर दिया कि वह जाँच का काम जारी रखेंगे, और जब उन पर भी सरकार की ओर से नोटिस हो जाएगी, तो वह चुंकि जेल जाने के लिए तैयार नहीं हैं, खुद तो चले जाएँगे और दूसरे वकील को भेजेंगे, जो जाँच का काम करेंगे, और

अगर उनपर भी नोटिस हुई, तो वह भी चले जाएँगे और उनके पीछे तीसरी टोली आयेगी—इस प्रकार काम जारी रखा जाएगा।

यह सुनकर गांधीजी को कुछ संतोष हुआ, पर पूरा नहीं। उन लोगों को भी सन्तोष न हुआ। वे लोग रात को सोचते रहे कि यह आदमी न मालूम कहाँ से आकर यहाँ के रैयतों के कष्ट दूर करने के लिए जेल जा रहा है और हम लोग जो यहाँ के रहनेवाले होकर रैयतों की मदद का दम भरा करते हैं, इस तरह घर चले जाएँ, यह अच्छा नहीं मालूम होता।

यह आदमी जो दक्खिन अफ्रीका में इतना काम कर आया है, इन अनजान किसानों की खातिर सब कष्ट सहने के लिए तैयार है। ऐसी दशा में भी हम घर चले जाएँ, यह कैसे हो सकता है? इधर बाल-बच्चों की भी फिक्र थी!

रात-भर सोच-विचार करने के बाद, दूसरे दिन सबेरे, जब गांधीजी के साथ ये लोग कचहरी जा रहे थे, इनकी भावनाएँ उमड़ पड़ीं। इन्होंने साफ़-साफ़ कह दिया, आपके जेल जाने के बाद अगर ज़रूरत पड़ी तो हम लोग भी जेल जाएँगे।

यह सुनते ही गाँधीजी का चेहरा खिल उठा। वह बहुत ही खुश होकर बोल उठे—अब मामला फ़तह हो जाएगा।

वहाँ पहुँचते ही ये सारी बातें हम लोगों ने उन दोनों भाइयों से सुनीं। अब तो हमारे सामने भी जेल जाने का प्रश्न आ गया। हम लोगों ने तय कर लिया कि ज़रूरत पड़ने पर हम भी जेल जायेंगे। यह निश्चय गांधीजी को हमने सुना दिया। उन्होंने काग़ज-कलम लेकर सबके नाम लिख लिये। हम लोगों को कई टोलियों में उन्होंने बाँट दिया। यह भी तय कर दिया कि ये टोलियाँ किस क्रम से जेल जाएँगी। पहली टोली के सरदार मज़हरुलहक़ साहब थे, दूसरी के बाबू ब्रजकिशोर।

एक टोली का सरदार मैं भी बनाया गया। ये सारी बातें वहाँ पहुँचने के तीन-चार घंटों के अन्दर ही तय हो गयीं

मुकद्दमे में तीन या चार दिनों के बाद हुकुम सुनाया जाने को था। उस दिन गांधीजी जेल जानेवाले थे मजहरुलहक साहब के हाथ में कोई मुकद्दमा गोरखपुर में था। वह चले गये वहाँ, ताकि मामला खतम करके उस दिन के पहले ही वापस आकर नेतृत्व करेंगे।

बाबू व्रजकिशोर भी अपने घर का प्रबन्ध करने के लिए दरभंगा चले गये। हम लोग मोतीहारी में ही ठहरकर किसानों के बयान सुनने और लिखने लगे। विचार था कि जब ये दोनों सज्जन वापस आ जायँगे तब हम लोग भी एक-एक करके घर जाएँगे और घर के लोगों से मिलजुलकर जेल-यात्रा की तैयारी करके लौट आएँगे।

चम्पारन की जाँच शुरू हो गयी। हजारों की तायदाद में किसानों ने बयान लिखवाये। शायद 20–25 हजार बयान हम लोगों ने लिखे होंगे। तारीख के पहले ही मजिस्ट्रेट ने लिख भेजा कि सरकार के हुक्म से गांधीजी पर से मुकद्दमा उठा लिया गया और उनको जिले में जाँच करने की इजाजत दे दी गयी। जाँच से पता चला कि जो कुछ जुल्म हमने सुना था, वहाँ की परिस्थिति उससे कहीं अधिक बुरी थी। पहली मुलाकात में ही हम लोग अपनी इच्छा से गांधीजी के फाँस में फँस गये। ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, उनके साथ केवल प्रेम ही नहीं बढ़ा, उनकी कार्यपद्धति पर विश्वास भी बढ़ता गया। चम्पारन का काण्ड समाप्त होते होते हम सबके सब उनके अनन्य भक्त और उनकी कार्यप्रणाली के पक्के हामी बन चुके थे।

18. चम्पारन और उसके बाद

हम लोगों के लिए गांधीजी का तरीका एक बिलकुल नया तरीका था। उस तरह का काम हमने पहले कभी किया ही न था। हम समझते

थे कि कांग्रेस में अथवा किसी सभा में किसी विषय पर व्याख्यान दे देना, अदालत में जाने लायक बात को वहाँ पेश कर देना, या जो कौन्सिल में प्रश्न कर सकता हो उसका किसी बात पर वहाँ प्रश्न कर देना या प्रस्ताव उपस्थित कर देना ही काफी है। इससे अधिक हो ही क्या सकता है। गांधीजी ने इनमें से एक बात भी न की। उन्होंने रैयतों के बयान लिये। इस तरह उन्होंने पहले सब बातों की ठीक-ठीक जानकारी हासिल कर ली। इस तरह बयान लेने से ही रैयतों का डर छूटता गया। हम लोगों को भी ऐसी-ऐसी बातें मालूम होने लगीं जिनका होना हमने स्वप्न में भी मुमकिन नहीं समझा था। हम लोग भी निडर होते गये।

बिहार के गवर्नर ने गांधीजी को राँची बुलाया। उसके पत्र का आशय यह था कि चम्पारन में गांधीजी के रहने से बहुत अराजकता फैल रही है, इसलिए गवर्नमेण्ट उनको वहाँ से हटा देना चाहती है? मगर कोई हुक्म देने के पहले गवर्नर एक बार उनसे मिल लेना चाहते हैं। गांधीजी के राँची जाने के पहले हम लोगों ने सोच लिया कि अब या तो वह गिरफ्तार कर लिये जायँगे या सूबे से बाहर निकाल दिये जाएँगे और शायद हम लोग भी अब बाहर रहने न पावेंगे। महात्माजी ने हम लोगों को बेतिया और मोतीहारी में दो टोलियों में रख छोड़ा। गिरफ्तारी होने पर किस तरह से क्या करना होगा, इसके सम्बन्ध में उन्होंने पूरी व्यवस्था दे दी। हम लोगों के पास इतने रैयतों के बयान आ गये थे—इतने कागज-पत्र जमा हो गये थे कि रैयतों की शिकायतों के लिए पूरा सबूत हाथ में आ गया था। उसको सुरक्षित रखना था। हम लोगों ने पहले से ही सबकी नकल करा ली थी। नकलों को सुरक्षित रखने का प्रबन्ध कर दिया गया। अपने-अपने स्थान पर हम लोग खबर का इन्तजार करने लगे। बेतिया-आफिस मेरे चार्ज में रखा गया था। बहुत इन्तजारी के बाद राँची से तार आया कि गवर्नर से बातें अभी चल रही हैं। नतीजा यह हुआ कि दो-तीन दिनों तक बातें होती रहीं। अन्त में गवर्नर ने एक कमीशन मुकर्रर किया। गांधीजी को भी उसका

मेम्बर बनाया। रैयतों की शिकायतों की जाँच करने का काम उसीके सुपुर्द किया। कमीशन ने सरकारी अफ़सरों, नीलवरों और रैयतों के इज़हार लिये। दूसरे जो कागज़-पत्र पेश किये गये उन्हें देखा। बहुतेरी कोठियों में जा कर उनके कागज़-पत्र देखे। रैयतों से भी मिला।

कमीशन की नियुक्ति हो जाने पर, महात्माजी के आज्ञानुसार रैयतों की तरफ़ से जो कागज़ पेश हुऐ थे, उनको खूब देखकर और दूसरे सबूत इकट्ठे करके, हम लोगों ने कमीशन के लिए एक बयान तैयार किया। कमीशन में सरकारी अफ़सर थे, नीलवरों का प्रतिनिधि था, ज़मीन्दारों का प्रतिनिधि था। रैयतों की तरफ़ से प्रतिनिधि-स्वरूप गांधीजी थे। जब जब रिपोर्ट लिखने का समय आया, तब एक भारी अड़चन आ पड़ी। गांधीजी की और कमीशन के अध्यक्ष पर फ्रैंक स्लाई की बहुत इच्छा थी की सर्वसम्मति से रिपोर्ट दी जाय। गवर्नर ने भी कहा था जब सर्वमान्य रिपोर्ट होगी, तभी उसपर वह कुछ कर सकेगा, नहीं तो कुछ करने में कठिनाई होगी।

अन्त में महात्माजी और नीलवरों के दरमियान बहुत बातचीत के बाद यह तय हुआ कि जो लगान बढ़ा दिया गया है, उसका थोड़ा-सा हिस्सा छोड़ दिया जाय, जो एक-चौथाई से कुछ कम था। बाकी तीन-चौथाई इज़ाफ़ा ज्यों का त्यों रह जाय। जो नगद रुपये वसूल किये गये थे, उसमें से भी फी सैकड़ा पचीस रुपये वापस किये जायँ और बाकी को रैयत छोड़ दें। मुख्य शिकायतें यही दो और तीनकठिया प्रथा थी। दूसरी शिकायतें ऐसी थीं जिनका दूर करना अफ़सरों के ठीक काम और इनसाफ़ करने ही पर निर्भर था। ये सिफारिशें रिपोर्ट में सर्व-सम्मति से मान ली गयीं। पिछली शिकायतों के सम्बन्ध में रिपोर्ट विशेष नहीं लिखा गया। केवल शिकायतों का उल्लेख करके उनके दूर करने का उपाय बतलाया गया। शरह-बेशी कम करने और नगद तावान के रुपये पचीस फी सैकड़ा

वापस करने के अलावा तीनकठिया-प्रथा-कानून बन्द कर देने की भी सिफ़ारिश हुई।

कमीशन में जो बात सुलह से तय हुई वह रैयतों की माँग से बहुत कम थी। मगर इन सारे आन्दोलन का यह नतीजा हुआ कि चम्पारन से नीलवरों का पाँव उठ गया। अब उनमें वह शक्ति नहीं रह गयी कि जुल्म कर सकें। रैयतों में हिम्मत और जान आ गयी। अब वे चुपचाप जुल्म बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं थे। और जुल्म के बिना चम्पारन का कारबार मुनाफ़ा नहीं दे सकता था। वह जुल्म अब बन्द हो गया। नीलवरों ने यह बात जल्द समझ ली। तीन-चार बरसों के अन्दर सबने अपनी ज़मीन और कोठी बेच डाली। जो कुछ मिला, लेकर चले गये। उनकी ज़मीन रैयतों के हाथ आ गयी। अब वे उसको आबाद कर रहे हैं। जहाँ नीलवरों के सुन्दर बगीचे और बँगले थे, वहाँ आज रैयतों के मवेशी बाँधे जा रहे हैं। उन 70–75 कोठियों में से इक्की-दुक्की आज भी खड़ी हैं। वहाँ अब जुल्म नहीं हो सकता। वे उस साँप की तरह अपने दिन बिता रहे हैं जिसके दाँत तोड़ दिये गये हैं, जो अब भी कुछ फुफकार तो सकता है, पर किसी को काट नहीं सकता!

1918 के अप्रैल में अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन इन्दौर में हुआ। महात्मा गांधी उसके सभापति हुए। हम लोग बिहार से कुछ प्रतिनिधि गये। चम्पारन के बाद हम यह समझ बैठे थे कि महात्माजी पर हमारा विशेष अधिकार हो गया है। इस ख़याल से इन्दौर में हम लोग सभापति के साथ ही ठहरे। उस सम्मेलन में बड़े मार्के की बात यह हुई कि दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार का काम आरम्भ करने का निश्चय हुआ। महात्माजी के लिए यह कोई नयी बात नहीं थी। उन्होंने चम्पारन से ही उस काम को शुरू कर दिया था। एक बार स्वामी सत्यदेवजी वहाँ उनसे मिलने आये। महात्माजी ने उनको राय दी कि कुछ दिनों तक साबरमती-आश्रम में ठहरने के बाद

वह दक्षिण-भारत में हिन्दी-प्रचार करने का काम अपने हाथ में लें। इन्दौर-सम्मेलन के कुछ पहले से ही दक्षिण में यह काम शुरू हो गया था। स्वामी सत्यदेव के साथ उन्होंने अपने कनिष्ठ पुत्र देवदास गांधी को इस काम करने के लिए भेज दिया। इन्दौर-सम्मेलन में जो काम आरम्भ हुआ, उसका विस्तार आज सारे दक्षिण-भारत में हो गया है। वहाँ लाखों स्त्रियों और पुरुषों ने हिन्दी सीख ली है।

• सम्मेलन से महात्माजी के साथ मैं सीधे साबरमती चला गया। अभी आश्रम के मकान नहीं बने थे। बाँस की चटाइयों की झोपड़ियाँ थीं। उन्हीं में आश्रमवासी रहा करते थे। मुझे आश्रम में अधिक ठहरने का मौका नहीं मिला। महात्माजी तुरंत 'खेड़ा' के गाँवों में चले गये। वहाँ लगान-बन्दी का काम शुरू हो गया था। सरदार वल्लभ भाई, श्री शंकरलाल बैंकर, श्रीमती अनुसूयाबाई और दूसरे कार्यकर्ता गांधीजी के नेतृत्व में वहाँ प्रचार-कार्य कर रहे थे। मुझे महात्माजी के साथ दो-तीन दिनों तक वहाँ के गाँवों में सफर करने का सुअवसर मिला। गुजरात के लोगों के साथ वह घनिष्ट सम्बन्ध आरम्भ हुआ, जिसका सूत्रपात चम्पारन में गांधीजी के साथ आये हुए और उनके भेजे हुए लोगों से मुलाकात होने ही पर हो गया था। महात्माजी पैदल ही सफर करते थे। मुझे भी वैसा ही करना पड़ा। उन दिनों वह जूते नहीं पहनते थे। अप्रेल के अन्त में गरमी काफी पड़ रही थी। एक दिन, प्रायः दोपहर हो चुके थे, हम लोगों को रेतीले रास्ते से जाना था। बालू गर्म हो गयी। पैर जल रहे थे। पर गांधीजी ने परवाह नहीं की। जहाँ जाना था, हम लोग चले ही गये। खेड़ा का सत्याग्रह सफल हुआ चम्पारन और खेड़ा, दोनों का काम प्रायः एक बरस के भीतर ही खतम हो गया।

मैं फिर अपनी वकालत में लग गया। बीच-बीच में कान्फ़रेन्सों और कांग्रेस में शरीक होना उन दिनों के वकील अपना फ़र्ज़ समझते थे।

मैं भी उन्हीं में एक था। चम्पारन के बाद विचारों में बहुत परिवर्तन आ गया था। इस प्रकार के काम को छुट्टियों के दिनों में केवल मनोरंजन का विषय न मानकर इसमें अधिक समय देने की जरूरत महसूस करने लगा था। पर अभी कोई रास्ता निर्धारित नहीं था। इसलिए अभी पुराने ढर्रे पर ही काम होता रहा। इन्दौर के हिन्दी-साहित्य, सम्मेलन, बम्बई में कांग्रेस के विशेष अधिवेशन और फिर दिल्ली में उनके दिसम्बरवाले साधारण अधिवेशन में शरीक हुआ। बस इतने ही से अपना कर्त्तव्य पूरा समझा।

19. पंजाब–हत्याकांड

सारे देश में असहयोग की चर्चा होने लगी। गांधीजी कुछ दौरा भी करते और कुछ लिखते भी। यह तैयारी हो ही रही थी कि 1 अगस्त (1920) को लोकमान्य तिलक का देहावसान हो गया।

मौलाना शौकतअली अप्रेल (1920) में ही पटने आये थे, जब एक बड़ी सभा हुई। उस दिन पटने में रहने के कारण मैं भी इस सभा में शरीक हो गया। गांधीजी की राय और कार्रवाइयों से मैं परिचित था ही। आरा में पंडित मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु दास दोनों ही डुमराँव-राज्य और हरीजी के 'वरसावाले' मुकद्दमे में दोनों ओर से काम कर रहे थे। मैं पंडितजी के साथ काम तो कर ही रहा था, उनसे राजनीति स्थिति के सम्बन्ध में भी बातें हुआ करतीं। वह कभी-कभी देशबन्धु से भी बातें करते। इसलिए मैं सब बातों से अवगत था। जब पटने में मौलाना शौकत अली ने असहयोग का कार्यक्रम बताया, लोगों से पूछा कि लोग इसके लिए तैयार हैं और मुझे इस सम्बन्ध में कुछ कहने के लिए कहा गया, तो मैंने उसी सभा में पहले-पहल असहयोग में शरीक होने का वचन दे दिया। अभी तक कांग्रेस ने कुछ फैसला नहीं किया था और न कार्यक्रम ही पूरी तरह से निश्चित था; पर मैंने कह दिया कि देश अगर असहयोग करने का निश्चय करेगा और इस निश्चय के अनुसार जब असहयोग

आरंभ किया जायगा. तो मैं भी पीछे नहीं रहूँगा। उस समय तक यह जाहिर हो चुका था कि असहयोग में वकालत छोड़नी पड़ेगी और कौंसिलों में नहीं जाना होगा। मैं वकील तो था ही। मेरी इच्छा यह भी थी कि 1920 के नवम्बर में नये माण्टेगू-चेम्सफ़ोर्ड-विधान के अनुसार होनेवाले चुनाव में, चम्पारन से प्रान्तीय कौन्सिल के लिये उमेदवार खड़ा होऊँ; इस विचार के अनुसार मैं चम्पारन में एक-दो बार कुछ जगहों का दौरा भी कर चुका था। एक जगह तो मज़हरुल एक साहब मेरी उमीदवारी के समर्थन में जा भी चुके थे। असहयोग आरम्भ होने पर दोनों ही छोड़ना पड़ेगा। मैंने उस सभा में यह घोषणा करके बता दिया कि मैं दोनों ही छोड़ूँगा।

मौलाना शौकतअली से मेरी पहले की मुलाक़ात नहीं थी; पर शायद गांधीजीजी ने उनसे मेरे सम्बन्ध में कुछ कहा था। सभा समाप्त होते ही मैं चला आया। वहाँ उनसे मुलाकात नहीं हुई। पर उन्होंने मेरी तलाश की थी। जब वह रवाना होनेवाले थे, मैं स्टेशन पर गया। वहीं उनसे पहले-पहल बातें हुईं। सभा की बात और गांधीजी की कही हुई बातें उनको याद थीं। इसलिए उन्होंने बहुत प्रेम-पूर्वक बातें कीं; मेरा उत्साह भी बढ़ाया। इस तरह मेरे लिये असहयोग का सूत्रपात अचानक इस सभा में हुआ; जहाँ मैं उस दिन पटने में इत्तफाक से आने के कारण जा सका था।

कांग्रेस का विशेष अधिवेशन सितम्बर में होनेवाला था। बिहार-प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन भी अगस्त में होनेवाला था। असहयोग की बातें जोरों से चल रही थीं। बिहार में यह प्रश्न उठा कि प्रान्तीय सम्मेलन का सभापति कौन बनाया जाय। लोगों ने मुझे ही चुना। मैं असहयोग का पक्षपाती था; पर यह नहीं कह सकता था कि प्रान्त के लोग इसे मंजूर करेंगे या नहीं। अगर मंजूर करेंगे भी, तो समय आने पर कितने इसमें शरीक होंगे। इसलिये मैंने श्री सच्चिदानन्द सिंह से

पूछा कि ऐसी स्थिति में क्या यह मेरे लिये उचित होगा कि मैं अपनी राय सभापति के भाषण में खोलकर कहूँ और यदि सम्मेलन मेरी बात स्वीकार न करे तो एक संकट उपस्थित कर दूँ। उन्होंने कहा कि मुझे पूरा अधिकार है कि मैं अपनी राय दे दूँ और सम्मेलन को भी अधिकार है कि उसे वह स्वीकार करे या न करे; इसलिये मेरे सभापतित्व करने में कोई बाधा नहीं है।

मैं आरा में मुकद्दमे में फँसा हुआ था। वहाँ मैंने अपना भाषण हिन्दी में लिखना शुरू किया। प्रान्तीय सम्मेलन-जैसी सभा या संस्था में उन दिनों हिन्दी में भाषण नहीं हुआ करते थे; प्रायः अंग्रेज़ी में ही सब कार्रवाई हुआ करती थी। एक ओर मुकद्दमे की भीड़, दूसरी ओर सम्मेलन का भाषण लिखना और स्थिति की चिन्ता, सब मिल-मिलकर मैं ज्वर-ग्रस्त हो गया। भय होने लगा कि प्रान्तीय सम्मेलन के लिये मैं भागलपुर न जा सकूँगा। पर समय आते-आते इतना अच्छा हो गया कि किसी तरह अपने लिखे भाषण के साथ यथासमय भागलपुर पहुँच गया। वहाँ सम्मेलन में भाग ले सका। पर सम्मेलन के सम्मुख उपस्थित कठिन समस्या ऐसी थी कि वह किसी भी काम करनेवाले को डरा सकती थी। मेरा अपना विचार साफ़ और दृढ़ था कि असहयोग आवश्यक हो गया है। पर मैं यह जानता था कि सूबे के सभी पुराने और अनुभव राजनीतिज्ञ नेता उसके विरोधी थे। यद्यपि रौलट-बिल-विरोधी आन्दोलन के समय से ही सभाओं में जनता बहुत बड़ी संख्या में आया करती थी, पर यह कहना कठिन था कि वह असहयोग में कहाँ तक साथ देगी। सम्मेलन में बड़े-बड़े नेताओं में से बहुतेरे गये भी नहीं। इसलिये यदि सम्मेलन मेरे कहने से असहयोग की नीति स्वीकार कर ले, तो इसका अर्थ यह होगा कि उसको कार्यान्वित करने का भार अधिकतर हम लोगों के ही ऊपर पड़ेगा—हम कहाँ तक इसे निबाह सकेंगे? इस तरह के अनेकानेक प्रश्न दिल को बहला देते थे। पर मैं जानता था कि नये लोग अधिकांश में मेरे साथ थे।

बाबू व्रजकिशोर प्रसाद, बाबू धरणीधर प्रभृति ज़ोरों से असहयोग का समर्थन कर रहे थे। इनके अतिरिक्त मुसलमान तो प्रायः बड़ी उमंग से इसमें आनेवाले थे। मजहरुल हक साहब के अलावा शाह मुहम्मद जुबैर, मौलवी महम्मद शफ़ी, मौलाना नरुलहसन प्रभृति भी साथ देनेवाले थे ही। पर मुसलमानों में भी हसन इमाम साहब, नवाब सर फ़राज़ हुसेन खां प्रभृति—जो बराबर सार्वजनिक कामों में भाग लिया करते थे—विरोधियों में ही थे। एक ओर अधिक अनुभव तथा बहुत दिनों की सार्वजनिक सेवा थी, तो दूसरी ओर उत्साह, देश की परिस्थिति से उत्पन्न असह्य बेचैनी, और आग में कूदने की तत्परता थी। ईश्वर का नाम ले कर इस सेवा को उठाया और खुलकर असहयोग का समर्थन किया।

सम्मेलन ने मेरी बात मान ली, बहुत बड़े बहुमत से असहयोग के सिद्धांत का समर्थन किया और बिहार की स्थिति पर ध्यान रखते हुए कार्यक्रम बनाने के लिये एक कमिटी बना दी। वहाँ पर बाबू व्रजकिशोर हीं नेता थे। उनकी यह जबरदस्त राय थी कि यह असहयोग, खिलाफ़त-सम्बन्धी अन्याय को दूर और पंजाव-हत्याकाण्ड-सम्बन्धी कांग्रेस की माँगों को पूरा कराने के अलावा स्वराज्य के लिये भी किया जाय। उस समय तक जितनी सभाएँ होती थीं अथवा जो लेख पत्रों में लिखे जाते थे, उनमें खिलाफ़त और पंजाब-हत्याकांण्ड ही असहयोग के कारण बताये जाते थे। बाबू व्रजकिशोर उसमें 'स्वराज' को जोड़ कर (जब तक स्वराज्य प्राप्त न हो) उसे एक प्रकार से स्थायित्व देना चाहते थे। ऐसा ही हुआ भी। गुजरात में प्रान्तीय (राजनीतिक) सम्लमेन हुआ और वहाँ भागलपुर-सम्मेलन के दो-चार दिन पहले ही असहयोग का समर्थन हुआ। जहाँ तक मुझे याद है, विहार और गुजरात ही दो प्रान्त थे, जिनके प्रान्तीय सम्मेलन ने कलकत्ते के कांग्रेस के विशेष अधिवेशन के पहले असहयोग का समर्थन किया था। भागलपुर-सम्मेलन के अवसर पर गांधीजी ने तार दिया था कि सम्मेलन असहयोग का समर्थन करे

इन्हीं दिनों बेतिया में विहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन हुआ। मैं उसमें शरीक हुआ। सुरुजपुरा (सूर्यपुरा) के राजा राधिकारमणाप्रसाद सिंहजी, जो उन दिनों हिन्दी के एक होनहार तथा प्रभावशाली गद्य-लेखक थे, सभापति हुए। उन्होंने जो भाषण वहाँ किया था, वह इतना मनोहर और सुन्दर था तथा उसमें भाषा और भाव दोनों का ऐसा अच्छा सम्मिश्रण था कि उसका असर मेरे दिल पर आज तक है।

कलकत्ता-कांग्रेस के कुछ हीं दिनों के बाद बम्बई में अखिर भारतीय कांग्रेस कमिटी की एक बैठक हुई, जिसमें असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के सम्बन्ध में विचार हुआ। असहयोग-सम्वन्धी प्रस्ताव के पास हो जाने पर मेरे सामने अब वकालत छोड़ देने का प्रश्न वास्ताविक रूप से उठ खड़ा हुआ।

भाई से मैंने कोई राय नहीं ली। पर वह समझ गये थे कि अब मैं वकालत छोड़ दूँगा। उनको आशा थी कि मैं कुछ पैसे पैदा करके घर की स्थिति, जो वहुत अच्छी नहीं थी, कुछ उन्नत करूँगा। पर उन्होंने मेरे निश्चय के सम्बन्ध में उस समय कुछ भी नहीं कहा। मेरे ही घर पर पटने में, कुछ ऐसे मित्रों की सभा हुई, जो असहयोग कर रहे थे। वहाँ पर वकालत छोड़ने की बात हुई। मैंने कहा कि जो मुकद्दमे हाथ में हैं, उनके संवन्ध में दिक्कत हो सकती है; क्योंकि हम मवक्किल से वचन-बद्ध हो चुके हैं, और विशेषकर जहाँ पैसे ले चुके हैं वहाँ तो हम छोड़ ही नहीं सकते। कुछ भाइयों ने इसे एक प्रकार से वकालत जारी रखने के लिये वहाना समझा। मैंने यह केवल अपने लिये नहीं कहा था; पर उन्होंने समझा कि मैं अपने ही वारे में यह सुविधा दूसरों के नाम पर लेना चाहता हूँ। पर वास्तव में बरमा (Burma) के मुकद्दमे के सिवा और किसी मुकद्दमे में मेरे हाईकोर्ट जाने की नौबत नहीं आयी। या तो मवक्किल ने मुझे छोड़ दिया, या मैंने, अगर रुपये ले

लिये थे, तो वापस करके छुट्टी ले ली, या किसी दूसरे मित्र को अपनी जगह पर काम करने को कह दिया।

20. बिहार-विद्यापीठ और सदाकत-आश्रम

पटने के इन्जीनियरिंग स्कूल के विद्यार्थियों का वहाँ के प्रिन्सिपाल से किसी विषय में मतभेद हो गया। विद्यार्थियों ने हड़ताल कर दी। एक साथ जलूस बनाकर श्री मज़हरुल हक साहब के पास गये। उसने कहा कि हम लोगों ने स्कूल छोड़ दिया है, हमको स्थान दीजिए। मज़हरुल हक साहब बड़े भावुक और निर्भीक व्यक्ति थे। उनके त्याग की शक्ति भी अपूर्व थी। उस समय वह बहुत ही ऐश-आराम से एक बड़ी कोठी में रहा करते थे। अब सब कुछ छोड़कर, उन लड़कों को साथ लेकर, पटना-दानपुर सड़क पर एक बगीचे में चले गये। वहाँ उनके एक परिचित सज्जन का छोटा-सा मकान था। वहीं रहने लगे। जाड़े के दिन थे। खूब सर्दी पड़ रही थी। वह स्थान गंगा के किनारे होने के कारण कुछ अधिक ठण्डा था। घने बगीचों से घिरे रहने के कारण वहाँ की ज़मीन में कुछ सील भी थीं। तब भी मज़हरुल हक साहब वहाँ कुछ दिनों तक उसी छोटे बँगले में रहे। आहिस्ता-आहिस्ता वहाँ ताड़ की चटाइयों के कुछ झोपड़े भी बन गये। लड़के भी बड़े उत्साही थे, कष्ट का खयाल न करके उनके साथ आनन्द से रहने लगे। उसी स्थान का नाम उन्होंने 'सदाकत-आश्रम' रक्खा। कुछ दिनों में वही बीहड़ स्थान, जहाँ से रात में नव बजे के बाद किसी राही का गुजरना खतरनाक समझा जाता था, गुलजार हो गया। वहाँ चर्खों का एक कारखाना खोल दिया गया। सभी लड़के चर्खे बनाने में लग गये। आहिस्ता-आहिस्ता हक साहब ने अपने पैसों से ही मकान बनवाना शुरू कर दिया। कुछ दूसरे लड़के भी जा कर उनके साथ रहने लगे। वह स्वयं वहीं रहते, लड़कों को पढ़ाते और वही मोटा खाना खाते जो लड़के खाते। लड़के अधिकांश हिन्दू ही थे। हक साहब का खयाल था कि कोई लड़का यह न समझे कि

वह अपने हृदय में हिन्दू-मुसलमान का भेद, किसी प्रकार से भी, रखते हैं। इसलिये वह सबको एक तरह से मानते थे। लड़के भी उनको पिता की तरह पूज्य समझते थे, वैसा ही उन पर विश्वास भी रखते थे।

राष्ट्रीय महाविद्यालय खोल दिया गया। मैं उसका प्रिन्सिपल बनाया गया। उसके अध्यापकों में श्री बदरीनाथ वर्मा, जो उस समय बिहार-नेशनल-(बी. एन.) कॉलेज (पटना) में अंग्रेज़ी के प्रोफेसर थे,

श्री जगन्नाथप्रसाद एम. ए. काव्यतीर्थ--जो पटना-कॉलेज में संस्कृत के प्रोफेसर थे, श्री प्रेमसुन्दर बोस--जो भागलपुर के टी. एन. जुबिली-कॉलेज में फ़िलासफ़ी के प्रोफेसर थे, अपने-अपने पदों से इस्तीफ़ा देकर आ जुटे। इनके अलावा श्री जगतनारायण लाल, श्री रामचरित्रसिंह, श्री अब्दुल बारी प्रभृति भी आ गये। हमने कॉलेज के उन लड़कों को, जो पढ़ना चाहते थे, पढ़ाना शुरू कर दिया। अभी प्रायः वही विषय पढ़ाये जाते जो सरकारी कॉलेजों में पढ़ाये जाते थे। जो रुपया चम्पारन-यात्रा के समय महाविद्यालय के लिए जमा किया गया था, इसीमें ख़र्च किया जाने लगा।

उधर युनिवर्सिटी की परीक्षाओं का समय नज़दीक आ रहा था। कुछ भाइयों का, विशेषकर मौलवी शफ़ी दाऊदी का, विचार था कि हम लोगों को उन लड़कों की परीक्षा भी लेनी चाहिए, जो सरकारी परीक्षाओं में शरीक होना नहीं चाहते। इसलिये यह भी अवश्यक हो गया कि परीक्षाओं का संगठन किया जाय। महात्मा गन्धी ने भी बिहार से जाने के समय कहा था कि बिहार में भी विद्यापीठ होना चाहिए। मेरे यह कहने पर कि हमारे पास रुपये नहीं हैं, उन्होंने कहा था कि चिन्ता न करो, अगर काम ठीक तरह से होगा तो रुपयों की कमी न होगी। जब नागपुर-कांग्रेस के बाद वह दुबारा बिहारा के दौरे पर आये, तो झरिया में पचास-साठ हज़ार रुपये जमा करके मेरे पास तार दिया कि पटने आ रहा हूँ--विद्यापीठ के उद्घाटन का प्रबन्ध करो। उसी मकान में,

जहाँ हमने सदा विद्यालय खोल रखा था, उन्होंने आकर विद्यापीठ का उद्घाटन किया। श्री मजहरुल हक साहब उसके चान्सलर मुकर्रर किये गये। हमने बाजाब्ता सिनेट वगैरह भी बना लिया। हम लोग पाठ्यक्रम निर्धारित करने के काम में लग गये।

21. पूर्णतः असहयोग में

असहयोग के मुख्य अंग चार बहिष्कार थे—(1) सरकारी उपाधियों और खिताबों को छोड़ देना, (2) सरकारी शिक्षा-संस्थाओं से सम्बन्ध-विच्छेद, जिसका अर्थ था कि न उनमें खुद शिक्षा ग्रहण करना और न अपने बाल-बच्चों को वहाँ शिक्षा पाने देना, (3) कौन्सिल में न जाना और उनसे किसी प्रकार का लाभ न उठाना, (4) सरकारी अदालतों से सम्बन्ध छोड़ना अर्थात् उनमें न मुकदमे दायर करना और न उनमें वकालत या मुखतारकारी या नौकरी करना।

भाई साहब के लड़के जनार्दन ने हाल ही में मेट्रिक पास करके हिन्दू-यूनिवर्सिटी के इंजीनियरिंग कालेज में नाम लिखाया था। मेरे दो लड़कों में मृत्युंजय, जो हाल ही कालाआज़ार से बचकर अब अच्छा हो गया था, मेट्रिक में पढ़ता था; पर कम उमर होने के कारण युनिवर्सिटी के नियमानुसार परीक्षा में बैठने से रोक लिया गया था। दूसरा लड़का धनञ्जय स्कूल के किसी निचले दर्जे में पढ़ता था। तीनों लड़के कालेज और स्कूल से हटा लिये गये। तीनों में कोई भी फिर सरकारी स्कूल या कालेज में नहीं गया। जनार्दन कीर्त्यानन्द-आयरन-स्टील वर्क्स के लोहे के कारखाने में कुछ दिनों के बाद काम सीखने लगा। वहाँ एक-डेढ़ साल काम सीखने के बाद वह विलायत चला गया। उसको विदेश में लोहे का काम सीखने के लिए एक छात्रवृत्ति मिल गयी। उसीसे वह अपना सब काम चला लेता, घर से भाई साहब को थोड़ा ही बहुत खर्च करना पड़ा। मृत्युञ्जय बिहार-विद्यापीठ में पढ़ने लगा और वहाँ का स्नातक

हुआ। छपरे में राष्ट्रीय स्कूल जब तक चलता रहा, धन्नू पढ़ता रहा। उसके बाद उसने घर ही पर जो कुछ शिक्षा मिल सकी, प्राप्त की। मैं ऊपर कह चुका हूँ कि मैंने किस तरह युनिवर्सिटी से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया था। वकालत मैंने छोड़ ही दी थी। इस तरह ईश्वर की दया से हम लोगों ने अपने शरीर से और व्यक्तिगत रूप से असहयोग का कार्यक्रम यथासाध्य पूरा किया।

बहुतेरे वकील, मुख्तार और विद्यार्थी—जिन्होंने अपने-अपने काम छोड़ दिये थे—सारे प्रान्त में फैल गये। वे सभी जगहों में कांग्रेस का सन्देश पहुँचाने लगे। प्रायः सभी जिलों में राष्ट्रीय पाठशालाएँ खुल गयीं; कुछ तो मेट्रिक कक्षा तक के लिए और कुछ नीचे के दर्जे तक। सबका सम्बन्ध बिहार-विद्यापीठ के साथ हो गया। मैं समझता हूँ कि मेट्रिक पाठशालाओं की संख्या 50 के लगभग होगी और प्राइमरी शलाएँ प्रायः दो-ढाई सौ। सब पाठशालाओं में, जो बिहार-विद्यापीठ से सम्बन्ध थीं, 20 से 25 हज़ार तक विद्यार्थी शिक्षा पाने लगे। बहुतेरे लोग, जिन्होंने दूसरा काम छोड़ा था, इन पाठशालाओं में शिक्षक बन गये।

उन दिनों प्रान्त-भर में अनगिनत सभाएँ हुई होंगी। किसी भी ज़िले का शायद ही कोई हिस्सा बचा होगा, जहाँ कार्याकर्ता न पहुँचे हों और जहाँ सभा करके कांग्रेस का संदेश लोगों को न बताया गया हो। मैंने सारे सूबे का चक्कर लगाया। 1921 में ही पहले-पहल सारे सूबे का परिचय हुआ। असंख्य कार्यकर्ताओं से जान-पहचान भी हो गयी।

मैं वकालत तो किया करता था, पर बड़ी सभाओं में बहुत बोलने का अभ्यास नहीं था, यद्यपि मैं लड़कपन से ही सभाओं में भाग लिया करता था। असहयोग के प्रचार में असंख्य सभाओं में भाषण करने पड़े। नतीजा यह हुआ कि सभाओं में बोलते समय जो थोड़ा संकोच हुआ करता था, वह निकल गया। मैं अब धड़ल्ले से भाषण कर सकता था। जिन

ज़िलों में लोग भोजपुरी बोला करते हैं, उनमें जाता तो भोजपुरी में ही भाषण करता। दूसरी जगहों में शुद्ध हिन्दी में। सभाएँ भी कुछ छोटी-मोटी नहीं होती थीं। पाँच-दस हजार का जमाव होना तो कोई बड़ी बात नहीं थी। दस हज़ार लोगों की सभा में आसानी से मैं सब लोगों तक अपनी आवाज़ पहुँचा सकता था। उससे अधिक संख्या होने पर परिश्रम पड़ता था। मेरा अनुमान है कि यदि लोग शान्त रहते, तो अपनी आवाज़ मैं पन्द्रह हज़ार तक की सभा में पहुँचा सकता, पर बहुत अधिक परिश्रम पड़ता और पेट में दर्द हो जाता। मुझे यह भी याद है कि बीस-पच्चीस हज़ार के मजमे में भी मैंने उस साल में भाषण किये थे। एक सभा छपरा-जिले में हथुआ में हुई थी। वहाँ न मालूम किस तरह ख़बर उड़ गयी थी कि सभा में महात्मा गांधी आनेवाले हैं। इसलिए वहाँ क़रीब पचास हज़ार का जमाव हो गया। हज़ार कोशिश करने पर भी सभा ठीक नहीं जम सकी। यद्यपि मैंने अपनी पूरी शक्ति-भर ज़ोर लगाकर एक छोटा-सा भाषण किया, तथापि मुझे शक है कि थोड़े ही लोगों ने उसे सुना या समझा।

मैं भाषण करते समय देखा करता था कि सभा में उपस्थित लोगों पर उसका कैसा प्रभाव पड़ रहा है। जहाँ अच्छा प्रभाव पड़ता नज़र आता और जनता सुनने के लिए उत्सुक और समझदार मालूम पड़ती, वहाँ का भाषण भी मैं खुद समझ सकता था कि अच्छा हो जाया करता था। जहाँ ये बातें नहीं होतीं वहाँ भाषण भी ऐसा-वैसा ही होता। भाषण भी कुछ छोटे नहीं होते। कांग्रेस का इतिहास, खिलाफ़त-आन्दोलन और पंजाब-सम्बन्धी जुल्म तथा स्वराज्य की आवश्यकता के अलावा असहयोग का कार्यक्रम मैं सभी सभाओं में बहुत विस्तार के साथ बताता। इसमें प्रायः एक-डेढ़ घंटे लग जाते। जहाँ दस हज़ार तक का जमाव होता वहाँ तो पूरे विस्तार के साथ डेढ़ घंटे या इससे अधिक देर तक भी बोल लेता। जहाँ इससे अधिक जनता एकत्र होती वहाँ कुछ संक्षेप

करना पड़ता। बीस हज़ार से अधिक लोगों की सभा में आधा घंटे से ज्यादा नहीं बोल सकता था। इस तरह मैं सारे सूबे में दौरा करता रहा। दूसरे साथी भी यही कर रहे थे।

ऊपर कहा जा चुका है कि सारे सूबे (विहार) में अल्प संख्य कार्यकर्त्ता काम करने लगे और स्वराज्य तथा असहयोग का संदेश गाँव-गाँव में पहुँचने लगे। थोड़े ही दिनों में अद्भुत जागृति देखने में आने लगी। सरकार भी अपनी ओर से चुप न रही। वह देखती थी कि इस प्रचार का फल यह हो रहा है कि जनता में उसका रोब एकबारगी उठता जा रहा है, लोग निर्भीक होते जा रहे हैं। हम भी कांग्रेस की ओर से इस बात का पूरा खयाल रखते थे कि उत्साह में जनता की ओर से कहीं ज्यादती न हो जाय। इसलिए नागपुर कांग्रेस के बाद प्रान्तीय कमिटी ने जो आदेश निकाला उसमें शान्ति और अहिंसा पर पूरा जोर दिया गया—साफ़-साफ़ कहा गया कि किसी के साथ किसी प्रकार की ज़बरदस्ती न की जाय। हम समझते थे, और कार्यकर्त्ताओं को भी यही समझाने का प्रयत्न किया गया, कि हम बल-प्रयोग में सरकार से हार जाएँगे; क्योंकि उसके पास इसके साधन हैं, हमारे पास नहीं। इसके अलावा असहयोग की मुख्य शर्त अहिंसा है। इसके द्वारा जनता को भी हम अपनी ओर खींच सकते हैं। यदि हमारी ओर से ज़ोर-ज़बरदस्ती हुई तो इसका नतीजा उलटा होगा, हमें एक दिन पछताना पड़ेगा। इसलिए जहाँ कहीं भाषण किया जाता, इस पर ज़ोर दिया जाता। जो पर्चा निकाला जाता, उसमें भी इसी पर ज़ोर दिया जाता। गवर्नमेंट इसकी खोज में रहती कि कहीं भी कुछ अशान्ति हो, तो धर दबाया जाय उसे इसका मौका ही न मिलता!

मुजफ़्फ़रपुर ज़िले में मँहगी के कारण कई जगहों में हाटों की लूट हो गयी। दरभंगा ज़िले और चम्पारन ज़िले में भी एकाध जगह ऐसा ही हुआ। सरकार को वह बहाना मिल गया जो वह खोज रही थी।

हम लोग शराबबन्दी का प्रचार किया करते थे। इसका असर भी काफी पड़ रहा था। आबकारी की दूकानों का ठेका मार्च के महीने में दिया जाता है। बिक्री कम होती जा रही थी। सरकार को डर हो गया कि यह एक आमदानी का बड़ा जरिया खतरे में पड़ गया। इन दोनों बातों को लेकर दमन जारी हो गया। दमन मुजफ्फरपुर-जिले से ही आरम्भ हुआ। और जिलों में भी जल्द फैल गया। चम्पारन में अब और भी जोर लगाया जाने लगा। दमन का आरम्भिक रूप यह हुआ कि कार्यकर्त्ताओं पर, दफा 107 जाब्ता फौजदारी के अनुसार, मुचलका देने के मुकद्दमे चलाये गये। दफा 144 के अनुसार कार्यकर्ताओं को सभा में भाषण करने और जुलूस वगैरह में शरीक होने से मना किया गया। जिन पर मुकद्दमा चलाया जाता, वे जेल चले जाते। हां, मुकद्दमे में जहाँ-तहाँ लोगों ने पैरवी की। कहीं-कहीं मुकद्दमा अन्त में खारिज करना पड़ा; क्योंकि कोई सबूत न मिला। बात तो यह थी कि सभा करने के सिवा, जिसमें असहयोग का कार्यक्रम समझाया जाता, हमारे आदमी दूसरा कोई काम कर भी नहीं रहे थे।

थोड़े ही दिनों में सैकड़ों कार्यकर्ता इस प्रकार के मुकद्दमों के शिकार हो गये। प्रान्तीय सरकार के प्रधान सेक्रेटरी मिस्टर ठेनी ने एक सर्कलर निकाला, जिसमें ज़िले के अधिकारियों को प्रोत्साहन दिया गया कि वे आन्दोलन को दबावें। स्वायत्तशासन-विभाग के मंत्री मिस्टर हैलेट ने दूसरा सर्कुलर निकाला, जिसमें बताया गया कि म्युनिसिपैलिटियाँ और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड सरकार के अंग हैं, अतः उनके सदस्यों और कर्मचारियों को असहयोग में भाग लेना नहीं चाहिए। ज़िले के अधिकारी तो यही चाहते हीं थे। उन्होंने 107 और 144 की नोटिसों की झड़ी लगा दी। सैकड़ों आदमी गिरफ्तार कर जेल भेज दिये गये।

मैं मज़हरुल हक साहब के साथ आरा जानेवाला था। हक साहब किसी कारण से वहाँ न जा सके। मैं अकेला ही गया। आरा-स्टेशन पर

उतरते ही मुझे 144 की नोटिस मिली कि 9 बजे से 5 बजे तक किसी जलूस और सभा में शहर के अन्दर मैं शरीक नहीं हो सकता। मेरे सामने एक संकट आकर उपस्थित हो गया। नोटिस भी पुरमज़ाक थी। उन दिनों मैट्रिक परीक्षा हो रही थी। आरा भी उसका एक केन्द्र था। नोटिस में मनाही का कारण बतलाया गया था कि जलूस और सभा से परीक्षार्थियों के काम में हर्ज होगा और वे रुष्ट होंगे।

नागपुर-काँग्रेस ने निश्चय किया था कि अखिल-भारतीय कमिटी की आज्ञा जब तक न हो, सत्याग्रह न किया जाय। जब इस प्रकार की कार्रवाई सरकार की ओर से होने लगी अथवा इसकी सम्भवना मालूम हुई, तो हमने प्रान्तीय कमिटी की ओर से आदेश निकाल दिया था कि इस तरह के हुक्मों को मान लेना चाहिए; क्योंकि कांग्रेस ने अभी सत्याग्रह का आदेश नहीं दिया है। हाँ, जहाँ कहीं आत्मप्रतिष्ठा की बात आ जाय, वहाँ दूसरी बात है।

मैंने नोटिस पाकर निश्चय किया कि मुझे इसे मान लेना चाहिए। इसलिए स्टेशन से मैं शहर के अन्दर नहीं गया। मैं प्रायः दोपहर को पहुँचा था। स्टेशन से, म्युनिसिपैलिटी के बाहर, नज़दीक के ही एक गांव में चला गया। वहाँ पर दोपहर के समय ठहर गया। वहीं एक बड़ी सभा हो गयी, जिसमें देहात के अलावा शहर के भी काफ़ी लोग आ गये! फिर शाम को 5 बजे के बाद शहर में गया। वहाँ भी एक बड़ी सभा हो गयी, जहाँ मैंने अपने कार्य-क्रम को पूरा किया। इस तरह इस नोटिस का नतीजा यह हुआ कि एक सभा के बदले दो सभाएँ हो गयीं। जनता का उत्साह भी बहुत बढ़ गया।

22. एक मनोरंजक घटना

थोड़े ही दिनों बाद, मार्च 1921 में, बेजवाड़ा में अखिल-भारतीय कांग्रेस कमिटी की बैठक हुई। वहाँ निश्चय हुआ कि लोकमान्य तिलक के

स्मारक-रूप में एक करोड़ रुपये स्वराज्य के काम के लिए, तिलक-स्वराज्य-फण्ड के नाम से 30, जून तक जमा कर लिये जायँ—बीस लाख चर्खे जारी हो जायँ और कांग्रेस के एक करोड़ मेम्बर बना लिये जायँ। बेजवाड़ा पहुँचने के पहले महात्माजी दौरा कर रहे थे। मैं कलकत्ते से ही महात्मा जी के साथ उड़ीसा गया। वहाँ उन दिनों अकाल था। महात्माजी को इसकी खबर पहले से थी। उन्होंने कुछ मदद भी करायी थी। अकाल-पीड़ितों को महात्माजी के आगमन की खबर मिली थी। बहुतेरे दूर-दूर से आये थे। महात्माजी ने उनके अस्थि-पंजरों को देखा। वह बहुत ही प्रभावित हुए। उन्होंने एक लेख में उड़ीसा के नंगे-भूखे कंकालों का जबरदस्त जिक्र किया। मैंने कई बार उन्हें उन गरीबों की याद करके आह भरते भी देखा है। एक बड़े मकान में वह ठहराये गये थे। एक ओर श्री जगन्नाथजी का विशाल मन्दिर, पंडो और धनी-मानी लोगों का सुखमय जीवन, महात्माजी के स्वागत के लिए धूमधाम, और दूसरी ओर ये नंगे-भूखे कंकाल!

उड़ीसा की ही किसी सभा में महात्माजी ने बहुत मार्के का भाषण किया था, जिसका असर आज तक मेरे दिल पर है। सभा में किसी ने महात्माजी से प्रश्न किया कि आप अँगरेजी-शिक्षा के विरुद्ध क्यों हैं—अँगरेजी शिक्षा ने ही तो राजा राममोहन राय, लोकमान्य तिलक और आपको पैदा किया है? महात्माजी ने उत्तर में कहा—"मैं तो कुछ नहीं हूँ; पर लोकमान्य तिलक भी जो हैं, उससे कहीं अधिक बड़े हुए होते यदि उनको अँगरेजी द्वारा शिक्षा का बोझ ढोना न पड़ा होता। राजा राममोहन और लोकमान्म तिलक श्री शंकराचार्य, गुरु नानक, गुरु गोविंद सिंह और कबीरदास के मुकाबले में क्या हैं? आज तो सफर के और प्रचार के इतने साधन मौजुद हैं। उन लोगों के समय में तो कुछ नहीं था, तो भी उन्होने विचार की दुनिया में कितनी बड़ी क्रान्ति मचा दी थी!" अँगरेजी राज्य के बम्बन्ध में भी उन्होंने कहा कि मुगलराज्य में अकबर के

समय में राणा प्रताप और औरंगजेब के दिनों में शिवाजी-जैसे वीरों के लिए सुअवसर था, आज वह कहां है ? इस प्रकार एक बड़े प्रभावशाली भाषण में उन्होंने यह दिखला दिया कि यह हम लोगों का मोह है, जो अँगरेजी शिक्षा को ही देशोन्नति का कारण बताते हैं। हाँ, अँग्रेजी जानना बुरा नहीं है। उसे हममें से बहुतेरों को जानना होगा। हम उसे सीखेंगे भी; पर आज की तरह वह शिक्षा का माध्यम और साधन नहीं रह सकती।

उड़ीसा से महात्माजी के साथ मैं बेज़वाड़ा गया। रास्ते के दृश्य अवर्णीय हैं। जैसा उत्साह अपने सूबे में देखा था, वैसा ही आन्ध्र देश में भी देखने में आया। वही जनता की भीड़, वही दसों दिशाओं को गुंजनेवाले नारे ! स्टेशनों पर वही जन-समूह, चलती रेलगाड़ी के किनारे लाइन पर लोगों का वही जमघट और वही विराट् सभाएँ ! मुझे याद है कि विजयनगर में हम लोग रात को प्रायः 3 बजे रेल से उतरे। सारे शहर में लोगों ने दीवाली मनाई थी !

हम बिहार के प्रतिनिधि बेज़वाड़ा से लौटते समय रेल में कार्यक्रम पूरा करने के सम्बन्ध में परस्पर बातें करने लगे। एक प्रकार से पटना पहुँचते-पहुँचते यह निश्चय कर लिया गया कि यह काम कैसे पूरा किया जायगा। रुपये जमा करने और चर्खा चलवाने की ओर लोगों का विशेष ध्यान गया। मैं भी दिन-रात सारे सूबे में दौड़ता और रुपये जमा करने में लगा रहा। सब जिलों में कार्यकर्त्ता इस काम में दिलोजान से लग गये। रुपये जैसे-जैसे जमा होते, बैंक में जमा होते। हम लोगों ने कई प्रकार की रसीदें छपवा ली थीं, जिनसे वह सुविधा होती कि प्रत्येक आदमी को रसीद लिखकर देने की ज़रुरत नहीं होती। कम से कम चार आने की रसीद थी। बड़ी रकमों के लिए लिखकर रसीद दे दी जाती। इसके पहले बिहार में सार्वजनिक काम के लिए जन साधारण से इस प्रकार कभी रुपये नहीं माँगे गये थे। हम भी नहीं जानते थे कि हम कहाँ तक

सफल होंगे। पर लोगों में उत्साह देखकर आशा बढ़ती जाती थी। हमको बहुत बड़े और धनी लोगों से बहुत ज्यादा नहीं मिला। पर हर जिले में मझोले दर्जे के लोगों ने बहुत उत्साहपूर्वक चन्दा दिया। अन्त में 30 जून तक हमने सात-आठ लाख के लगभग जमा कर लिया। 30 जून को गांधीजी को तार द्वारा इसकी सूचना ने दी गयी।

यद्यपि सभी जगहों में चर्खा चलाना एक अनिवार्य विषय बना दिया गया था, चर्खे चलने लगे; पर शास्त्र ज्ञान शिक्षकों को तो था ही नहीं, बच्चों को वे कहाँ से देते? इस तरह अन्धों का नेतृत्व करने लगे। अतः चर्खा ठीक रास्ते पर कुछ दिनों तक नहीं आ सका। आज हम इस अदूरदर्शिता के लिए किसी को दोष नहीं दे सकते; क्योंकि ऐसा होना स्वाभाविक-सा था। सब लोगों की आँखे भावी स्वराज्य की ओर, जो एक राजनीतिक परिवर्तन की सीमित चीज समझी जाती थी, लगी हुई थीं। कांग्रेस के अन्दर भी कुछ लोग, विशेष करके महाराष्ट्रवाले, खादी-चर्खे का विरोध करते ही रहे। अभी शुद्ध और अशुद्ध खादी का भेद लोग इतना नहीं समझते थे। पर इन त्रुटियों के रहते हुए भी खादी का प्रचार खूब हुआ। महात्माजी ने कहा था कि सत्याग्रह के लिए खादी का प्रचार अत्यन्त आवश्यक है और प्रचार का सबूत आँखों को ही मिलना चाहिए। अर्थात् जब चारों ओर लोगों को खादी पहने हम देखेंगे तो हम समझ लेंगे कि इसका प्रचार हो गया—इसके लिए पुस्तकों और लेखों तथा अखबारों में छपे आँकड़ों में, अथवा किसी से पूछ करके, सबूत ढूँढ़ने की ज़रूरत नहीं होगी।

बिहार के इस दौरे में गांधीजी ने खादी पर काफ़ी ज़ोर दिया। कोकटी का कपड़ा, जो दरभंगा जिले के मधुबनी-इलाके में बनता था, काफी महीन और सुन्दर तथा मुलायम होता है। उसको देखकर लोग चकित हो जाते थे। इसका व्यापार अभी तक मरा नहीं था। इसका विशेष कारण यह था कि इस कपड़े का खर्च नेपाल-दरबार में और

वहाँ की सम्भ्रान्त जनता में काफी था। वहाँ के लिए ही यह कपड़ा, विशेष करके उस इलाके में जो नेपाल की सरहद पर ही है, बहुत बना करता था। उस इलाके की बनी हुई कुछ धोतियाँ भी पेश की गयीं, जिनको देखकर, विशेष कर मुझे याद है कि मौलाना मुहम्मदअली, बहुत ही सन्तुष्ट हुए थे।

कांग्रेस के सालाना जलसे के दिन आ गये। देशबन्धु दास ही सभापति मनोनीत हुए थे। वह थे जेलखाने में। कांग्रेस का अधिवेशन अहमदाबाद में होनेवाला था। सरदार वल्लभ भाई स्वागताध्यक्ष थे। बड़े पैमाने पर तैयारियाँ की गयी थीं। जब बिहार में गिरफ्तारियाँ बन्द हुईं, हम लोग जो बाहर थे, अहमदाबाद के लिए रवाना हो गये। कांग्रेस का अधिवेशन भी निराला ही था। पुरानी प्रथा के विरुद्ध स्वागताध्यक्ष का भाषण बहुत छोटा था। उसमें देश की परिस्थिति और कांग्रेस के कार्यक्रम पर विचार नहीं किया गया था। केवल उपस्थित प्रतिनिधियों का स्वागतमात्र था, और था गुजरात में हुए काम का छोटा-सा विवरण। मनोनीत सभापति गैरहाज़िर थे इसलिए उनके स्थान पर हकीम अजमल खाँ सभापति चुन लिये गये। स्वागताध्यक्ष और सभापति दोनों के ही भाषण राष्ट्रभाषा हिन्दी या उर्दू में ही हुए।

सबसे महत्व का प्रश्न सत्याग्रह का था। अधिवेशन में एक ही प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, जिसमें परिस्थिति का सिंहावलोकन करते हुए सत्याग्रह का निश्चय प्रकट किया गया। इस काम के लिए गांधीजी सर्वेसर्वा (Dictator) बनाये गये। इस बात का अन्देशा था कि जैसे और नेता गिरफ्तार किये जा चुके हैं, गांधीजी भी गिरफ्तार कर लिये जाएँगे; इसलिए प्रस्ताव में उनको उसी अधिकार के साथ अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करने का भी अधिकार दिया गया।

कांग्रेस के बाद सभी लोग अपने-अपने स्थान को रवाना हुए। वहीं पर मालूम हो गया कि महात्मा गांधी एक जगह सत्याग्रह करेंगे और

वह स्थान होगा बारडोली। औरों को भी आदेश मिला कि अपने-अपने स्थान पर जनता में प्रचार और संगठन करें। सबसे अधिक काँग्रेस के कार्यक्रम की पूर्ति के लिए, विशेषकर सेवक-दल के संगठन के लिए, जी-तोड़ परिश्रम करके प्रयत्न करें।

पंडित मालवीयजी और कुछ दूसरे नेताओं ने निश्चय किया कि एक ऐसी कान्फ़रेन्स की जाय, जिसमें कांग्रेस और गवर्नमेन्ट के बीच का झगड़ा मिटाने का प्रयत्न किया जाय। उन्होंने अहमदाबाद-कांग्रेस समाप्त होते ही इसकी घोषणा की। देश के मुख्य-मुख्य लोग, जिनमें मुख्य-मुख्य कांग्रेसी और खिलाफ़ती भी शामिल थे, बम्बई में आमंत्रित हुए। यह सभा जनवरी के मध्य में बम्बई में हुई। सर शंकरन नायर इसके सभापति हुए। मैं भी, और कांग्रेसियों की तरह, वहाँ गया। गांधीजी ही हमारी ओर से बोलनेवाले थे। हम लोगों ने निश्चय कर लिया था कि सबकी ओर से जो कुछ कहना होगा वही कहेंगे। महात्माजी ने साफ़-साफ़ बता दिया कि हम कांग्रेसियों को इस गोलमेज-कान्फ्रेन्स से, जिसके आयोजन का प्रस्ताव गवर्नमेन्ट से किया जा रहा था, कोई आशा नहीं है; तो भी अगर वह हो और गांधीजी बुलाये जायँ, तो वह बिना शर्त के उसमें शरीक होंगे; पर व्यक्तिगत हैसियत से। हाँ, यदि कांग्रेस आमंत्रित किया जाय, तो वह तभी शरीक हो सकेंगे जब कान्फ्रेन्स का कार्यक्रम और तिथि निश्चित कर ली जाय। साथ ही, वह घोषणा वापस कर ली जाय, जिसके द्वारा सेवक-दल ग़ैर-क़ानूनी करार दिये गये हैं तथा जिसे न मानने के कारण जिन लोगों को सज़ा दी गयी है, वे छोड़ दिये जाएँ। खिलाफ़त, पंजाब और स्वराजवाली काँग्रेस की माँगें ज़ाहिर थीं; कांग्रेस उन्हीं को वहाँ पेश करके उन्हें मनवाने का प्रयत्न करेगी। अपनी ओर से हम सत्याग्रह स्थगित कर देंगे।

कान्फ्रेन्स करनेवालों की तरफ़ से एक प्रस्ताव पेश किया गया; पर गांधीजी को वह मंजूर न हुआ। इस कारण उसपर विचार करके

उसे रद-बदल कर फिर उपस्थित करने के लिए एक उपसमिति बना दी गयी। उस दिन जो लोग उपस्थित थे उनके भाषण हुए। मेरे दिल पर एक भाषण का बहुत असर पड़ा था। वह था सर हरमुसजी वाडिया का भाषण। यह थे एक वयोवृद्ध बड़े व्यापारी—लिबरल-दल के विचार रखनेवाले पारसी। इन्होंने गवर्नमेन्ट की सारी नीति की तीव्र शब्दों में निन्दा की। यह यद्यपि सत्याग्रह के विरोधी थे, तथापि इन्होंने साफ़-साफ़ बता दिया कि इस अवस्था की सारी जवाबदेही सरकार पर है।

दूसरे दिन उपसमिति की बैठक हुई। उसमें गांधीजी शरीक रहे। सबकी राय से एक प्रस्ताव तैयार हुआ। पर सर शंकरन नायर बहुत बिगड़ गये। दोपहर को वह कान्फ्रेन्स से चले गये। उनके साथ कोई दूसरा नहीं गया। तब कान्फ्रेन्स के सभापति सर विश्वेश्वरय्या हुए। उन्होंने उस प्रस्ताव को मंजूर कर लिया। गांधीजी ने फिर अपनी वही बातें दुहरा दीं। यह भी उन्होंने कह दिया कि कांग्रेस को वर्किंग-कमिटी द्वारा वह 31, जनवरी तक के लिए सत्याग्रह स्थगित करा देने का प्रयत्न करेंगे।

बम्बई में वर्किंग-कमिटी के लोग प्रायः सभी थे ही। बैठक में तय हुआ कि 31, जनवरी तक और यदि गोलमेज कान्फ्रेन्स की बात तथा प्रस्ताव की दूसरी शर्तें गवर्नमेन्ट ने मंजूर न कर लीं, तो जब तक उसका कुछ फैसला न हो जाय तब तक सामूहिक सत्याग्रह बन्द रहेगा और व्यक्तिगत सत्याग्रह केवल बचाव के लिए ही जहाँ मजबूरी होगी वहीं किया जायगा; पर सेवक-दल के संगठन का काम जारी रहेगा। कान्फ्रेन्स के प्रस्ताव को तार द्वारा कान्फ्रेन्स-कमिटी ने वाइसराय के पास भेजा। एक लम्बे तार द्वारा यह भी सूचित किया गया कि कलकत्तेवाले डेपुटेशन के उत्तर में जो शर्तें लार्ड रीडिंग ने दी थी प्रायः वे सभी मंजूर कर ली गयी है और अब गवर्नमेन्ट को गोलमेज-कान्फ्रेन्स

मंजूर कर लेनी चाहिए। उधर से नामंजूरी का जवाब आ गया! इसपर फिर तार द्वारा लिखापढ़ी की जा रही थी कि 31 जनवरी का दिन पहुँच गया। अब कांग्रेस के लिए कुछ निश्चय करना अनिवार्य हो गया।

कांग्रेस से लौटने के बाद मैंने अपने सूबे में दौरा शुरू किया यह 31 जनवरी वाली अवधि बीतने के बाद, बारडोली की एक सार्वजनिक सभा में, जिसमें महात्माजी और हकीम अजमल खाँ शरीक थे, बारडोली में सत्याग्रह शुरू करने का निश्चय हुआ। यह बात घोषित भी कर दी गयी। श्री विट्ठल भाई पटेल और सरदार वल्लभ भाई अब वहीं रहने लगे थे। महात्माजी भी पहुँच ही गये थे। वहाँ जनता की सभा में महात्माजी ने सत्याग्रह के अर्थ को और उसमें होनेवाले कष्टों को लोगों को बताया। उनसे शपथ भी ली कि वे सत्य और अहिंसा पर डटे रहकर सारे देश के लिए स्वतंत्रता प्राप्त करने में अपने को भस्मीभूत कर देंगे। सूरत में वर्किंग-कमिटी की बैठक हुई। उसने वहाँ सत्याग्रह करने की मंजूरी दे दी। इसके बाद ही गांधीजी ने वाइसराय को पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने सत्याग्रह के निश्चय की सूचना देते हुए सत्याग्रह आरंभ करने के लिए तिथि भी ठीक कर दी।

मैं सूबे के दौरे में, मुज़फ़्फ़रपुर-ज़िले के गाँवों में घूमता, 'पुपरी' गाँव की सभा में भाषण कर रहा था। उसी समय तार मिला कि वर्किंग-कमिटी की बैठक बारडोली में होनेवाली है और मुझे वहाँ तुरंत पहुँचना चाहिए। मैं वहाँ से तुरंत रवाना हुआ। पहली गाड़ी जो मिली उससे पटना होता हुआ वहाँ चला गया। इस बीच में एक बहुत दुःखद और महत्त्वपूर्ण घटना हो गयी। गोरखपुर-ज़िले के चौरीचौरा गाँव में जनता और पुलिस में मुठभेड़ हो गयी। जनता ने आवेश में आकर पुलिस-थाने को जला दिया। कितने ही पुलिस-कर्मचारियों को भी मार डाला।

महात्माजी के दिल पर इसका बहुत गहरा असर पड़ा। उन्होंने देख लिया कि देश ने अभी तक अहिंसा के तत्व और महत्व को नहीं

समझा है; इसलिए यदि सत्याग्रह आरम्भ हुआ तो इस प्रकार की घटनाएँ अनेक स्थानों में होने लगेंगी; इसके फलस्वरूप सरकार की ओर से भी दमन-नीति जोरों से बरती जायगी और जनता उसको बर्दाश्त नहीं कर सकेगी; इसलिए यद्यपि वाइसराय को सत्याग्रह आरम्भ करने की सूचना दे दी गयी है तथापि सत्याग्रह को स्थगित ही कर देना चाहिए। देश की नाड़ी पहचानकर महात्माजी इस निश्चय पर पहुँच गये। इसीपर विचार करने के लिए उन्होंने वर्किंग-कमिटी की बैठक की।

यद्यपि मैं जल्द से जल्द रवाना हुआ था, तथापि जब मैं बारडोली स्टेशन पर पहुँचा तो उसी ट्रेन से वापसी के लिए रवाना होते हुए पंडित मदनमोहन मालवीयजी से वहीं भेंट हो गयी। उन्होंने बता दिया कि वर्किंग-कमिटी का काम समाप्त हो चुका है और सत्याग्रह स्थगित करने का निश्चय कर लिया गया है। जब मैंने यह सुना तो मेरे दिल पर भी एक धक्का-सा लगा। मैं वहाँ पहुँचा जहाँ गांधीजी ठहरे थे। उन्होंने जाते ही पूछा, निश्चय सुन लिया है न? मैंने कहा, हाँ। इसपर उन्होंने पूछा कि इस विषय में तुम्हारी राय क्या है। मैं अभी कुछ उत्तर नहीं दे सका था कि वह समझ गये मेरे दिल में कुछ सन्देह मालूम हो रहा है! उन्होंने उसी क्षण सब बातें समझा दीं। मैं सुनता गया, पर अभी किसी निश्चय पर नहीं पहुँचा था कि अन्त में उन्होंने कहा, जो कुछ मैंने कहा है उस पर विचार करो।

संध्या हो गयी थी। मैंने रात को सब बातों पर और सब पहलुओं पर, महात्माजी की बताई बातों की रोशनी में विचार किया। मेरी भी दृढ़ राय हो गयी कि निश्चय ठीक ही हुआ है। दूसरे दिन गांधीजी ने फिर पूछा, क्या विचार किया? मैंने उत्तर दे दिया कि मैं सब बातें समझ गया और निश्चय ठीक ही हुआ है। इससे वह कुछ प्रसन्न मालूम हुए।

वारडोली में ही यह निश्चय कर लिया गया कि अखिल भारतीय कमिटी की बैठक शीघ्र ही की जाय। तिथि निश्चित करके दिल्ली में बैठक की घोषणा कर दी गयी। इसी बैठक में बारडोली के निश्चय पर विचार होने को था।

इस बैठक के सम्बन्ध में दो बातें, यद्यपि वे छोटी हैं, कह देना बेजा न होगा। दिल्ली की बैठक का दिन निश्चित करने के समय पंचांग नहीं देखा गया था। इत्तिफ़ाक से जो दिन मुकर्रर किया गया उसी दिन फाल्गुन की शिवरात्रि का पर्व था। हिन्दुओं की ओर से तार पहुँचने लगे कि दिन बदल दिया जाय। पर गांधीजी इसपर राज़ी नहीं हुए। मैंने उनसे कहा कि शिवरात्रि बडा भारी पर्व माना जाता है—बहुतेरे लोग उपवास और पूजा इत्यादि करते हैं; इसलिए दिन क्यों न बदल दिया जाय। इस पर उन्होंने कहा, "उपवास और बैठक में कोई विरोध नहीं हो सकता; क्योंकि लोग उपवास करके भी सभा में शरीक हो सकते हैं, और यह कहाँ किस शास्त्र में लिखा है कि व्रत के दिन कोई अच्छा काम नहीं करना चाहिए? देशसेवा का यह एक महत्वपूर्ण काम है। यदि हिन्दू उसमें उस धार्मिक प्रवृत्ति के साथ शरीक होंगे, जो ऐसे पवित्र दिन में उनसे अपेक्षित है, तो इससे बढ़कर दूसरी बात और क्या बेहतर हो सकती है?" तिथि उन्होंने नहीं बदली।

दिल्ली की बठक के बाद हम लोग अपने-अपने स्थान पर पहुँचे ही थे कि खबर आ गयी—गांधीजी गिरफ्तार करके साबरमती जेल में ले जाये गये हैं! मैं तुरंत साबरमती के लिए रवाना हो गया। वहां जिस दिन मुकद्दमा दौरा-जज के यहाँ पेश होनेवाला था, मैं पहुँच गया।

कोर्ट के दृश्यों को मैं कभी भूल नहीं सकता। गांधीजी का बयान तो एक तारीखी बयान है ही। जज का तौर-तरीका भी उस महत्वपूर्ण समय के अनुकूल ही था। गांधीजी पर 'यंग इण्डिया' में लिखे गये लेखों के

सम्बन्ध में अभियोग था। गांधीजी ने अभियोग को तो अपने बयान में ही स्वीकार कर लिया था। जज ने एक छोटे-से भाषण में, जिससे आवेश टपक रहा था, कहा कि अभियोग स्वीकार कर लेने से उनका काम एक प्रकार से तो हल्का हो गया है, पर दूसरे प्रकार से जो काम बाकी रह गया है अर्थात् सज़ा देने का, वह काम बहुत ही कठिन है। गांधीजी को उनके असंख्य देशवासी पूज्य मानते हैं। जज को किसी ऐसे पुरुष के मुकद्दमे के देखने-सुनने का मौका पहले कभी नहीं मिला है और शायद मिलेगा भी नहीं। जज को केवल क़ानून के अनुसार काम करने का ही अधिकार है। कानून एक मनुष्य और दूसरे मनुष्य में, व्यक्तित्व के कारण, भेद नहीं करता। इसलिए उसे सज़ा तो देनी पड़ेगी ही। गांधीजी का स्थान लोकमान्य तिलक-जैसा ही है। जो सज़ा उनको ऐसी ही परिस्थिति में मिली थी, वही अर्थात् छः साल कैद की सज़ा गांधीजी को भी देना अनुचित न होगा।

यही हुक्म जज ने सुना दिया। गांधीजी ने उनको इस बात के लिए धन्यवाद दिया कि उन्होंने उनको लोकमान्य तिलक के समकक्ष माना। जज के उठ जाने के बाद हम जितने थे सब एक-एक करके, गांधीजी से मिलकर प्रणाम करके बिदा हुए। वह दृश्य अत्यंत कारुणिक था। मैं दिल का कमजोर हूँ। बच्चों का रोना भी मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता। करुणा के मौके पर मैं अपने को रोक नहीं सकता। मैं फूट-फूटकर रोने लगा। श्री केलकर भी वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने मुझे रोते हुए देखकर बहुत समझाया और कहा कि जब लोकमान्य को दण्ड मिला था, तो उन लोगों की भी वही दशा हुई थी। कुछ देर के बाद मैं भी सँभल गया और गांधीजी से बिदा हुआ।

अहमदाबाद-कांग्रेस में बिहार के जो प्रतिनिधि उपस्थित हुए, उन सबकी राय हुई कि इस बार कांग्रेस का अधिवेशन बिहार में करने के लिए निमंत्रण दिया जाय। निश्चिय किया गया था कि अभी स्वागताध्यक्ष तथा

अन्य पदाधिकारियों का पक्का चुनाव न किया जाय। जब काफ़ी संख्या में स्वागत-समिति के सदस्य बन जाएँगे, तभी पदाधिकारियों का चुनाव कराना ठीक होगा। तब तक काम चलाने के लिए मैं ही अस्थायी मंत्री बना दिया गया। अहमदाबाद के बाद कांग्रेस का रूप ही बदल गया था। हमको एक नया शहर-सा बसाना था, जो गया शहर से बाहर हो और जहाँ लोगों के रहने के लिए झोंपड़े तथा रोशनी और पानी का पूरा प्रबन्ध हो। इसके अतिरिक्त कांग्रेस का पंडाल तैयार करना था। कुछ कठिनाई ज़मीन मिलने में हुई। पर स्थानीय लोगों की कृपा से, गया शहर से प्रायः डेढ़-दो मील दक्खिन, 'तेनुई' गाँव में, पक्की सड़क के पूरब आम का बग़ीचा और पच्छिम में खाली खेत में पंडाल और बग़ीचे में रहने के लिए झोंपड़े बनाने का निश्चय हुआ। बरसात के बाद ही काम शुरू करने का निश्चय हुआ। पर दुर्भाग्यवश अभी रुपये काफ़ी नहीं आये थे। मैंने पत्रों द्वारा और आदमी भेजकर सभी ज़िलों को ताकीद किया, पर रुपये काफ़ी नहीं आये। मेरी चिन्ता बढ़ने लगी। मैं रुपये जमा करने के लिए दौरे पर निकल गया। सारे सूबे के कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं के दिल में आग-सी लग गयी। सभी ख़ूब ज़ोरों से स्वागतकारिणी के मेम्बर बनाने और रुपये जमा करने में लग गये। मैं जहाँ गया, वहाँ काफ़ी रुपये मिलने लगे। सभी लोग प्रांत की बेइज़्ज़ती महसूस करने लगे। मैं प्रायः एक सप्ताह के दौरे के बाद कई हज़ार रुपये जमा करके लौटा।

मैं जो कुछ जमा करके लाया था उसके अलावा सभी ज़िलों से रोज़ाना रुपये पहुँचने लगे हम लोग भी इधर-उधर चक्कर लगाते ही रहे। इधर निर्माण का काम भी तेज़ी से चलने लगा। भला ग़रीब बिहार धनी अहमदाबाद के ठाट-बाट की कहाँ तक नकल या मुकाबला कर सकता था! पर मेरा ख़याल है कि हमने भी अच्छा ही प्रबन्ध कर लिया और ख़र्च भी गुजरात से बहुत कम ही किया।

प्रदर्शनी के सम्बन्ध में हमने निश्चय कर लिया था कि खादी बनाने की सभी प्रक्रियाओं का प्रदर्शन किया जाय। खादी में हमने केवल कपास के कपड़े को ही; नहीं, बल्कि रेशम, ऊन, पाट इत्यादि उन सभी चीज़ों को शामिल कर लिया था, जिनसे सूत या रस्सी बट करके कोई भी चीज़ बनायी जाती है। इन सब चीज़ों को और सबके लिए कारीगरों को जुटाना कोई आसान काम न था। पर यह सब प्रबन्ध हो गया। खादी-प्रदर्शनी अपने ढंग की अच्छी हुई। दर्शकों के टिकट से जो पैसे आये वे प्राय: प्रदर्शनी के खर्च के लिए काफ़ी साबित हुए।

23. स्वराज्य-पार्टी का जन्म

श्री राजगोपालाचारी के साथ मैंने भिन्न-भिन्न सूबों का दौरा किया। इसके पहले मैं अपने सूबे में ही घूमा था। दूसरे सूबों का बहुत ज्ञान नहीं था। इस दौरे से अनेक स्थानों में जाने का और वहाँ के कार्यकर्त्ताओं से विशेष परिचित होने का सुअवसर मिला। रुपये भी जमा किये गये। रचनात्मक कार्यक्रम पर विशेष ज़ोर दिया गया। राजाजी ही भाषण किया करते थे। राजाजी-जैसी चतुर, प्रतिभाशाली और कुशल वक्ता कम ही हैं। वह अपने भाषणों में शोरगुल नहीं मचाते, न हाथ-पैर पीटते हैं। आहिस्ता-आहिस्ता नरम शब्दों में अपनी युक्तियों को अनूठी तरह से श्रोताओं के सामने रखते हैं और उनको मोह लेते हैं। मैंने सोचा कि मैं इनके बाद क्या भाषण कर सकूँगा, चुप रहना ही अच्छा होगा। उनके भाषण के प्रभाव को मेरा भाषण कम कर देता।

पर लोग चाहते कि मैं भी कुछ कहूँ। इससे बचने की एक अच्छी युक्ति भी निकल आयी। राजाजी अंग्रेज़ी में ही भाषण करते; क्योंकि वह हिन्दी नहीं बोल सकते थे। मैंने उनके भाषणों का भाषान्तर करने का काम उठा लिया। ऐसा यदि न करता, तो हर सभा में भाषान्तरकार खोजना पड़ता और वह भी न मालूम ठीक भाषान्तर करता या नहीं।

मैं उनकी विचारशैली से खूब परिचित हो गया था। उनके बोलने के तरीके को खूब समझ गया था। इसलिए मैंने देखा कि एक पंथ दो काज हो जाता है—उनके भाषण का भाषान्तर हो जाता है और मैं भाषण करने से बच भी जाता हूँ। वह एक वाक्य कहते और मैं उसका भाषान्तर कर देता। इस प्रकार मेरे काम में भी सुविधा होती और लोग सब बातें ठीक-ठीक समझ लेते। प्रायः सभी सभाओं में जहाँ हिन्दी में भाषान्तर की ज़रूरत पड़ती, मैंने यही किया। भाषान्तर का काम कठिन है—विशेषकर तात्कालिक आशु भाषान्तर का—जब कोई वक्ता धारा-प्रवाह बोला जाता हो। पर मैं इसमें दक्ष हो गया। मैंने कलकत्ता हाइकोर्ट में देखा था कि एक भाषान्तरकार, गवाहों के इज़हार में बैरिस्टरों के प्रश्नों और गवाहों के उत्तरों का ऐसा चमत्कारपूर्ण भाषान्तर करता था कि केवल शब्दार्थ ही नहीं, बल्कि प्रश्नों के पूछने के लहजे को भी भाषान्तर में ला देता था।

पंजाब के दौरे के दरमियान लाहौर में देशबन्धु दास से राजाजी की और मेरी मुलाकात हुई। वहाँ पर देशबन्धु दास ने स्थायी समझौते के लिए प्रस्ताव पेश किया कि कांग्रेस के काम कई विभागो में बाँट दिये जाएँ और प्रत्येक विभाग के चलाने का भार ऐसे व्यक्तियों पर रख दिया जाय जो उसमें विशेष दिलचस्पी रखते हों—जैसे, राष्ट्रीय शिक्षा, खादी-प्रचार, कौन्सिल-विभाग, विदेशों में प्रचार, मज़दूर संगठन, अछूतोद्धार, सत्याग्रह इत्यादि। इसके लिए पाँच-छः करोड़ की रक़म भी जमा की जाय।

यद्यपि मैं 1911 से बराबर अखिल भारतीय कमिटी का सदस्य रहता था, तथापि मैं बहुत कम अवसरों पर वहाँ बोला करता था। सत्याग्रह कमिटी की रिपोर्ट पर बहस छिड़ने और गया-कांग्रेस के समय को छोड़कर मुझे याद नहीं है कि उसके पहले और कहीं कांग्रेस में या अखिल भारतीय कमिटी में कभीं भी मैं बोला हूँ। गया में मेरे भाषण हिन्दी में ही हुए थे। नागपुर में अंग्रेज़ी में बोलना उपयोगी मालूम पड़ा; क्योंकि

वहाँ दक्षिण भारत और दूसरे अहिन्दी-भाषी प्रतिनिधियों को ही अधिक समझाने की जरूरत थी। राजाजी स्वयं वहुत वोलना नहीं चाहते थे।

मैंने शायद वहाँ पहली वार अंग्रेज़ी में भाषण किया। लोगों पर प्रभाव अच्छा पड़ा। श्री सत्यमूर्ति, जो स्वराज्य-पार्टी के बड़े हिमायती और राजाजी के पक्ष के विरोधी थे, मेरे पास आये और मेरे भाषण के लिए उन्होंने बधाई देते हुए कहा कि मैं नहीं जानता था कि आप अंग्रेज़ी में इतना अच्छा वोल सकते हैं। नतीजा यह हुआ कि कौन्सिल प्रवेश का प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया। उक्त प्रस्ताव गिर जाने पर वर्किंग कमिटी ने इस्तीफ़ा दे दिया। नयी कमिटी बनीं। हम लोग फिर वर्किंग कमिटी में आ गये। श्री वेंकटप्पय्या सभापति हुए। श्री गोपाल कृष्णय्या मंत्री बने। वर्किंग कमिटी के ज़िम्मे विशेष अधिवेशन का स्थान चुनने का काम भी दिया गया। कुछ दिनों के वाद उन्होंने निश्चय किया कि वह दिल्ली मे हो। अखिल भारतीय कमिटी ने मौलाना अबुल कलाम आज़ाद को विशेष अधिवेशक का सभापति चुन लिया।

1923 दिसम्बर में कांग्रेस का सालाना अधिवेशन काकिनाड़ा में हुआ। ठीक अधिवेशन के समय मैं बीमार पड़गया, इसलिए काकिनाड़ा न जा सका। वहां राष्ट्रभाषा-प्रचार के लिए जो सभा होनेवाली थी, उसका मैं ही सभापति चुना गया था। मैंने एक लम्बा भाषण भी तैयार किया था, जो पुस्तकाकार में छपा था। जव मैंने ठीक रवाना होने के दिन ही बीमार पड़ गया, तो केवल छपा भाषण ही वहाँ जा सका। मेरी जगह सेठ जमनालाल बजाज सभापति हुए। मैंने सुना कि उन्होंने मेरे भाषण को पढ़ सुनाया। काकिनाड़ा-कांग्रेस के सभापति मौलाना मुहम्मद अली हुए।

महात्माजी आराम तो कर रहे थे, पर काम भी कर रहे थे। लोग उनसे मिलने के लिए वहाँ पहुँचने लगे। उनकी ग़ैरहाज़िरी में जो कुछ हुआ था, विशेषकर कौन्सिल-प्रवेश-सम्बन्धी आन्दोलन, उसकी सब

बातें लोगों ने उन्हें बतायीं। देशबन्धु दास और पंडित मोतीलाल नेहरू भी वहाँ गये और कुछ दिनों तक ठहरे। वहाँ इस सम्बन्ध की बातें हुईं और इसका प्रयत्न किया गया कि आपस के समझौते का कोई रास्ता निकले। कौन्सिलों में स्वराज्य-पार्टी की ओर से कुछ कांग्रेसी लोग जा चुके थे। इसलिए इस प्रश्न का उतना महत्व अब नहीं था, जितना गया और दिल्ली की काँग्रेस के समय में था। पर यह जानकर मुझ-जैसे लोगों को सन्तोष हुआ कि गाँधीजी ने हमारी कौन्सिल-निषेध-सम्बन्धी कार्रवाई को पसन्द किया।

जब से गाँधीजी जेल से निकले थे, उन्होंने खादी-प्रचार पर बहुत जोर डाला था। मैं भी अपने सूबे में रचनात्मक काम में ही—विशेषकर राष्ट्रीय शिक्षा और खादी-प्रचार में—लगा रहा। 1924 के दिसम्बर में पटने में एक प्रदर्शनी की गयी, जिसमें चर्खा और उससे उत्पन्न सब प्रकार की खादी के नमूने दिखलाये गये। मैंने इस प्रदर्शनी को राजनीति से अलग रखा। सब लोगों को आमंत्रित किया कि वे आकर देखें कि हाथ से किस तरह और कैसा सूत बन सकता है तथा खादी-प्रचार से गरीबों को कितना लाभ हो सकता है। सरकारी उच्च कर्मचारी भी खूब आये। उन्होंने खादी की प्रगति देखी। ऐसे लोगों में पटना-हाइकोर्ट के चीफ जस्टिस सर डासन मिलर प्रमुख थ। दूसरे हिन्दुस्तानी और अंग्रेज जज, बिहार के गवर्नर की कौन्सिल के मेम्बर सर ह्यू मैकफ़र्सन तथा अनेकानेक उच्च कर्मचारी भी आये। चर्खे की जो प्रतियोगिता हुई उसमें मलखाचक-गांधी-कुटीर (सारन) के दो लड़कों ने प्रथम पुरस्कार पाया। उनकी प्रगति घंटे में प्रायः 600 गज की थी! इन्हीं दोनों युवकों में से एक डाक्टर सत्यनारायणसिंह हैं जो पीछे योरोप में शिक्षित हो डाक्टर की डिगरी लेकर वापस आये और हिन्दी में अनेक ग्रन्थों के रचयिता हुए। महीन सूत के कातनेवालों ने प्रायः 300 नम्बर तक का सूत कातकर दिखलाया! उस समय तक जो प्रगति हुई थी, मैंने उसकी रिपोर्ट अपने भाषण में लोगों के

सामने पेश कर दी। जहाँ तक मेरा अनुमान है, लोग बहुत संतुष्ट हुए। पारितोषिक-वितरण चीफ़ जस्टिस की पत्नी लेडी मिलर ने किया।

जो प्रदर्शनी बेलगाँव में हुई उसका उद्घाटन करने का श्रेय मुझे मिला। शायद वह इसलिए मुझे मिला कि हमारे प्रान्त में खादी का काम अच्छा चल रहा था। यद्यपि प्रदर्शनी में अन्य कलाओं के नमूने भी दिखलाये गये, तथापि मैंने अपने भाषण में विशेषकर खादी के सम्बन्ध में ही कहा। मैंने इसपर ज़ोर दिया कि यदि प्रचारक और पैसों की कमी न हो तथा लोग खादी ख़रीदें, तो सारे देश के लिए थोड़े समय में ही काफ़ी खादी तैयार की जा सकती है।

इसी वर्ष में एक और छोटी-सी घटना हुई जो मेरे लिए एक पुण्यस्मृति है। पटना-युनिवर्सिटी के समावर्तन-समारोह के अवसर पर सर जगदीशचन्द्र बोस दीक्षान्त भाषण करने आये। मैंने उनको बिहार-विद्यापीठ में निमंत्रित किया। जब मैं प्रेसिडेंन्सी कालेज (कलकत्ता) में पढ़ता था, तब डाक्टर बोस ने मुझे पढ़ाया था। पर वह बहुत दिनों पहले की बात थी। वह भी ऊपर के दर्जों में—जैसे बी. एस-सी. अथवा एम. ए. में नहीं, एफ़. ए. में ही मुझे उनसे पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इसलिए, मैं नहीं समझता था कि उनको मेरे सम्बन्ध में कुछ याद होगा अथवा वह मुझे कुछ विशेष रीति से जानते होंगे। परन्तु यह जानकर मेरे आह्लाद का ठिकाना न रहा कि वह न केवल मुझे अच्छी तरह याद ही रखते थे, बल्कि मुझपर प्रीति भी रखते थे। वह खुशी से विद्यापीठ आये, वहाँ एक अत्यन्त सुन्दर, प्रोत्साहन देनेवाला, ओजस्वी भाषण भी किया। मैंने अपने को कृतकृत्य माना। उसी प्रेम और विश्वास का परिचय अपने मरने के कुछ पहले उन्होंने दिया—बिहार में मद्यनिषेध के लिए एक बड़ी रक़म दी और उसके सूद की आमदनी को खर्च करने का भार मुझे दिया। वह जैसे विज्ञान के विद्वानों में शिरोमणि थे, वैसे ही सच्चे देशभक्त और त्यागी भी। मद्यनिषेध का

काम, 1942 में मेरे जेल जाने तक, मेरी निगरानी में, झरिया में होता रहा। लेडी अबला बोस मेरे पास रुपये भेजती रहीं। जब मैं जेल चला आया और काम करनेवाले भी दमन में गिरफ्तार किये गये, तो जो रुपये मेरे पास बचे थे, मैंने लेडी बोस और ट्रस्टियों के पास वापस कर दिये। यह इसलिए भी आवश्यक हो गया कि मेरे नाम से जितने एकौण्ट बैंक में थे उनपर गवर्नमेण्ट ने रोक लगा दी। इसलिए अब रुपये के बिना, विशेषकर मेरी ग़ैरहाज़िरी में, काम बन्द हो ही जाता। मैंने सोचा कि रुपयों को अपनी ज़िम्मेदारी पर रखना उचित न होगा, विशेषकर जब इसका ठिकाना न था कि हम कब तक जेल मे रहेंगे। मेरे लिखने पर गवर्नमेण्ट ने इस हिसाब के रुपयों को उनके पास भेज देने की इजाज़त दे दी। अब प्रायः सोलह महीनों तक जेल मे रहने के बाद, जब ये पंक्तियाँ लिखी जा रही हैं, मैं सोचता हूँ कि मैंने रुपये वापस कर देने का निश्चय करके ठीक ही किया। अफ़सोस केवल इतना है कि आचार्य बोस महोदय की इच्छा मैं पूरी न कर सका; पर इसमें मेरा कसूर नहीं है। भारतवर्ष में राजनीति कुछ ऐसी ही चीज़ है। इसमें पड़े हुए मनुष्य को बहुतेरे दूसरे आवश्यक और महत्वपूर्ण काम छोड़ने ही पड़ते हैं। यद्यपि आज गवर्नमेण्ट ने मद्यनिषेध-सम्बन्धी काँग्रेस-मिनिस्ट्री की नीति को उलट दिया है और झरिया में—जहाँ इन रुपयों से काम हो रहा था—फिर भी शराब की बिक्री होने लगी होगी, तथापि मुझे विश्वास है कि जब फिर हमको समय मिलेगा, उनकी इच्छा पूरी की जायगी।

24· सामाजिक सुधार

उन्हीं दिनों मेरे घर में दो शादियाँ हुई थीं। एक मेरी छोटी भतीजी 'रमा' की—लखनऊ के श्री विद्यादत्त राम के साथ, और दूसरी मेरे बड़े लड़के मृत्युञ्जय की—श्री व्रजकिशोरप्रसादजी की छोटी लड़की 'विद्यावती' के साथ। लखनऊ की बरात बहुत तुजुक के साथ आयी थी। आदमी कुछ ज्यादा नहीं थे; पर बहुत प्रतिष्ठित घराने के कारण उन लोगों की

शान बहुत थी। सब प्रबन्ध हम लोगों को ही करना पड़ा था। भाई साहब ने बहुत इन्तज़ाम किया था। बाबू हरिजी ने इस शादी के ठीक होने में बड़ी मदद की थी। वे लोग उनके निकट सम्बंधी थे। हम लोग यह नहीं चाहते थे कि किसी को कोई शिकायत हो। इसलिए ठहरने केलिए बीनों और खान-पान के लिए बहुत ही नफ़ासत का इन्तजाम था। इसके ठीक उलटा, मृत्युञ्जय की शादी बड़े सादे तरीके से हुई। हमने तो अपने घर के तीनों लड़कों में से किसीकी शादी में तिलक-दहेज नहीं लिया; पर तीनों लड़कियों की शादी मे तिलक-दहेज काफ़ी देना पड़ा था। कहीं-कहीं तो ज़बरदस्ती, इच्छा से अधिक, देना पड़ा था। इस सम्बंध मे हमारे अनुभव हमेशा कटु रहे हैं। हमारे समाज में कुरीतियाँ काफ़ी हैं। जब तक वे दूर नहीं होतीं, लड़की का होना और उसकी शादी की झंझट हमारे लिए दुःखदायी साबित होती रहेगी। कायस्थों में, विशेषकर श्रीवास्तवों और अम्बष्ठों में बहुत सुधार की ज़रूरत है।

कायस्थ कान्फ्रेन्स (अखिल भारतीय) का जन्म प्रायः कांग्रेस के साथ ही हुआ था। मेरा खयाल है कि शायद पहले अधिवेशन में ही इस बात पर जोर दिया गया कि लड़की के पिता से कई नामों से तिलक-दहेज़ की रक़में लेने की प्रथा बहुत बुरी है, उसको रोकना चाहिए। प्रायः प्रत्येक अधिवेशन में इस आशय के प्रस्ताव पास किये गये हैं! पर जो कान्फ्रेन्स के कर्ता-धर्ता होते उनमे बहुतेरे स्वयं ही इस प्रस्ताव की अवहेलना करते!

जब मैं 1916 में कलकत्ते से पटने में वकालत करने के लिए आया, उसके थोड़े ही दिनों के बाद कुछ कायस्थ मित्रों ने मुझसे एक प्रतिज्ञा-पत्र पर दस्तखत कराया। उसका आशय यह था कि लड़के की शादी मे प्रत्यक्ष या परोक्ष रीति से, किसी नाम से, लड़की के पिता या दूसरे सम्बंधियों से, 51 रुपये से अधिक हम नहीं लेंगे। मेरा विचार इसके पक्ष में पहले से ही था। इसलिए मैंने खुशी से प्रतिज्ञा-पत्र पर दस्तखत कर दिया।

इसके कुछ साल के बाद 1925 के दिसम्बर में जब मैं कायस्थ-कान्फ़रेन्स के जौनपुर-अधिवेशन का सभापति चुना गया तो मैंने उसे इसलिए स्वीकार कर लिया कि शायद वहाँ जाकर कम से कम इस कुप्रथा को रोकने में कुछ कृतकार्य हो सकूं। वहाँ उस कान्फ़रेन्स में दो प्रस्ताव, पुराने होने पर भी, मार्के के हुए। एक तो तिलक-दहेज संबंधी था जिसमें हमने प्रतिज्ञा को और भी कड़ी बना दिया। उसी प्रस्ताव में ऐसी शादी में, जहाँ प्रस्ताव का उल्लंघन होता हो, शरीक न होने की भी प्रतिज्ञा जोड़ दी गयी। दूसरे में, कायस्थों के विभिन्न वर्गों और शाखाओं में रोटी-बेटी के व्यवहार जारी करने पर जोर दिया गया। जहाँ तक मैं जानता हूँ, तिलक-दहेज की प्रथा तो उसके बाद भी जारी रही, शायद जारी रहेगी भी। यह संतोष का विषय है कि अन्तर्वर्गीय विवाह कायस्थों में होने लगे। अब कोई इस बात के मानने में नहीं झिझकता कि लड़के या लड़की की शादी किसी दूसरी शाखा के वंश में करना भी उचित और ग्राह्य है। अब तो कम उम्र की छोटी विधवाओं की शादी भी हो जाती है। उस समय तक इस सम्बन्ध में मेरे विचार साफ़ नहीं हुए थे। पर इसके बाद ही मैंने भी मान लिया कि विधवा-विवाह, विशेषकर छोटी उम्र की लड़कियों का, होना अनिवार्य है। ऐसी कुछ शादियों में अपनी सम्मति देकर मैंने प्रोत्साहन भी दिया है।

इधर हिन्दू-मुस्लिम झगड़े बहुत बढ़ गये। कलकत्ते में बहुत बड़ा दंगा हो गया, जिसमें बहुतेरे हिन्दू-मुसलमान मारे गये। हफ्तों तक बलवा-फसाद जारी रह गया। बकरीद के मौके पर कई जगह दंगे हो गये। इसका नतीजा यह हुआ कि खिलाफत-कमिटी के प्रमुख लोग भी प्रभान्वित हो गये। उसके एक विशेष अधिवेशन में कड़वे भाषण हुए। उसमें निश्चय किया गया कि अबसे खिलाफ़त-कमिटी मुसलमानों से सम्बन्ध रखनेवाले सभी प्रश्नों में दिलचस्पी लेगी और मुसलमानों के हकों की हिफ़ाज़त का प्रबन्ध करेगी। दूसरी ओर, हिन्दुओं में भी, बहुतेरे कड़वे

भाषण किये और लेख लिखे जाने लगे। हमारे सूबे के लिए एक बात यह हो गयी कि पंडित मोतीलालजी और मौलवी मुहम्मद शफ़ी में मतभेद हो गया। मौलवी मुहम्मद शफ़ी ने असेम्बली से इस्तीफ़ा दे दिया। स्वतंत्र रीति से फिर खड़े होकर वह चुन लिये गये। उन्होंने स्वतंत्र रीति से कुछ प्रचार भी शुरू कर दिया। हमारे सूबे का वायुमंडल भी बिगड़ता जा रहा था। मौलाना मज़हरुल हक साहब इससे बहुत दुःखी थे। उन्होंने बिहार के प्रमुख काँग्रेसी और खिलाफ़त-कमिटी के लोगों को, तथा कुछ और स्वतंत्र लोगों को भी आमंत्रित करके एक छोटी-सी कान्फ्रेन्स छपरे में की। कई दिनों तक वहाँ बहुत सफ़ाई और खुलासगी के साथ बातें होती रहीं। हम सबने महसूस कर लिया कि यह मामला ऐसा है कि इसको अब छोड़ना ठीक नहीं है और जहाँ तक हमसे हो सके, बिगड़े वायुमंडल को अधिक दूषित होने से रोकना चाहिए। हम सबने निश्चय किया कि इसके लिए हम सब मिलकर प्रयत्न करेंगे। उस सभा में हमको एक बार और हक साहब के देशप्रेम और सच्ची राष्ट्रीयता का पता चला। हम समझ गये कि हमको एक ऐसा नेता मिला है, जो हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के लिए सब कुछ त्याग करने को तैयार है। अपने जीवन का बहुत समय उन्होंने इसी में बिताया था। जब तक वह जीते रहे, इस प्रयत्न में ही लगे रहे। कान्फ़रेन्स के निश्चय के अनुसार हक साहब, मौलवी मुहम्मद शफ़ी, बाबू जगतनारायणलाल, मैं तथा दूसरे कई भाई सूबे में दौरा करने निकल गये।

इसका असर सूबे पर बहुत अच्छा पड़ा। देश में इस बात की बहुत चर्चा होने लगी कि बिहार में हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की जटिल समस्या के सुलझाने का बहुत सुन्दर प्रयत्न मौलाना हक के नेतृत्व में हो रहा है। बिहार का वायुमंडल बहुत हद तक शान्त बना रहा। एक असर यह भी देखा गया कि जब कुछ दिनों के बाद फिर कौन्सिल और असेम्बली का चुनाव हुआ, तो मुसलमान भी काँग्रेस की ओर से खड़े हुए

और चुने गये। मौलवी मुहम्मद शफ़ी साहब और पंडित मोतीलाल के मतभेद से जो अनबन हो गयी थी वह भी दुरुस्त हो गयी।

मैं इसी दौर में छोटानागपुर गया। पुरुलिया से राँची मोटर पर जा रहा था। गाड़ी ख़ूब तेज़ जा रही थी; क्योंकि उसी दिन राँची में उम्मीदवारी की दरख्वास्तों की जाँच होनेवाली थी। ठीक समय से पहुँचना ज़रूरी था। रास्ते में भैंसा-गाड़ी आ गयी। मोटर को उससे बचने के लिए मोड़ना पड़ा। वह काबू से बाहर होकर एक गाय से टकरा गयी। मुझे सिर और नाक पर चोट आयी। थोड़ी चोट औरों को भी लगी। गाड़ी का कुछ अंश टूट गया। पर हम लोग किसी तरह कुछ देर के बाद राँची पहुँच गये; क्योंकि यह घटना राँची के नज़दीक पहुँचने पर हुई थी। वहाँ तो कुछ नहीं मालूम हुआ कि मुझे चोट ज्यादा है। डाक्टर ने पट्टी बाँध दी। मैं दौरे का काम करता रहा। छोटानागपुर का काम पूरा करके मैं उत्तर-बिहार में चला गया। बेगूराय, समस्तीपुर इत्यादि होते हुए मुजफ्फ़रपुर-जिले में गया सीतामढ़ी पहुँचकर, प्रायः घटना के एक सप्ताह के बाद, सिर में दर्द मालूम हुआ। मैंने समझा कि थकावट अथवा सर्दी लग जाने के कारण दर्द है। कुछ दवा खा ली और आगे बढ़ गया। सौभाग्यवश उसी दिन पटना लौटने का कार्यक्रम था। वहाँ पहुँचते-पहुँचते दर्द बढ़ गया। कई दिनों तक बहुत कष्ट हुआ। डाक्टर लोग भी कुछ निश्चय नहीं कर सकते थे कि यह दर्द क्यों है। पर दो-तीन दिनों के बाद सारे चेहरे पर सूजन आ गयी। तब मालूम हुआ कि वह उस चोट का नतीजा है जो मोटर की दुर्घटना में मुझे लगी थी। मैं इस बीमारी के कारण और कई जगहों में जहाँ जाना था, नहीं जा सका।

मेरा विचार था, और अब वह और भी दृढ़ हो गया है, कि जो भेद-भाव हिन्दुओं और मुसलमानों में फैल रहा था वह इन्हीं दोनों तक सीमित न रहेगा हिन्दुओं में जो अनेकानेक जातियाँ हैं, एक दूसरे से

उसी प्रकार आपस में झगड़ने लगेंगी जिस प्रकार हिन्दू-मुसलमान लड़ रहे हैं। मुसलमानों में भी भिन्न-भिन्न दल पैदा हो जायँगे। शिक्षित वर्ग की लड़ाई सरकारी नौकरियों और सरकार से संबद्ध संस्थाओं की मेम्बरी इत्यादि के लिए होती हैं। किसी न किसी समय हिन्दू-समाज की भिन्न-भिन्न जातियों में इस प्रकार की स्पर्धा बढ़ेगी और वे आपस में लड़ेंगी। इस चुनाव में ये बातें कुछ-कुछ देखने में आ गयीं। मैंने एक लेख इस आशय का 'देश' में लिखा था, जिसको कुछ लोगों ने नापसन्द किया था। उस समय से आज तक के अनुभवों ने मेरे इस विचार को और भी दृढ़ कर दिया है कि जब देश के स्थान पर हम किसी जाति-विशेष अथवा धर्म-विशेष अथवा दल-विशेष को बिठाना चाहते हैं, तब इस तरह की लड़ाई हुए बिना नहीं रह सकती। देश-सेवकों के लिए एक ही रास्ता है कि कम से कम तब तक, जब तक देश पूर्णरूपेण स्वतंत्र नहीं हो जाता, किसी स्थान अथवा प्रतिष्ठा के लिए लालायित न हो और केवल सेवा को ही ध्येय बनाकर काम करते जायँ। मैं इसको एक प्रवचनामात्र मानता हूँ जब कोई यह सोचता और कहता है कि सेवा करने के लिए उसे किसी पद-विशेष की आवश्यकता है तथा उस पद के बिना वह सेवा नहीं कर सकता। सेवक के लिए हमेशा जगह खाली पड़ी रहती है। उम्मीदवारों की भीड़ सेवा के लिए नहीं हुआ करती। भीड़ तो सेवा के फल के बँटवारे के लिए लगा करती है! जिसका ध्येय केवल सेवा है, उसका फल नहीं, उसको इस धक्के में जाने की और इस होड़ में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है।

भाई साहब और मैं, सपरिवार दोनों साथ, कानपुर-कांग्रेस में गये थे। वहीं मीरा बहन से मेरी पहली मुलाकत हुई। वह कुछ दिन पहले हिन्दुस्तान आ चुकी थीं; पर मुझसे मुलाकात नहीं हुई थी। उन दिनों से ही उनकी भक्ति और विश्वास तथा श्रद्धा की छाप मेरे दिल पर पड़ गयी। वह एक अंग्रेज अडिमिरल कीं लड़की हैं। उनके पिता हिन्दुस्तान में अडमिरल रहे थे। उस समय वह भी अपने पिता के साथ बम्बई में थीं।

ऐसी महिला का महात्माजी के आश्रम में आना और वहाँ के लोगों के साथ हिल-मिल जाना अँगरेजों को कब पसंद हो सकता था ? कुछ अँगरेजी पत्रों ने यह समाचार छापते हुए लिखा कि गांधीजी ने उनको एक प्रकार से फुसलाकर रख लिया है। बात ऐसी थी नहीं। मीरा बहन ने इसका खण्डन किया। बात यह थी कि जर्मन-युद्ध के समय वह युद्ध की मारकाट से ऊब गयीं। वह इस तलाश में घर छोड़ रोमाँ रोलाँ के पास गयीं कि वह इस प्रकार के भीषण जीवन से बचने का कोई रास्ता बता देंगे। श्री रोमाँ रोलाँ ने उन्हें गांधीजी की पुस्तकें पढ़ने की सलाह दी और कहा कि उनकी पिपासा वहीं बुझ सकेगी। गांधीजी की लिखी जो पुस्तकें मिल सकीं, मीरा बहन ने पढ़ीं। वह जैसे-जैसे पढ़ती गयीं, उनका विश्वास जमता और दृढ़ होता गया। अन्त में उन्होंने गांधीजी के पास आना चाहा, पर गांधीजी ने उन्हें रोका। विलायत में ही वह यथासाध्य आश्रम का जीवन बिताने लगीं। अन्त में, जब उन्होंने बहुत ज़िद किया, तब गांधीजी ने आने की अनुमती दी। तब से वह बराबर उनके साथ है। जो कुछ उनका अपना था, गांधीजी को समर्पित कर दिया है। वहीं से मैं कायस्थ-कान्फ्रेन्स का सभापतित्व करने के लिए जौनपुर गया। इसका ज़िक्र ऊपर कर चुका हूँ।

25. खादी-प्रचार-कार्य

192[illegible] में खादी-सम्बन्धी मेरा मुख्य काम यह भी रहा कि स्थान-स्थान पर खादी-प्रदर्शनी कराऊँ। मेरा प्रयत्न था कि खादी में सब लोगों की दिलचस्पी पैदा हो। इसी उद्देश्य से पटने की प्रदर्शनी सफलता-पूर्वक की गयी थी, जिसका जिक्र पहले आ गया है। 1926 की प्रदर्शनियों में भी इसकी विशेष चेष्टा की गयी। जहाँ-तहाँ अँगरेजों और दूसरे विदेशियों ने भी दिलचस्पी ली। बेतिया (चम्पारन) की प्रदर्शनी का उद्घाटन उस समय के बेतिया-राज के मैनेजर मिस्टर एच. सी. प्रायर, आई. सी. एस. ने

किया। मिस्टर रुथरफोर्ड के हट जाने पर वही वहाँ मैनेजर हुए थे मोतीहारी का प्रदर्शनी का उद्घाटन रेवरेण्ड जे. जेड. होज ने किया। वह एक प्रतिष्ठ पादरी थे, जिनका परिचय गांधीजी से और मुझसे पहले ही से था। जमशेदपुर में भी एक मार्के की प्रदर्शनी की गयी। इतने बड़े कारखानेवाले शहर में—जहाँ की चिमनियाँ दिन-रात धुंआँ उगलती रहती हैं, जहाँ गला हुआ लोहा नदी के झरने के समान बहता रहता है, जहाँ लोहे की बड़ी-बड़ी सिलें आसानी से आटे की रोटी की तरह बेल दी जाती हैं और पत्तर अथवा लंबी-लंबी रेल-लाइनें बेली जाती रहती हैं—छोटी तकली और चर्खे की प्रदर्शनी एक अजीब-सी चीज थी। इसका आयोजन करना ही एक साहस का काम था। उस बड़े कारखाने के अफ़सरों को इस छोटी कल की करामात दिखाने की बात तो और भी बड़े दुस्साहस की थी। पर हमने ऐसा ही किया। ताता-कंपनी के बड़े अफ़सर मिस्टर टेम्पुल से—जो खुद इञ्जिनीयर थे और जेमशेदपुर के टाउन-एडमिनिस्ट्रेटर भी—प्रदर्शनी के उद्घाटन करने का अनुरोध किया गया। उन्होंने इसे मान लिया। खादी की उपयोगिता पर सुन्दर भाषण भी किया। कंपनी के जेनरल मैनेजर मिस्टर कीनन और उनकी पत्नी, जो दोनों अमेरिका निवासी थे, प्रदर्शनी में आये। दोनों ने कुछ खादी भी खरीदी। कंपनी के दूसरे बड़े-बड़े अफ़सर भी, प्रायः सभी, प्रदर्शनी में आये। खादी की बिक्री भी अच्छी हुई। लोगों के आग्रह से एक और प्रदर्शनी शहर के एक दूसरे मुहल्ले में भी की गयी। इस साल में सूबे के प्रायः सभी बड़े-बड़े शहरों में प्रदर्शनियाँ की गयीं। उनका उद्घाटन अक्सर स्थानीय प्रतिष्ठित लोगों द्वारा कराया गया। कई जगहों में मैंने ही उद्घाटन किया। इन प्रदर्शनियों से केवल खादी-संबंधी प्रचार ही नहीं हुआ, खादी खूब बिकी भी।

महात्माजी का स्वास्थ्य प्रायः ठीक न रहता। रुधिर का दबाव अधिक हो जाया करता। वह गर्मी के दिनों में मैसूर-राज्य के नन्दी-

पहाड़ पर आराम करने के लिए भी गये। मैं वहाँ गया, उनके साथ कई दिनों तक ठहरा। स्थान बहुत ही रमणीय था। पहाड़ पर चढ़ना कुछ मेहनत का काम था। पर अभी तक मेरा दमा इतना ज्यादा नहीं बढ़ा था। प्रायः गर्मियों में तो मैं अच्छा रहता ही हूँ। इसलिए मैं पहाड़ पर पैदल ही चढ़ गया। यों ही वापसी में उतरा भी। उस प्रदेश की यह मेरी पहली यात्रा थी। वहाँ से महात्माजी के साथ बँगलोर आया और ठहरा। वहाँ खादी की एक बड़ी प्रदर्शनी हुई, जिसमें विशेष भाग तमिलनाडु और आन्ध्र की शाखाओं ने ही लिया। अपने ढंग की वह प्रदर्शनी बहुत ही अच्छी हुई। वहीं से मैसूर राज्य में खादी-प्रचार का संगठित रूप से सूत्रपात हुआ। उस अवसर पर खादी-संबंधी प्रक्रियाओं के प्रदर्शन के साथ-साथ खादी-संबंधी भाषण भी हुए।

हिन्दी-प्रचार का काम भी दक्षिण में हो रहा था। वहाँ एक विशेष सम्मेलन करके कुछ परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियों को प्रमाण-पत्र वितरित किये गये। मैंने पहलेपहल हिन्दी-सम्बंधी उत्साह देखा। एक ही साथ पति-पत्नी, माँ-बेटी, सास-पतोहू और पिता-पुत्र हिन्दी सीखनेवाले मिले। एक ही साथ परीक्षा में ये बैठते भी। मेरे लिए यह सब नया अनुभव था। उस यात्रा को अपने लिए मैं बहुत ही शिक्षाप्रद मानता हूँ।

बँगलोर में प्रदर्शनी समाप्त होने के बाद मैंने दक्षिण के कई स्थानों का भ्रमण किया। तमिलनाडू के मुख्य भंडार को देखा। वह तिरुपुर में था। दूसरे कई और भंडारों को भी जाकर देखा। राजाजी ने अपना आश्रम सेलम ज़िले में बना रखा था। वहाँ वह खादी का काम बहुत जोरों से चला रहे थे। वहाँ भी गया। इन सब जगहों में वहाँ के काम की परिपाटी और संगठन-विधि का पूरी तरह अध्ययन किया। जो कुछ नया और जानने योग्य वहाँ मिला, उसको अपने सूबे में दाखिल करने का प्रयत्न भी किया। वहां का संगठन और हिसाब रखने का तरीका मुझे बहुत पसंद आया। मैंने उनका अध्ययन कर लिया। उन दिनों सबसे अधिक

खादी की उत्पत्ति तमिलनाडु मे होती थी सबसे बढ़िया महीन खादी (कोकटी को छोड़कर) आन्ध्रदेश में बनती थीं। इसलिए मैंने सोचा कि तमिलनाडु का संगठन देखने के बाद आन्ध्र भी जाना चाहिए। वहाँ के चर्खा-संघ के मंत्री श्री सीताराम शास्त्री का आग्रह भी था कि मैं चलूँ और खादी-संबन्धी भाषण भी करूँ।

लौटने के समय मैं आन्ध्र होते लौटा। मैं आन्ध्र के कई ज़िलों मे गया। सभी जगहों मे मैंने खादी-संबांधी भाषण किया। मेरे भाषण वहाँ अँगरेज़ी में ही हुए। मैंने देखा कि मैं जिस शास्त्रीय रीति से खादी के संबन्ध में लोगों को समझाता उसका असर काफ़ी अच्छा पड़ता—विशेषकर शिक्षित वर्ग पर, अक्सर खादी की उपयोगिता और सफलता के संबन्ध में बहुत संदेह रखा करता था। वहाँ के लोगों का कहना था कि मेरी यात्रा से खादी-प्रचार में अच्छी सहायता मिली। जब मैं पटने लौट आया, तो कुछ भाइयों का विचार हुआ कि जो कुछ मैंने अपने भाषणों में कहा है वह लेखबद्ध कर दिया जाय तो अच्छा होगा। इसलिए मैंने अपने भाषणों का सारांश लिख डाला। 'एकनामिक्स आफ खादी' (खादी का अर्थशास्त्र) के नाम से वही एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुआ। इसका हिन्दी-रूपान्तर भी 'खादी का अर्थशास्त्र' के नाम से प्रकाशित हुआ इस तरह उस साल का बहुत समय खादी के काम में ही बीता।

छपरे आकर हमने यह सुना कि हमारी गैरहाज़िरी में हीं भाई साहब ने फोते में नश्तर लगवा लिया था। कुछ थोड़ी चीनी उनके पेशाब में आती थी। इससे घाव भरने में कुछ दिक्कत होने लगी। बीच में एक समय तो ऐसा आ गया था कि सब लोग बहुत चिन्तित हो गये थे। हम लोग सफ़र में थे, इसलिए हम लोगों को तार द्वारा भी खबर नहीं दी जा सकती थी। पर ईश्वर की दया से, हमारे लौटने के पहले ही, चिन्ता की अवस्था बीत चुकी थी। अब वह अच्छे हो रहे थे। थोड़े दिनों में फिर बिलकुल चंगे हो गये।

26. मेरी योरप-यात्रा

बाबू हरिजी के मुकद्दमे में डुमरगाँव के महाराज ने प्रिवी कौन्सिल में अपील कर दी थी। अब अपील की पेशी का समय नज़दीक आ गया था। बाबू हरिजी चाहते थे कि मैं भी वहाँ के बैरिस्टरों की मदद के लिए विलायत जाऊँ। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि उन्होंने असहयोग के आरंभ के समय ही मुझसे वचन ले लिया था कि उनके मुकद्दमे में मैं बराबर काम कर दूँगा। इसी वचन की पूर्ति में हाईकोर्ट की पेशी के समय भी मैंने काम किया था। अब विलायत जाने की बारी आयी तो इनकार नहीं कर सकता था। और, कुछ यह भी लालच हुई कि इसी बहाने विदेश की यात्रा भी हो जायगी। इसलिए, अब हम वहाँ जाने की तैयारी करने लगे।

हमारा भतीजा जनार्दन, जो लोहा बनाने का काम सीखने वहाँ गया था, हाल में ही लौटा था। ताता-कम्पनी (जमशेदपुर) में उसे, नौकरी भी मिल गयी थी। वहाँ के रहन-सहन के सम्बन्ध में उससे तथा दूसरे मित्रों से सलाह करके मैंने सर्दी के लिए गर्म कपड़े बनवाये। मैं बराबर केवल खादी ही पहना करता था। वहाँ जाकर भी इस नियम को भंग करना मैंने उचित न समझा। इसलिए कशमीरी ऊन के कपड़े ही खादी-भंडार द्वारा मँगाकर बनवाये। कपड़े की काटछाँट भी देशी रखी। अंग्रेज़ी पोशाक न पहनने का ही निश्चय कर लिया। फलस्वरूप दो बातें हुई। बहुत कम खर्च में काम के लायक काफ़ी कपड़े तैयार हो गये। पोशाक चूँकि हिन्दुस्तानी थी, इसलिए उसमें कुछ भूल अथवा भद्दापन भी हो तो कोई विदेशी समझ नहीं सकता था। अंग्रेज़ी पोशाक और रहन-सहन अख्तियार करने पर उन लोगों के फैशन और रीति-नीति के अनुसार ही चलना-फिरना, कपड़ा पहनना और खाना-पीना पड़ता है। अपने रहन-सहन कायम रखने से यह सब झंझट दूर हो जाती है। विशेषकर मुझ-जैसे आदमी के लिए यह झंझट कुछ कम नहीं है; क्योंकि मैंने कभी

जीवन-भर में कपड़ों और फैशन पर ध्यान ही नहीं दिया है। हमने कपड़े को शरीर गर्म रखने और लज्जा-निवारण का साधनमात्र समझा है। इसी नीति को बराबर बर्तता आया हूँ। 45-50 की अवस्था में नये सिरे से विदेशी फैशन को स्वीकार करके उसके तह-पेच को समझना और कपड़े पहनना तथा समय-समय पर उसे बदलते रहना मेरे लिए कम कठिन काम न होता। और, ऐसा करने से काफी खर्च भी बढ़ जाता। इस-लिए, मैंने वहाँ भी अपनी ही चाल चलना बेहतर समझा। ऐसा ही प्रबन्ध भी किया।

बाबू हरिजी चाहते थे कि मुझे हर तरह से आराम रहे—इंग्लैंड में भी, जहाँ तक हो सके, उनका काम करते हुए, आराम से ही रहूँ। इसलिए उन्होंने आग्रह किया कि मैं अपने साथ अपना नौकर भी ले जाऊँ और बराबर फर्स्ट-क्लास में ही सफर करूँ। मेरे सभी दोस्त, जिनको इंग्लैंड का कुछ भी अनुभव था, इसको गैर-जरूरी समझते थे; पर उन्होंने नहीं माना। मैंने गोवर्धन को साथ ले लिया। मार्च के आरंभ में ही, एक शुभ दिन को, जिसे उनके ज्योतिषी ने निश्चित कर दिया था, मैं घर से रवाना होकर बम्बई पहुँचा। वहाँ खादी-भंडार में कुछ और कपड़े तैयार करने को कह दिया। वहाँ से गाँधीजी से विदा लेने के लिए, साबरमती चला गया। रवाना होने के दिन भाई साहब भी बम्बई पहुँच गये। कैसर-हिन्द जहाज में बम्बई से चला।

यह मेरी पहली विदेश-यात्रा थी। मैं यहाँ भी उन लोगों के संसर्ग में बहुत पड़ा जो विदेशी ढंग से रहते और खाते-पीते हैं। जाने के पहले एक दिन श्री सच्चिदानन्द सिंह ने मुझे अपने यहाँ अंग्रेज़ी ढंग से टेबुल पर खिलाया था। मैंने काँटा-चमचे का इस्तेमाल देख लिया था। इत्तिफ़ाक से जहाज़ पर मेरे कमरे में एक पारसी सज्जन थे। वह विदेश में सैर करने के लिए ही जा रहे थे। उनसे तो

जान-पहचान हो ही गयी, पर दूसरे कोई मुलाकती भाई या बहन उस जहाज में नहीं थे। मेरी आदत भी कुछ ऐसी है कि मैं किसीसे स्वतः मुलाकात या जान-पहचान करने में बहुत सकुचाता हूँ। इसलिए जहाज पर किसी भी देशी या विदेशी यात्री से एक-दो दिनों तक मुलाकात या बातचीत नहीं हुई। पर इतना मैं देखता था कि मेरी हि ानी पोशाक की ओर बहुतेरों की आँखें जाती थीं। मे डेक पर अपनी कुर्सी रखकर कुछ पुस्तके पढ़ता अथवा टहलता रहा। समुद्र बहुत शान्त था। इसलिए किसी किस्म की मतली, चक्कर वगैरह मुझे नहीं आया।

दो दिनों के बाद एक अंग्रेजी सज्जन, जो आइ. एम. एस. (इंडियन मेडिकल सर्विस) के पेन्शन पाये हुए अफसर थे, मेरे नज़दीक आये। मुझसे वह बातें करने लगे। मेरे खद्दर के कपड़े और एकान्त में चुप बैठे रहने से उनका और उनकी स्त्री का ध्यान आकर्षित हुआ था। पेन्शन पाने के बाद वह किसी कमीशन के मेम्बर होकर फिर हिन्दुस्तान आये थे। अपना काम पूरा करके वह वापस जा रहे थे। दोनों प्राणी बहुत ही अच्छे मिजाज के थे। वे गांधीजी के सम्बन्ध में कुछ जानते थे। खद्दर के सम्बन्ध में भी अखबारों में कुछ पढ़ा था। उनकी इच्छा थी कि हिन्दुस्तान में गांधीजी को देखते, पर इसका सुअवसर न मिल सका। जब बातचीत से उनको मालूम हो गया कि गांधीजी के साथ मेरा कैसा सम्बन्ध है, तो उनकी दिलचस्पी और भी बढ़ गयी। हमसे वे बराबर बातचीत किया करते। उनको यह जानकर कौतूहल हुआ कि मैं मांसाहारी नहीं हूँ। वे स्वयं भी मांसाहारी न थें। उन्होंने यह कहकर मझे चकित कर दिया कि हिन्दुस्तान में शाकाहारी होकर रहना बहुत कठिन है; क्योंकि यहाँ शाकाहारी के उपयुक्त खाद्य पदार्थ बहुत कम मिलते हैं। उन्होने मुझें बतलाया कि इंगलैंड और तमाम योरप में ऐसे बहुतेरे रेस्तराँ हैं जिनमें शाकाहारी भोजन मिल सकता है। वहाँ सब्जी बहुतायत से मिल सकता है—दूध और दूध से बने हुए बहुत तरह के खाद्य-पदार्थ मिल

सकते हैं। पर वहाँ के लोग अंडे को भी शाकाहार में ही दाखिल करते हैं! शाकाहारी खूब अंडे खाते हैं। जो लोग पक्के शाकाहारी हैं वे दूध और दूध के बने पदार्थ भी नहीं खाते; क्योंकि वे दूध को भी जानवर के खून का एक परिवर्तित रूप ही मानते हैं। इसलिए, उन्होंने मुझे बता दिया कि इंग्लैंड में यदि मुझे किसी रेस्तराँ में खाना पड़े, तो खास तौर से मुझे कह देना होगा कि मुझे अंडे से भी परहेज है, तभी वह बिना अंडे के भोजन देंगे, अन्यथा प्रायः सभी चीजों में किसी न किसी रूप में अंडे का अंग रहेगा ही। साथ ही, उन्होंने यह भी कहा कि बिना अंडे के बिस्कुट इत्यादि भी सब जगह नहीं मिलतते; पर यदि कोई दूकानदार कहे कि बिस्कुट या खाने की अन्य वस्तु बिना अंडे के बनी है, तो मुझे उसकी बात मान लेनी चाहिए; क्योंकि उसका स्वार्थ सच बोलने में ही है। अंडा महँगा पड़ता है। ये सब बातें मेरे लिए नयी थीं। पर उस दम्पती की मुलाकात ने मेरे लिए इस प्रकार की बहुत-सी जानने लायक बातें बता दीं। प्रतिदिन के जीवन के काम में आनेवाले नुस्खे उन्होंने बता दिये। मैं वहाँ भी अपने नियम के अनुसार रह सका।

रास्ते में मुझे ऐसा मालूम हुआ कि जब तक जहाज स्वेज नहर में गुजरता है, तब तक टामस-कुक-कम्पनी की ओर से ऐसा प्रबन्ध रहता है कि जो मुसाफ़िर चाहे, मोटर द्वारा जाकर 'कैरो' नगर और उससे थोड़ी दूर पर स्फ़िक्स को देख आ सकता है। मैंने यह देख लेना अच्छा समझा। मेरे ही जैसे कुछ और मुसाफ़िर भी थे, जिन्होंने टामस-कुक के साथ वहाँ जाने का प्रबन्ध कर लिया। हम लोग बहुत सवेरे ही, करीब पाँच बजे, जहाज से उतरकर मोटर पर कैरो चले गये। कैरो में पहुँचने पर मुँह-हाथ धोने और कुछ हलका नाश्ता कर लेने के लिए एक होटल में हम लोग ले जाये गये। उसके बाद कैरो का अजायबघर देखने गये। वहीं पिरामिडों की खुदाई से निकली हुई चीज़ें सुरक्षित रखी गयी हैं। यह बड़ा सुन्दर संग्रह है। प्राचीन मिस्र के कितने बड़े नामी और प्रतापी

बादशाहों के शव (ममी), जो पिरामिड़ों से निकले हैं, वहाँ सुरक्षित हैं। अब देखने में वे काले पड़ गये हैं, पर मनुष्य का चेहरा और हाथ-पैर तो ज्यों के त्यों हैं। वे जिस महीन कपड़े में लपेटकर गाड़े गये थे वह कपड़ा भी अभी तक वैसे ही लिपटा हुआ है। यह कपड़ा बहुत ही बारीक हुआ करता था। सुना जाता है कि यह भारतवर्ष से ही जाया करता था। उन दिनों के वहाँ के निवासियों का विश्वास था कि आराम के सभी समान यदि मुर्दे के साथ गाड़ दिये जायँ, तो परलोक में भी उनसे वह आराम पा सकता है। इसी विश्वास के अनुसार, पिरामिडों के अन्दर, शव के साथ, सभी आवश्यक वस्तुएँ गाड़ी जाती थीं—पहनने के कपड़े और गहने, बैठने के लिए चौकी इत्यादि, खाने के लिए अन्न, शृङ्गार के सामान सवारी के लिए रथ और नाव भी। वे सब चीजें एक से एक अच्छी बनी हैं। उनसे जान पड़ता है कि उस समय भी लोग सोने का व्यवहार जानते थे।

सुना है कि इसी प्रकार की खुदाई से मोहन-जोदड़ों (सिन्ध) में जो गेहूँ निकला वह बो देने पर उग गया। जादूघर के संग्रह और विशेषकर प्रतापी राजाओं के शव देखकर मनुष्य के जीवन की अनित्यता साफ-साफ दीखने लगी। ऐसे दृश्य देखकर यह मालूम होने लगता है कि हम जो कुछ अपने बड़प्पन के मद में करते हैं, वह सब कितना तुच्छ और अस्थायी है। जिन बादशाहों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उन्होंने अपने ज़माने में बहुत जुल्म किया था, उसके शव उसी तरह आज भी पड़े हैं। जो विशेष करके वहाँ का इतिहास नहीं पढ़ता, उसे उनके नामों तक की अब खबर नही है। मैंने कुछ चित्र खरीदे। यद्यपि अजायबघर का सफ़र बहुत अच्छा रहा, तथापि मेरे दिल पर क्षणभंगुर जीवन की असारता का गहरा असर पड़ा। मैं वहाँ से उदास ही निकला।

उस म्यूज़ियम को देखने के बाद हम लोगों को शहर की कुछ प्राचीन और प्रसिद्ध इमारतें और दूसरी मशहूर जगहें दिखलायी गयीं, जिनमें एक बड़ी और सुन्दर मसजिद भी है। मिस्र में मुसलमान पूरब रुख मुंह करके

नमाज पढ़ते हैं; क्योंकि वहाँ से काबा पूरब पड़ता है। यह हि
के लिए कुछ अनूठा-सा मालूम पड़ता है। वहाँ की मसजिद भी इसी कारन से हिन्दुस्तान की मसजिदों जैसी पूरब रुख की न होकर पश्चिम रुख की होती हैं। यह बड़ी मसजिद भी वैसी ही थी। वहाँ की भाषा अरबी है, पर योरपीय भाषाओं में से अधिक प्रचार वहाँ फ्रेंच का है। लोग साफ़ मालूम पड़ते थे। पुलिसवाले तुर्की फेज पहने हुए थे। कैरो यद्यपि पुराना शहर है, तथापि जिस हिस्से को हमने देखा वह बहुत कुछ आजकल के शहरों जैसा ही था।

दोपहर का भोजन करके हम लोग कुछ दूर तक मोटर पर पिरामिड देखने गये। एक स्थान पर पहुँचकर मोटर छोड़ देनी पड़ी। ऊँटों पर सवार होकर पिरामिडों तक जाना पड़ा। मेरे लिए ऊँट की सवारी बिलकुल नयी थी; क्योंकि मैं कभी विन्दुस्तान में ऊँट पर न चढ़ा था। पर एक बार चढ़ जाने पर कोई विशेष बात न हुई। पिरामिडों को नज़दीक जाकर देखा। ये बहुत ऊँची चौखूंटी इमारतें हैं। हमारे देश में ईंटों का पजावा जैसे बनता है वैसे ही ये पत्थरों के बहुत बड़े-बड़े चौरस किये हुए टुकड़ों से बने हैं। पजावे की तरह ही नीचे की चौड़ाई ज्यादा है, जो ऊपर की ओर कम होती गयी है। ईंटों का पजावा तो छोटा होता है, ये बहुत बड़े और बहुत ऊँचे हैं। जिस परिणाम में ये ऊँचे और चौड़े हैं उसी परिणाम में इनमें लगी हुई पत्थर की ईंटें भी पजावे की ईंटों से लम्बाई-चौड़ाई और मोटाई में अधिक हैं। मेरा अनुमान है कि एक-एक ईंट शायद चार-पाँच हाथ लम्बी होगी। इसी के अनुसार उसकी चौड़ाई और मोटाई भी होगी। न मालूम कितने दिनों में एक-एक ईंट काटकर इतनी बड़ी इमारत तैयार हुई होगी। इसमें कितने गरीबों ने अपनी जिन्दगी का कितना हिस्सा लगाया होगा! यह सब किसी एक राजा के नाम को उसके मरने के बाद भी कायम रखने के लिए किया गया था! नाम तो अब केवल पुस्तकों में रह गया है! ये इमारतें, जिनसे

मनुष्य कोई लाभ नहीं उठा सकता, अपनी जगह पर आज भी, हजारों बरसों के बाद ज्यों की त्यों खड़ी हैं। उनमें से अनेकों के अन्दर भी खुदाई हुई है। उन्हीं में से निकले हुए सामान का संग्रह कैरो के अजायबघर में है। मुझे स्मरण है कि हाल में हम लोगों ने अखबारों में पढ़ा था कि कब्रों में खोदनेवाले की मृत्यु हो गयी थी। जिस किसी ने यह प्रयत्न किया वह मर गया। खोदनेवाला मर तो गया; पर वहाँ की खुदाई से बहुत समान निकला।

स्फिक्स एक अजीब चीज़ है। मनुष्य का मुंह और शरीर जानवर का है। एक बहुत बड़ी मूर्ति उस रेगिस्तान में इसी शकल की बनी पड़ी है। सुनते हैं कि प्राचीन काल में इससे प्रश्न किये जाते थे और यह भविष्य की बातें बता देता था। पर यह जो कुछ कहता था, उसका समझना बहुत कठिन था। अब ये बातें तो नहीं हैं, पर यह मूर्ति यों ही खड़ी उस प्राचीन समय का स्मरण कराती रहती है।

यह सब देखकर हम लोग संध्या तक वापस आकर रेल पर सवार हुए। पोर्ट-साईद में 11 बजे रात के करीब पहुँचे। वहाँ जहाज पहुँच गया था। हम सब अपने-अपने कमरे में जाकर सो रहे। खाना-पीना रास्ते में रेल में ही हो चुका था।

भूमध्यसागर में पहुँचने पर कुछ सर्दी लगने लगी। लाल समुद्र तो बहुत गर्म था—अरब-सागर से भी अधिक। भूमध्यसागर में हवा भी ज़ोर से चलती थी, इसलिए जहाज़ कुछ हिलता था। मुझे एक दिन कुछ मतली-सी आयी, पर अधिक नहीं। रास्ते में जो देखने को मिला, मैं सब कुछ देखता गया। इटली के नज़दीक सिसिली टापू के पास होकर ही जहाज़ गुज़रा। वहाँ का शहर कुछ दूर पर देखने में आया। पहाड़ तो साफ़ नज़र आता था। कई दिनों के बाद हम लोग मार्सेल्स (फ्रान्स) पहुँच गये। रास्ते में कोई विशेष बात नहीं हुई। कभी-कभी कोई टापू

नज़र आ जाता था, तो सब लोग उसे देखने लगते थे। समुद्र-यात्रा में चारों ओर पानी ही पानी दीखता है। इससे दिन-रात पानी देखते-देखते एक-दो दिनों के बाद ही जी ऊब जाता है। अगर कहीं कोई दूसरा गुजरता हुआ जहाज़ नजर आ गया या जमीन देखने में आ गयी, तो बहुत आनन्द होता है। सभी मुसाफिर उसे इस तरह देखने लगते हैं मानो उन्होंने कभी ज़मीन देखी ही नहीं है।

हम लोग मार्सेल्स में सवेरे ही उतरे। वहाँ एक होटल में ठहर गये। वहाँ भी कुक-कम्पनी की कृपा से शहर के सभी देखने योग्य स्थानों का देख लिया। टामस-कुक का प्रवन्ध बहुत अच्छा होता है। यात्रियों को उनका दुभाषिया मुख्य-मुख्य स्थान दिखला देता है। उनकी अपनी मोटर-गाड़ी रहती है। ऐसा अच्छा प्रबन्ध रखते हैं कि निश्चित समय के अन्दर सब कुछ आदमी देख लेता है। सवेरे जहाज से उतरते ही, रात में रवाना होनेवाली गाड़ी में अपने लिए जगह मैंने ठीक कर ली थी। दिन-भर घूम-घाम कर रात की गाड़ी से पेरिस के लिए रवाना हो गया। पेरिस में गाड़ी बदलकर कैले पहुँचा। वहाँ फिर जहाज़ पर चढ़कर संध्या होते-होते डोवर में उतर गया। डोवर से रेल पर चलकर रात के प्राय: 9 बजे लंदन पहुँच गया। वहाँ मैं मार्च के तीसरे सप्ताह में पहुँचा था, पर अभी तक काफी सर्दी थी। स्टेशन पर पहले से वहाँ पहुँचे हुए मित्र मिल गये। मैं सीधे उस मकान में चला गया जो पहले से किराये पर लिया गया था। वह गोन्डर्सग्रीन में था हम लोग कुछ दिनों तक वहीं ठहरे रहे।

वहाँ पर सब प्रबन्ध पहले ही से था। श्री महावीरप्रसाद बैरिस्टर और श्री कुँवरबहादुर पहले से ही वहाँ ठहरे थे। इसलिए वहाँ घर-जैसा ही मालूम हुआ। फिर गोवर्धन के मेरे साथ आ जाने से खाना भी हिन्दुस्तानी मिलने लगा। जैसे यहाँ हम लोग भात-दाल रोटी-तरकारी खाते हैं, वैसे ही वहाँ भी खाने लगे। मैं तो मुकदमे की पैरवी के लिए

गया था। जिस रात में पहुँचा, लोगों से कुछ बातचीत करके सो गया पहुँचते ही मालूम हो गया कि सवेरे उठकर बैरिस्टर के यहाँ जाना होगा; क्योंकि उसने आपस में बातचीत करने के लिए समय दिया है। इसलिए, लंदन पहुँचने के बारह घंटों के अन्दर ही मैं काम में जुत गया। और, जब तक मुकदमा खतम न हुआ, दिन-रात उसी के काम में लगा रहा।

27. लन्दन में

मेरा कार्यक्रम वहाँ यह था कि मैं अपनी आदत के मुताबिक बहुत सवेरे उठता। वहाँ लोग सवेरे बहुत देर तक सोये रहते हैं। अधिकतर रात की पहली पहर में ही जागकर काम करते हैं। मैं ऐसा कभी नहीं करता। वहाँ भी ऐसा न कर सका। जब लोग सोये ही रहते थे, मैं मुँह-हाथ धोकर और स्नान कर कपड़े पहन कमरे में बैठ जाता और मुकद्दमे के कागज़ पढ़ने लगता।

सब लोग सवेरे प्रायः नौ-साढ़े नौ बजे तैयार होते। उस समय तक मैं प्रायः दो घण्टे काम कर चुका होता था। उसके बाद नाश्ता करके प्रायः दस बजे लाइब्रेरी में चला जाता। वहाँ कानून की पुस्तकें पढ़ने लगता। वहाँ के हमारे एटर्नी ने लाइब्रेरी में हमारे लिए सुविधा करा दी थी। इससे अंग्रेज़ी कानून की हर तरह की पुस्तकें देखने को मिल जातीं। एक बजे दिन तक इस तरह काम करके मैं नजदीक के ही एक शाकाहारी लोगों के रेस्तराँ में चला जाता। वहाँ कुछ फल, रोटी-दूध इत्यादि खा लेता। कहने से सब कुछ बिना अंडे के वह बना देते। दो-एक दिनों में तो वहाँ के आदमियों ने मुझे पहचान लिया, इसलिए पहुँचने पर कुछ कहने की भी ज़रूरत नहीं पड़ती। फ़िर संध्या तक कोर्ट में काम करके प्रायः छः बजे वहाँ से वापस आता। आना-जाना रेल से होता, जो ज़मीन के भीतर से चलती है। घर पर संध्या का भोजन करके शाम को कुछ देर के लिए टहलने जाता और लौटकर कुछ

काम करके सो जाता। किसी-किसी दिन बैरिस्टरों के साथ सलाह-बात होती। उनके अनुसार इस कार्यक्रम में तबदीली हो जाती। इस तरह प्रायः दो महीने बीते। अब बाबू हरिजी भी पहुँच गये। इस बीच में मुझे कुछ दिनों के लिए हाइथ में जाकर रहना पड़ा था।

हमारी तरफ़ के सीनियर बैरिस्टरों में एक श्री लक्समूर थे, जो थोड़े ही दिनों के बाद वहाँ के हाईकोर्ट के जज हो गये; उनका घर था हाइथ के पास एक गाँव में। ईस्टर की छुट्टी मे वह अपने घर गये। हमारी ओर से उनसे कहा गया कि यह मुकद्दमा पेचीदा है, यदि आप कहें तो कागज़ पढ़ने में आपकी सहायता करने के लिए हममें से कोई आपके साथ वहाँ जाय। पहले वह राज़ी न होते थे, पर बहुत कहने-सुनने पर वह राज़ी हो गये। मैं हाइथ में ठहरा। वहाँ से उनका घर सात-आठ मील की दूरी पर था। रोज़ सवेरे नव बजे उनकी मोटर आकर मुझे ले जाती। साढ़े नव से हम लोग काम करने बैठ जाते। बीच में एक घंटा दोपहर के भोजन के लिए और आधा घंटा चाय के लिए छोड़कर प्रायः साढ़े छः सात बजे तक काम करते रहते। मैं फिर हाइथ उसी तरह चला आता। दोपहर का खाना उन्हीं के यहाँ खाता। उनकी पत्नी को मेरे शाकाहार होने की बात मालूम हो गयी थी। उन्होंने उसके लिए प्रबन्ध कर लिया था। प्रायः पन्द्रह दिनों तक वहाँ रहा। काम के सिल-सिले में उनसे बहुत घनिष्ठता हो गयी।

हमारे सबसे सीनियर बैरिस्टर श्री अपजौन थे। उनकी अवस्था उस समय पचहत्तर से अधिक हो गयी थी। अब भी काफ़ी परिश्रम कर लेते थे। स्वास्थ्य उनका बहुत अच्छा था। मुकद्दमे के कागज़ प्रायः पन्द्रह हज़ार पृष्ठों में छपे थे। बातें भी बहुत पेचीदा थीं। कहीं-कहीं एक ही कागज़ पचीस-तीस पृष्ठों का होता, पर उसमें हमारे काम की केवल तीन-चार ही पंक्तियाँ मिलतीं। हम लोगों के पास पटने से ही पूरा-पूरा नोट तैयार था। हम समझते थे कि हम अगर बैरिस्टरों के साथ बैठें और ऐसे

दस्तावेजों के आवश्यक भाग की ओर उनका ध्यान आकर्षित कर दे, तो उनका समय बच एगा। इसलिए ही हम चाहते थे कि हमारे साथ वे कागज पढ़ें। पहले कोई राजी नहीं होता था, पर मिस्टर लक्समूर राजी हो गये। मिस्टर अपजौन नहीं राजी हुए। इसके लिए अलग से फीस देने को कहा। यहाँ हिन्दुस्तान में ना ही हुआ था। कागज़ पढ़ने के लिए जब हममें से किसी के साथ सीनियर लोग बैठते तो उसके लिए फी घंटा 85 रुपये अलग फीस लेते। प्रायः 15,000 पृष्ठ इस तरह 85 रुपये घंटे के हिसाब से पढ़वाये गये थे। बाबू हरिजी चाहते थे कि जो खर्च पड़े, वही बात वहाँ भी की जाय। पर मिस्टर अपजौन, जिनको हमारी ओर से सबसे पहले बहस करनी थी, इसपर किसी तरह राजी न हुए। उनका कहना था कि जो फीस हमको मिली है केवल इजलास पर बैठने या खड़े होने के लिए ही नहीं हैं, कागज़ पढ़ना हमारा कर्त्तव्य है; क्योंकि इसके बिना वहाँ हमारा जाना बेकार होता, इसलिए कागज़ पढ़ने के लिए अलग फीस मैं नहीं लूँगा और मैं अपना काम खुद कर लूंगा—हाँ, अगर कहीं किसी विषय पर नोट की जरूरत होगी तो माँगूँगा, तुम लोगों को कोई नोट देना हो तो दे देना, मैं उसे देख लूँगा; यहाँ का रिवाज कागज पढ़ने के लिए किसी दूसरे के साथ बैठने का नहीं है, जब कभी दूसरे लोगों के साथ राय-मशविरा करना होगा तो बुला लूँगा; उसकी उचित फीस—जो कनसलटेशन की होती है—लूँगा।

बाबू हरिजी कुछ घबराये; क्योंकि वह समझते थे कि इतना वयोवृद्ध इतने कागजों को खुद पूरी तरह शायद न पढ़ सकेगा और पढ़ते-पढ़ते घबरा जायगा; क्योंकि जैसा ऊपर कहा गया है, किसी बहुत लम्बे कागज में 25-30 पृष्ठ पढ़ने के बाद दो-चार पंक्तियाँ काम की मिलेंगी और हो सकता है कि वह उन पंक्तियों को लांघकर आगे बढ़ जाय और यह न समझे कि यह कागज किसलिए दाखिल किया गया है। जब उनसे यह कहा गया कि आपका समय बहुत फजूल चीज़ों के पढ़ने में व्यर्थ लगेगा

तो उन्होंने जवाब दिया कि मैं एक पंक्ति भी बिना पढ़े नहीं छोड़ूंगा—तुम समझते हो कि वही दो-चार पंक्तियाँ जो तुम बताओगे, जरूरी हैं; पर बहस मुझे करनी है, हो सकता है कि मैं अपनी बुद्धि और अनुभव से दो-चार पंक्तियाँ ऐसी दूसरी भी निकाल लूँ जिनसे हमारा काम निकले और जिनको तुम लोगों ने गैरजरूरी समझा है; इसलिए मैं अकेला ही सब पढ़ूंगा और तब जरूरत पड़ने पर कुछ पूछना होगा तो पूछूंगा।

इसका उत्तर कुछ नहीं था। बाबू हरिजी को चुप रह जाना पड़ा। पर वह शंकित ही रहे।

प्रिवी कौन्सिल का कायदा है कि दोनों पक्ष अपनी बहस का सारांश दाखिल कर देते हैं। इसे केस पेश करना कहते हैं। केस बड़ी सावधानी से तैयार किया जाता है; क्योंकि उसके बाहर की बातों पर बहस नहीं हो सकती। एक पक्ष को दूसरे पक्ष का केस, अपना केस दाखिल करने के पहले, देखने को नही मिलता। इसलिए दोनों पक्षों को, विपक्षी के केस का उत्तर भी, अपने केस में पहले से ही अन्दाज से देना पड़ता है। जब मिस्टर अपजौन ने हम लोगों का केस तैयार किया, हमने उसे देखा हम सबको, विशेषकर बाबू हरिजी को, पूरा विश्वास हो गया कि उन्होंने सारी पेचीदगियों को अच्छी तरह समझ लिया है और सभी कागजों को पूरा-पूरा पढ़ लिया है। इससे हम लोगों को पूरा सन्तोष हो गया। कानूनदाँ लोगों के बर्ताव का यह बहुत ऊँचा आदर्श मेरे देखने में आया। मैं तो इसपर मुग्ध हो गया। अफसोस के साथ कहना पड़ता है, अपने देश में इतना ऊँचा आदर्श मैंने नहीं देखा था!!

मिस्टर अपजौन से मेरी जान-पहचान विचित्र तरीके से बढ़ गयी। मेरा हिन्दुस्तानी लिबास देखकर वह समझते थे कि मैं या तो बाबू हरिजी हूँ या उनका कोई सम्बन्धी, जो मुकद्दमे की पैरवी के लिए आया है। वह मुझे वकील नहीं जानते थे। एक दिन 'कन्सलटेशन' में उन्होंने कुछ प्रश्न

किये। मैं पीछे बैठा था, मैंने उत्तर दे दिया। उन्होंने मेरी ओर देखा, पर कहा कुछ नहीं। पीछे हममें से एक आदमी से, जो उनके यहाँ वकील की हैसियत से जाया-आया करते थे, उन्होंने कहा कि हम लोगों का मवक्किल तो बड़ा होशियार मालूम होता है, उसने मेरे प्रश्नों का अच्छा उत्तर दिया था। इसपर हमारे सहकर्मी ने मेरे बारे में बताया कि मैं मवक्किल नहीं, बल्कि एक वकील हूँ; अपनी वकालत छोड़ दी है। इससे उनका कुतूहल कुछ बढ़ गया। पीछे उन्होंने मुझसे बहुत काम लिया। अनेक प्रकार के नोट तैयार करने की फरमाइश की। मैं बराबर तैयार करके दे देता।

जब मुकद्दमे की पेशी का समय आया तो उन्होंने मुझसे पूछा, क्या तुम इजलास पर हाज़िर रहना चाहते हो? मेरे 'हाँ' कहने पर बोले, यह जरूरी नहीं है। तुम्हारा समय दूसरे तरीके से बेहतर उपयोग में आवेगा, मुझे बहुत विषयों पर नोट चाहिए, तुम घर पर रहकर तैयार करो। मैंने कहा, यदि मैं नोट तैयार करके दे दिया करूँ और घर पर रहना जरूरी न हो तो? उन्होंने कहा, नहीं, नोटों के तैयार करने में समय लगेगा, तुम हाज़िर नहीं हो सकोगे; पर यदि तुम नोट में देरी न करो और इजलास पर हाजिर रह सको तो मुझे कुछ उज्र नहीं है; पर नोट में देरी मैं बर्दाश्त नहीं कर सकूंगा।

यह बात मशहूर थी कि वह बहुत बदमिजाज़ हैं, अपने विरोधी और साथी बैरिस्टरों तथा जजों से भी उलझ जाया करते हैं। इसलिए मैं डरता था; पर मैंने देख लिया कि वह मेरे नोटों से सन्तुष्ट हो जाते थे। वह टेलिफोन कर देते कि मैं इजलास लगने के दस या पाँच मिनट पहले उनसे मिलूँ। वहाँ वह घर से ही उन विषयों को नोट करके लाते जिनपर मुझसे वह नोट लिखाना चाहते थे। मुझे वह उन नोटों को लिखवा देते। मैं उसके पहले के नोट देखकर आता और उनमें जो कुछ पूछना होता, पूछ लेता। यदि मैं पहले से कागज-पेन्सिल लेकर तैयार न रहता तो इसपर

भी वह बिगड़ जाते। समय का इतना सदुपयोग करते कि एक मिनट भी बर्बाद न होने पाता।

मैंने एक बात और देखी। वह हमारे देश के, विशेषकर पटने और कलकत्ते के, वकीलों और बैरिस्टरों के लिए अनुकरणीय है।। जब मैं वकालत करता था, मेरा अनुभव हुआ कि कोर्ट में जाने पर जब तक हम घर लौटकर नहीं आते तब तक का हमारा अधिकांश समय, जो अपने मुकद्दमे की पेशी में नहीं लगता, प्रायः बेकार बरबाद हो जाता है। बार-एसोसिएशन या पुस्तकालय में बैठकर हम लोग बहुत कम कागज अथवा पुस्तकें पढ़ते हैं। हम लोग अपने मुकद्दमे की बहस की तैयारी घर पर किया करते हैं। कोर्ट में जब मुकद्दमा पेश होता है और जब तक चलता रहता है तब तक, जिसका मुकद्दमा रहा उसका समय तो उपयोग में आया, पर जिन दूसरे लोगों की मुकद्दमे की पेशी नहीं हुई है वे केवल गपशप में सारा समय बिताते हैं। कहीं-कहीं शतरंज की बाजी भी जम जाती है।

मेरा अपना अनुभव भी यही था कि वहाँ पर बैठकर कागज या पुस्तक पढ़ना बहुत मुश्किल है; क्योंकि इसके लिए वहाँ का वायुमंडल अनुकूल नहीं रहता। जहाँ सब लोग गपशप और हँसी-मजाक कर रहे हों वहाँ कोई पढ़ सकता है? इसलिए मुकद्दमों के कागज पढ़ने का सारा समय घर पर निकालना पड़ता है मेरे पास काफी मुकद्दमे रहा करते थे। इसलिए मुझे बराबर प्रायः 3-4 बजे तड़के ही उठकर तैयारी करनी पड़ती थी। वहाँ मैंने देखा कि बैरिस्टर अपना सारा काम चाहे लाइब्रेरी में या अपने चेम्बर में ही पूरा करते हैं। इजलास पर जजों के बैठने के कुछ पहले ही आ जाते हैं। फिर इजलास उठ जाने के बाद भी दो घंटा बैठ जाते हैं। बीच में जब मुकद्दमे की पेशी से छुट्टी मिलती है, काम करते हैं।

कोई-कोई तो घर पर मुकद्दमे के कागज ले भी नहीं जाते। यहाँ तक कि घर में कानून की पुस्तकें भी नहीं रखते। उनका विचार है कि

घर तो बस घर ही है—वहाँ बालबच्चों से मिलना, बातें करना, खाना-पीना, दिल बहलाना, अथवा जी चाहे तो इच्छा के अनुसार दूसरी पुस्तकें पढ़ना चाहिए; पेशे का काम तो दिन-भर में चाहे चेम्बर में चाहे इजलास पर ही करना चाहिए। इस प्रकार दिन का पूरा समय ठीक उपयोग में आता है तथा रात और सवेरे का समय अपना होता है, जिसे हम जिस तरह चाहें अपने उपयोग में ला सकते हैं।

वहाँ के बहुतेरे वकील-बैरिस्टर शनिवार और रविवार को लंदन से बाहर चले जाते हैं। मिस्टर अपजौन बिला नागा प्रत्येक शुक्रवार को संध्या को इजलास से उठकर सीधे स्टेशन जाते थे। वहां से रेल द्वारा लंदन से प्रायः 70 मील की दूरी पर अपने गाँव के घर में जाकर रहा करते थे। फिर रविवार की संध्या को लंदन चले जाते थे। सप्ताह के अन्तिम दो दिनों को हमेशा गांव की खुली हवा में ही बिताते थे। हम लोगों की अच्छा थी कि जब तक यह मुकद्दमा पेशी में रहे, वह लंदन में रहें। हम समझते थे कि सनीचर-इतवार को ही दूसरे पक्ष की बहसवाली और अपनी बातें उनसे कहने का मौका मिल सकेगा; क्योंकि और दिनों तो सारा समय इजलास पर ही लग जाएगा।

उनसे कहा गया कि आप सनीचर-इतवार को लंदन में ही रहें और उन दिनों के लिए भी वैसे ही फीस ले लें जैसे पेशी के दिन लेते हैं। उन्होंने इसे मंजूर नहीं किया। फीस की लालच भी उन्हें अपने इस नियम से न हटा सकी। अन्त में बहुत ज़िद करने पर उन्होंने कहा कि सप्ताह के ये दो दिन यदि मैं गाँव की खुली हवा में न बिताऊँ तो सप्ताह के बाकी पाँच दिन मैं काम के लायक नहीं रहूँगा—क्या तुम समझते हो मैं यदि यह नियम न रखता तो आज इस उम्र में इतना काम कर सकता था? मवक्किल को समझा दो कि यहाँ रहने से मैं उनका काम बिगाडूँगा, बनाऊँगा नहीं, इसलिए वह जिद्द छोड़ दें। हम लोग भी उनकी बात समझ गये। यदि हमारे देश के लोग भी इस तरह समय का उपयोग

करते और स्वास्थ्य का ख़याल रखते, तो हमारी जिन्दगी कुछ लंबी हो जाती और हम काम भी अधिक कर सकते।

हम लोगों का, ख़ासकर हमारे बड़े-बड़े बैरिस्टरों का, ख़याल था कि हमारा मुकद्दमा मज़बूत है, हम ज़रूर जीतेंगे। मिस्टर अपजौन का कहना था कि हमको शायद बहुत जवाब देने की भी ज़रूरत नहीं पड़ेगी। मुकद्दमे की बहस 20–22 दिनों तक दूसरे पक्ष की ओर से चली। अभी शायद एक-डेढ़ महीने तक और उधर की ही बहस चलती। इसी बीच में कचहरी प्रायः तीन महीनों के लिए बन्द होने जा रही थी। इसका नतीजा यह होता कि मुकद्दमे की पेशी फिर अक्टूबर में होती और शायद दिसम्बर तक चली जाती।

उन दिनों सर्दी काफ़ी पड़ेगी और हममें से बहुतेरे उसे सह न सकेंगे; ख़ासकर मैं तो उस सर्दी को बर्दाश्त कर ही नहीं सकता था। बाबू हरिजी इससे बहुत घबराये। एक मौका मिला तो किसी दूसरे से बिना पूछे ही सुलह की बात तक कर ली। वह जानते थे कि वकील-बैरिस्टर सुलह करने की बात पसन्द नहीं करेंगे; क्योंकि वे तो मुकद्दमा जीतने में दृढ़ आशावान थे। तब भी, खर्च बचाने और जाड़े की दिक्कतों से बचने के लिए, बहुत नुकसान उठाकर, उन्होंने सुलह कर ली। सब बातें तय कर लेने पर, लिखकर दाख़िल करने के समय, उन्होंने ये बातें सबसे कहीं। दूसरे को अब कुछ कहना नहीं था। सुलहनामा पेश हो गया। मुकद्दमा अचानक एक दिन, जुलाई के अन्तिम सप्ताह में, समाप्त हो गया। हम सबको छुट्टी मिल गयी।

मिस्टर अपजौन मुकद्दमे की बातें छोड़ कभी दूसरी बातें नहीं करते थे। उनके साथ मेरा इतना काम पड़ा कि उन्होंने मेरे सम्बन्ध में कुछ जानने की इच्छा से श्री कुँवरबहादुर से कुछ बातें पूछीं। उनको यह मालूम हो गया कि अब वकालत छोड़कर मैं गांधीजी के साथ काम

करता हूँ। इससे उनको आश्चर्य हुआ। एक दिन मुझसे पूछा भी। यह भी कहा कि गांधीजी उनके मवक्किल रहे हैं! जलियाँवालाबाग के हत्या-काण्ड के लिए जेनरल डायर पर मुकद्दमा चलाने के सम्बन्ध में उनसे राय ली गयी थी। उन्होंने राय दी भी थी।

मैंने उनसे कहा कि गांधीजी डायर पर मुकद्दमा चलाने के विरुद्ध थे, हो सकता है कि पं० मोतीलालजी और देशबन्धु दास ने आपकी राय मँगवायी हो। इसपर उन्होंने कहा, मैंने समझा कि कांग्रेस की ओर से गांधी ने ही मेरी राय मँगवायी है। उस समय तक मैं खुद भी नहीं जानता था कि हत्याकाण्ड का मामला इस हद तक पहुँचा है और विलायत के बैरिस्टर से राय ली गयी है। मेरे सम्बन्ध में उन्होंने इतना ही कहा, तुमको वकालत नहीं छोड़नी चाहिए, इस सम्बन्ध में मुकद्दमा खतम होने पर एक दिन बातें करूँगा। लेकिन मुकद्दमा तो अचानक समाप्त हो गया और मुझे बहुत जल्दीबाज़ी में लंदन छोड़ देना पड़ा; इसलिए उनसे फिर बातें न हुई।

28. एक घरेलू घटना

1929 का मेरा अधिक समय विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार में लगा, जिसका रचनात्मक रूप खादी की उत्पत्ति होता है। इसके अलावा जमशेदपुर के मामले ने भी कुछ समय लिया। खादी के काम की देखभाल के लिए मैं मधुवनी में, जहाँ अब चर्खा-संघ का मुख्य केन्द्र और प्रान्तीय दफ्तर हो गया था, कुछ दिनों ठहरा रहा। काम को आगे बढ़ाने
कर्ताओं से परामर्श किया। वहीं मुझे तार मिला कि मेरे भतीजा जनार्दन के एक पुत्र पैदा हुआ है। स्वभावतः भाईसाहब को खुशी हुई और हम सब खुश थे। पुरानी रीति के अनुसार भाई साहब ने मित्रों के अनुरोध से इस खुशी में कुछ खर्च भी कर दिया। नाच-तमाशे के दिन तो नहीं थे; क्योंकि उन्होंने व्रत ले लिया था कि शादी-ब्याह में भी नाच

वग़ैरह नहीं कराएँगे। इसलिए, इस मौक़े पर भी नाच वग़ैरह तो नहीं हुए; परन्तु पूजा-पाठ हुआ। अपने नौकरों और सरोकारियों को कपड़े वग़ैरह उन्होंने खूब बाँटे। मैं भी उत्सव में छपरे गया। सब लोग बहुत खुशियाँ मना रहे थे। यहाँ यह सब इसलिए लिखना पड़ा कि इसका अन्त बहुत दुःखद हुआ।

बच्चा बहुत सुन्दर और होनहार निकला। हम दोनों भाई उसे बहुत प्यार करते थे; क्योंकि उन दिनों घर में वही एक लड़का था। 1929 के दिसम्बर में बीमार पड़कर मैं दिसम्बर और जनवरी में अपने गाँव जीरादेई में कुछ दिनों तक रहा। बच्चा वहीं था। उसको खेलाने और उसके साथ खेलने का सुअवसर मिला। कलकत्ते के श्री सतीशचन्द्र मुखर्जी भी प्रायः एक महीने तक मेरे साथ वहीं ठहरे थे। रोज़-रोज़ के लाड़-प्यार से लड़के के साथ बहुत स्नेह हो गया। वह जैसे-जैसे बढ़ता गया, स्नेह भी घना होता गया। पर जब वह पाँच साल से कुछ अधिक का हुआ तो भाई साहब की मृत्यु के दो महीने बाद वह भी पटने में टाइफ़ाइड से पीड़ित होकर जाता रहा।

मैं पटने में ही था। यथासाध्य डाक्टरों ने भी उसे बचाने की चेष्टा की, पर वह सब निष्फल हुई। अब भी जब उसकी स्मृति आ जाती है, चित्त विह्वल हो जाता है, मैं अपने को मुश्किल से सँभाल पाता हूँ। इसलिए, जब 1941 में मेरे बड़े लड़के मृत्युञ्जय के पुत्र हुआ तो मैंने सख़्ती से रोक दिया कि इसके जन्म के कारण किसी प्रकार का उत्सव मनाया जाय। मैंने आज तक अपने दिल में बैठे हुए इस कारण को कभी किसीसे कहा नहीं, आज ही पहले-पहल इसे यहाँ लिख रहा हूँ।

अस्तु। इस समय हिन्दुस्तान के बड़े लाट लार्ड इर्विन थे। वह छुट्टी लेकर कुछ दिनों के लिए इंग्लैंड गये। वहाँ पर हिन्दुस्तान की परिस्थिति के सम्बन्ध में उन्होंने बातें कीं। इस समय वहाँ भी मज़दूर-

दल का मंत्रिमंडल बना था। श्री रामजे मैकडोनल्ड प्रधान मंत्री और श्री वेजवुडवेन भारत मंत्री थे। लार्ड इर्विन ने वहाँ से लौटकर ब्रिटिश सरकार की ओर से एक घोषणा की। उसमें उन्होंने कहा कि जो घोषणाएँ ब्रिटिश-सरकार की ओर से हो चुकी हैं उनमें भारत के लिए औपनिवेशिक स्वराज्य निहित है। शायद उन्होंने यह भी कहा कि इस विषय पर विचार करने के लिए एक गोलमेज़ कान्फ्रेन्स लंदन में की जायगी। यह घोषणा यहाँ की परिस्थिति देखकर की गयी थी।

साइमन-कमीशन का बहिष्कार भारत के सभी दलों ने किया था। उसके विरुद्ध प्रदर्शनों पर लाठियाँ चली थीं। देश के कई मान्य लोग भी घायल हुए थे। सारे देश में हलचल थी। उसमें लाहौर-षड्यंत्र के अभियुक्तों की भूखहड़ताल ने और भी जान डाल दी थी। विदेशीवस्त्र-बहिष्कार का प्रचार ज़ोर पकड़ता जा रहा था। कलकत्ता-कांग्रेस ने प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया था कि 1929 के भीतर यदि औपनिवेशिक स्वराज्य न मिला तो कांग्रेस पूर्ण स्वतंत्रता को अपना ध्येय बना लेगी।

कांग्रेस के लोगों ने उसे कलकत्ता-कांग्रेस की मांग की पूर्ति करनेवाली घोषणा नहीं समझी। इसका खुलासा पीछे हुआ तो मालूम हो गया कि कांग्रेस का सन्देह बिलकुल ठीक था और दूसरों ने अपनी इच्छा के अनुसार अर्थ निकाला था जो शब्दों से नहीं निकल सकता था।

ठीक लाहौर-कांग्रेस के पहले गांधीजी और पंडित मोतीलाल नेहरू लार्ड इर्विन से मिले। उन्होंने वायसराय से इसका अर्थ पूछा तो मालूम हुआ कि जो उन लोगों ने समझा था वही ठीक था, दूसरों ने मनमाना अर्थ निकाला था। अभी औपनिवेशिक स्वराज्य दूर था। जो उसे आया हुआ समझे हुए थे, उन्होंने श्री वेजवुडबेन के उस भाषण को, जिसमें उन्होंने कहा था कि औपनिवेशिक स्वराज्य जो वास्तव में काम कर रहा है (Dominion Status in action), वाक्चातुरी न समझकर शाब्दिक अर्थ लगाने में भूल की थी। यह हमारे लिए इस बात की चेतावनी

निकली कि ब्रिटिश गवर्नमेन्ट की घोषणाओं को खूब बारीकी के साथ देखना चाहिए, उनसे मनमाना अर्थ नहीं निकालना चाहिए। इस चेतावनी के लिए हमें उनका अनुगृहीत होना चाहिए।

लाहौर-कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति को कांग्रेस का ध्येय बना दिया था। साथ ही, उसने इसके लिए सत्याग्रह करने का आदेश भी दिया था। प्रायः पिछले दो बरसों से जो नयी जागृति दीख रही थी उसीका यह फल था। कांग्रेस के अधिवेशन के थोड़े ही दिनों के बाद वर्किंग कमिटी ने सारे देश को आदेश दिया कि तारीख 26 जनवरी को स्वतंत्रता-दिवस मनाया जाय। उस दिन उस साल रविवार था। एक सुन्दर ओजस्वी वक्तव्य निकाला गया, जिसमें देश की स्थिति और स्वराज्य-प्राप्ति की प्रतिज्ञा थी। आदेश था कि सभी जगहों में बड़ी-बड़ी सभाएँ करके उपस्थित लोगों से वही घोषणा दुहराई जाय; भिन्न-भिन्न प्रान्त के लोग अपनी-अपनी प्रान्तीय भाषा में भाषान्तर करा लें और ऐसा प्रबन्ध करें कि जनता उसे समझकर दुहरावे; कोई दूसरा भाषण उस अवसर पर न किया जाय, केवल घोषणा ही दुहरायी जाय; ये सभाएँ दोपहर के समय हों, सबेरे जहाँ हो सके वहाँ राष्ट्रीय झण्डे का अभिवादन किया जाय; यही कार्यक्रम सारे देश में मनाया जाय।

मैं उस समय तक घर पर ही आराम कर रहा था। उसी दिन पहले-पहल घर से बाहर निकलने का निश्चय किया। आस-पास की कई जगहों से लोगों का आग्रह हुआ कि मैं वहाँ सभा में चलूँ। यदि सभाएँ एक ही समय पर न होने को हों तो मैं दिन-भर में कई सभाओं में शामिल हो सकता; पर ऐसा नहीं करता था। इसलिये मैं मोटर पर गया। आधा घंटा आगे-पीछे दो जगहों की सभाओं में शरीक होने-का विचार किया—एक तो गाँव में होनेवाली थी, दूसरी 'सीवान' शहर में। गाँव की सभा करके जब सीवान जा रहा था, मोटर बिगड़ गयी! मालूम हुआ कि सीवान न पहुँच सकूँगा। पर कृपा करके पुलिसवालों ने अपनी

गाड़ी पर स्थान दे दिया। मैं ठीक समय पर सीवान पहुँच गया। वहाँ भी एक बड़ी सभा में एकत्र हुई एकचित्त जनता से उस प्रतिज्ञापत्र को दुहरवा सका।

महात्मा गांधी उन दिनों साबरमती के सत्याग्रह-आश्रम में रहते थे। वहाँ वर्किंग कमिटी की बैठक हुई। उसमें उन्होंने सत्याग्रह आरंभ करने की बात कही। इस विषय पर बहुत बातचीत होती रही कि देश अभी तैयार है या नहीं। बहुतेरे लोगों का विचार था कि अभी कुछ और तैयारी कर लेनी चाहिए। पर महात्माजी तथा जवाहरलालजी बहुत ही उत्सुक थे। इस बात पर भी बहुत बहस होती रही कि कौन-सा कानून तोड़ा जाय। महात्माजी का दृढ़ विचार था कि आरम्भ तो नमक-क़ानून से ही किया जाय। उनका कहना था कि इस क़ानून के कारण नमक पर 'कर' लगता है—गरीबों को जो नमक मुफ्त मिल सकता है, अथवा बहुत कम दाम में मिल सकता है, वह महँगा मिलता है—बहुत-से गरीब इस कारण से उतना नमक नहीं खा सकते जितना उनके स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है—नमक हमारे खाद्य पदार्थों में एक अत्यन्त आवश्यक वस्तु है, यह समुद्र के किनारे जमा करने से ही मुफ्त में मिल सकता है, दूसरी जगहों में भी मिट्टी से बनाया जाता है, जहाँ नमक का पहाड़ है वहाँ भी लोग खोद कर बिना दाम के निकाल सकते हैं, पर गवर्नमेण्ट केवल 'कर' प्राप्त करने के लिए इसके जमा करने पर प्रतिबन्ध लगाती है, ईश्वर ने जल और वायु की ही तरह नमक भी मुफ्त बाँटने का प्रबन्ध किया है। मगर सरकार लेने नहीं देती। इसलिए गाँधीजी का विचार था कि इससे खराब दूसरा 'कर' नहीं हो सकता, इसके विरुद्ध सत्याग्रह करने की बात गरीब भी आसानी से समझ लेंगे, संसार के लोग भी मान लेंगे कि यह न्याय है।

ये बातें हम लोग ठीक समझ नहीं पाते थे। हमारे सामने कई दिक्कतें थीं। हममें से बहुतेरे यह नहीं समझ पाते थे कि सरकार पर

ज़ोर डाले बिना हम उसे मजबूर कैसे कर सकेंगे। साथ ही इससे भी अधिक अड़चन इस बात की मालूम होती थी कि नमक का क़ानून तोड़ेंगे तो कैसे। जो समुद्र के किनारे रहते हैं वे तो वहाँ किनारे पर सरकारी आज्ञा के विरुद्ध नमक जमा करके अथवा नमकीन पानी गर्म करके क़ानून भंग कर सकते हैं। परन्तु भारत की अधिकांश जनता जो समुद्र के किनारे नहीं रहती, कैसे क़ानून तोड़ेगी? हाँ, बहुत जगहों में, खासकर बिहार और युक्तप्रान्त में, मिट्टी से नमक बनाया जाया करता था। एक जाति 'नोनिया' होती है जो यही काम किया करती थी। अब जब से विदेशी या देशी नमक सभी जगहों पर, समुद्र के किनारे से अथवा खेवड़ा से, पहुँचने लगा है तब से उनका रोज़गार ही बन्द हो गया है। वहाँ पर यदि सरकारी आज्ञा के विरुद्ध नमक बनाया जाय तो क़ानून-भंग हो सकता था। पर क्या इस तरह नमक बनाने में साधारण लोगों का उत्साह होगा? क्या पढ़े-लिखे लोग इसमें दिलचस्पी लेंगे? केवल 'नोनिया' ही इस काम को सफलता-पूर्वक कर सकते हैं। पर वे गरीब और अशिक्षित हैं। उनसे इसकी आशा करना ठीक नहीं जँचता। उनको प्रोत्साहन देकर क़ानून तोड़वाना भी न्याययुक्त नहीं मालूम होता। ये सब बातें गांधीजी से कही गयीं। पर उनका निश्चय अटल रहा कि नमक-क़ानून ही तोड़ना चाहिए, इसमें जनता उत्साह से भाग लेगी, यही चीज़ सारे देश में चल सकेगी।

29. डाण्डी-यात्रा

वर्किंग कमिटी की बैठक के बाद गांधीजी ने अपने लिए एक तिथि मुकर्रर कर दी। उसी दिन वह आश्रम से निकल पड़ेंगे। प्रायः एक महीना तक पैदल चलकर, सूरत-ज़िले के 'डाण्डी' नामक गाँव में, समुद्र के किनारे पहुँचेंगे। वहीं वह पहले-पहल नमक-क़ानून खुद तोड़ेंगे। इस निश्चय को मंजूर कराने के लिए अखिल भारतीय कमिटी की बैठक साबरमती में की गयी। यह बैठक तो हुई; पर उस समय तक महात्माजी

डाण्डी-यात्रा के लिये निकल चुके थे। इसलिये वर्किंग कमिटी के निश्चय को ही अखिल भारतीय कमिटी ने मंजूर कर लिया।

डाण्डी-यात्रा के पहले, जो एक प्रकार से सत्याग्रह का आरम्भ था, गांधीजी ने अपने नियम के अनुसार एक पत्र बड़े लाट को लिख भेजा। उसमें उन्होंने सभी बातें बता दीं। सत्याग्रह के आरम्भ की बात भी लिख दी। यह पत्र उन्होंने एक अंग्रेज़ सज्जन के हाथ भेजा। उनका नाम मिस्टर रेनाल्ड्स था। उस समय वह साबरमती में रहते थे। किन्तु, जैसा सोचा गया था, कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं आया। यात्रा आरम्भ करते समय उन्होंने कांग्रेस-कमिटियों और कांग्रेसी लोगों को मना कर दिया कि जब तक मैं आदेश न दूँ, तब तक कोई सत्याग्रह न करे—यदि सरकारी आज्ञाएँ बुरी भी लगें, तो भी उन्हें मानना ही चाहिए।

इरादा था कि तारीख 6 अप्रैल तक वह डाण्डी पहुँच जायेंगे और उसी दिन स्वयं सबसे पहले सत्याग्रह करेंगे। सत्याग्रह-आश्रम के 80 या 81 आदमियों को उन्होंने यात्रा में अपने साथ लिया। क्रम यह था कि सवेरे कुछ दूर तक जाना होता था। दोपहर को किसी निश्चित स्थान में स्नान, भोजन और विश्राम किया जाता था। फ़िर से दोपहर को कुछ दूर जाया जाता। संध्या को कहीं डेरा पड़ जाता। वहीं रात का विश्राम होता। फिर दूसरे दिन सवेरे वही क्रम शुरू होता। यह यात्रा प्राय: एक महीने की हुई। बीच में बहुतेरे गाँव और कुछ शहर भी मिले। प्राय: 150 मील की यात्रा थी। प्राय: 12-13 मील रोज चलना पड़ा था। जिस दिन गांधीजी साबरमती से निकले उस दिन आश्रम पर रात-भर बहुत भीड़ लगी रही। सवेरे हजारों आदमियों के जयजयकार के बीच होकर गांधीजी और उनके साथी निकले। उन लोगों के पास अपनी-अपनी झोली में उनके आवश्यक सामान थे। बड़ा ही उत्साह था। देखने से मालूम होता था मानों सारा अहमदाबाद और वहाँ का इलाका उमड़ आया है।

गांधीजी ने यह भी घोषणा कर दी कि स्वाराज्य के बिना वह अब फिर साबरमती आश्रम में नहीं लौटेंगे। यात्रा का पूरा विवरण समाचारपत्रों में छपता रहा। इसका असर सारे देश पर जादू के जैसा पड़ता रहा। सभी जगह लोग बहुत आतुर होकर 6 अप्रैल की बाट जोह रहे थे। लोग चाहते थे कि हमको भी सत्याग्रह का सुअवसर मिले। कांग्रेस के लोग बैठे नहीं थे। वे भी बड़े ज़ोरों से चारों ओर प्रचार के काम में लगे थे। गांधीजी जैसे-जैसे बढ़ते गये, देश का उत्साह भी बढ़ता ही गया। सरदार वल्लभभाई यात्रा का आरंभ होने के पहले ही गिरफ्तार कर लिये गये थे। इसलिए वह यात्रा में अथवा उसके बाद आरंभ होनेवाले सत्याग्रह में शरीक नहीं हुए।

इस बीच में अखिल भारतीय कमिटी की बैठक अहमदाबाद में हुई। वहाँ से पंडित मोतीलाल, पं० जवाहरलाल प्रभृति के साथ हम लोग जम्बूसर तक गये। वहीं गांधीजी से मुलाकात हुई। हम लोग भी उनके साथ कुछ दूर तक गये। फिर अपने-अपने स्थान को लौट आये। मैंने बिहार में आकर सब जगह के लोगों को आदेश दे दिया कि जब तक गांधीजी का हुक्म न निकले, कोई सत्याग्रह न करे। पंडित जवाहरलालजी से चार-पाँच दिनों के लिए बिहार में दौरा करने का आग्रह किया गया। वह प्रसन्नतापूर्वक राज़ी हो गये। हमारी इच्छा थी कि जो थोड़ा समय मिलता है उसमें अधिक से अधिक स्थानों में सभाएँ हो जाएँ और अधिक लोगों को उनके ओजस्वी भाषण सुनने का सुअवसर मिल जाय। इसलिए पहले से कार्यक्रम बना दिया गया। जहाँ-जहाँ सभा होनेवाली थी, ठीक समय पर लोगों को इकट्ठे होकर इन्तज़ार करने को कहा गया। मुझे याद नहीं है कि वह कहाँ-कहाँ और किन जिलों में गये, पर कार्यक्रम मैंने ऐसा बनाया कि सभाओं में कम से कम समय लगे। तीन मोटरें साथ थीं। पहली मोटर में कुछ ऐसे लोग थे जो आगे जाकर सभा में राष्ट्रीय गान विगैरह गाकर शान्ति करा देते। जब सब लोग अपने-अपने स्थान पर बैठ जाते, मैं दूसरी मोटर से पहुँच जाता।

जब तक पंडित जवाहरलालजी तीसरी मोटर से नहीं पहुँच जाते, तब तक मुझे जो कुछ कहना होता सो कह देता। मेरे पहुँचने पर पहली गाड़ी आगे बढ़ जाती। पंडितजी के पहुँचने पर मैं दूसरी गाड़ी पर अगली सभा के लिये रवाना हो जाता। इस प्रकार किसी को किसी दूसरे के भाषण के लिये इन्तज़ार न करना पड़ता। वह समय भी नष्ट न होता जो सभा में पहुँच कर लोगों को शान्त करने और उनके उत्साह को सँभालने में लगता है; क्योंकि यह काम तो पहले ही हो चुकता। पंडितजी की यह यात्रा बहुत सफ़ल रही। इससे सारे सूबे में, जहाँ पंडितजी नहीं भी जा सके, पूरा उत्साह उमड़ आया।

नेहरूजी की यात्रा का अन्तिम दिन था। वह प्रयाग चले जानेवाले थे। मुझे जहाँ तक याद है, यह अन्तिम सभा छपरा-ज़िले के महाराजगंज कस्बे में संध्या के समय हुई थी। वहीं पर तार द्वारा या समाचारपत्रों से पता मिला कि 6 अप्रैल से सब लोग अपने-अपने स्थान पर सत्याग्रह का आरम्भ कर सकते हैं, गांधीजी का यही आदेश है। इस सूचना ने एक प्रकार से हमारे कार्यक्रम को गड़बड़ा दिया। हमने अभी निश्चिय नहीं किया था कि कौन कहाँ से सत्याग्रह आरम्भ करेगा। सभी जगहों में रातोंरात ख़बर दे दी गयी। चम्पारन के लोगों ने पहले से सोच रखा था कि बिपिन बाबू मोतीहारी से पैदल चलकर, सात-आठ दिनों की यात्रा के बाद, जोगापट्टी के पास पहुँच सत्याग्रह आरम्भ करेंगे। उन्होंने 6 अप्रैल को ही यात्रा आरम्भ कर दी। मुजफ्फरपुर-ज़िले में भी ऐसा ही हुआ। दो-चार दिनों के अन्दर ही सभी जगहों में नमक-क़ानून टूटने लगा। जिस दिन विपिन बाबू ने नमक बनाया, मैं वहाँ पहुँच गया। पर मेरे पहुँचने के पहले ही वह गिरफ्तार कर लिये गये थे। वहीं एक बग़ीचे में मजिस्ट्रेट ने कचहरी लगा दी और चटपट मुकद्दमा देखकर उनको सजा भी दे दी। मैं रास्ते में मोटर से उन स्थानों को देखता गया जहाँ-जहाँ सत्याग्रही यात्री लोग ठहरे थे। ज़िले का प्रायः एक आधा हिस्सा. लम्बाई में, इस यात्रा

में पड़ गया था। आरम्भ से अन्त तक, सारे रास्ते में, सड़कों पर अनगिनत मेहराब-तोरण-पताका इत्यादि लोगों ने लगाया था। अभूतपूर्व उत्साह का प्रदर्शन था ! जहाँ क़ानून तोड़ा गया था वहाँ के लोगों के उत्साह का तो ठिकाना न था।

मजिस्ट्रेट एक ऐसे सज्जन थे, जिन्होंने 1921 में पटना-कालेज से असहयोग करके कुछ दिनों तक हमारे राष्ट्रीय महाविद्यालय में निवास किया था। अपने घरवालों के ज़ोर देने पर वापस चले गये थे। पढ़ने में वह तेज थे। पुनः कालेज की परीक्षा पास कर शीघ्र ही डिप्टी मजिस्ट्रेट हो गये। 8-10 बरसों की नौकरी के बाद इस दर्जे पर पहुँचे थे। मैंने देखा कि मुकद्दमे की सुनवाई के समय जब तक इजलास लगा रहा, उन्होंने एक बार भी सिर न उठाया। सिर नीचा किये ही जो कुछ लिखना था लिखा और उसी तरह हुकुम भी सुना दिया। वहाँ से विपिन बाबू को मोटर पर मोतीहारी-जेल ले आये।

मैं भी अपनी गाड़ी पर मोतीहारी तक आकर पटने के लिए या किसी अन्य स्थान के लिए रवाना हो गया। उधर गांधीजी ने नमक जमा किया, पर सरकार ने उनको पकड़ा नहीं। सारे देश में अनगिनत स्थानों पर लोग नमक बनाने लगे। गिरफ्तारियाँ होने लगीं। अपने लिए मैंने यह कार्यक्रम बना लिया कि सभी ज़िलों में दौरा करके सत्याग्रहियों को उत्साहित करूँ। एक-दो दिनों के भीतर सारे ज़िले में दौड़ जाता। जहाँ-जहाँ नमक बना होता अथवा बनने की तैयारियाँ होतीं, सत्याग्रहियों से जाकर मिल लेता। जहाँ तक हो सकता, सार्वजनिक सभाएँ भी कर लेता।

मैं दो-चार दिनों के अन्दर ही, आधी रात को पहुँचनेवाले स्टीमर से, पटना पहुँचा। वहाँ गंगा-घाट पर ही लोगों ने कहा कि पटना-शहर में उस दिन सत्याग्रह आरंभ किया गया है। उसका रूप यह था कि कुछ

सत्याग्रही बाकरगंज मुहल्ले से निकलकर झंडा लिये शहर में जा रहे थे जहाँ वे नमक बनानेवाले थे। जब वे मुलतानगंज थाने के सामने पहुँचे तो पुलिस ने उन्हें रोक लिया। अभी तक उनका कसूर इतना ही था कि वे झंडा लेकर, पाँच-सात आदमियों का जुलूस बनाकर, सड़क से जा रहे थे। वे गिरफ्तार भी नहीं किये गये थे; पर पुलिस के सिपाहियों ने कतार बाँध कर उनका रास्ता रोक लिया था। वे दिन-भर वहीं खड़े रहे। रात को भी वहीं सड़क पर ही सो गये थे।

मैं सीधे उस स्थान पर गया। देखा कि सिपाही सड़क रोके खड़े और सत्याग्रही खुशी से बीच सड़क पर सोये हैं। उनके सोने के लिए मुहल्ले के लोगों ने बिस्तरे भी दे दिये थे, समय पर उनको भोजन भी करा दिया था। मेरे जाने पर वे उठे। मुझसे बहुत प्रेमपूर्वक मिले। रात को तो कुछ होनेवाला न था, मैं सदाकत-आश्रम चला गया। दूसरे दिन खूब सवेरे ही फिर उस स्थान पर पहुँचा। मैं तो सारे सूबे का चक्कर लगाया करता था और आश्रम में बैठे-बैठे श्री ब्रजकिशोर बाबू सभी जगहों में आवश्यकतानुसार आदेश तथा सहायता भेजा करते थे। इस बार अभी तक कांग्रेस कमिटी ग़ैरक़ानूनी नहीं करार दी गयी थी और न सदाकत-आश्रम ही जब्त हुआ था। इसलिए यह काम वहाँ से चलता रहा। गिरफ्तारियाँ भी उन्हीं लोगों की होतीं जो नमक बनाते, और सबकी नहीं।

दूसरे दिन सवेरे वहाँ पुलिस की भीड़ बहुत थी। घुड़सवार भी आ गये थे। सुना कि डिस्ट्रिक्क मजिस्ट्रेट और पुलिस-सुपरिण्टेण्डेट भी थाने में मौजूद हैं। इधर जनता की भीड़ भी बढ़ने लगी। मैंने समझा कि सत्याग्रही या तो गिरफ्तार कर लिये जाएँगे या मारपीट कर छोड़ दिये जाएँगे। मुझसे एक आदमी ने आकर कहा कि डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मुझे थाने पर बुलाते हैं। मैं वहाँ गया। उन्होंने मुझसे कहा कि सत्याग्रहियों को मैं हटा लूँ, नहीं तो उनको कार्रवाई करनी पड़ेगी। मैंने कहा, आप उन्हें गिरफ्तार कर सकते हैं। उन्होंने कहा कि वह

भीड़ को भी हटावेंगे और ऐसा करने में उनको सख्त कार्रवाई करनी पड़ सकती है। मैंने स्वयंसेवकों को हटाने से इनकार कर दिया। इसपर उन्होंने मुझसे कहा इसकी जवाबदेही मेरे ऊपर रहेगी और वह मुनासिब कार्रवाई करेंगे। मैंने समझा कि हो सकता है, वह लाठी या गोली भी चलवावें। मैंने बेहतर समझा कि और साथियों से सलाह कर लूँ। यह मैंने उनसे कहा। उन्होंने कहा कि इसके लिए वह आध घंटे का समय देंगे। जब मैं चलने लगा तो उन्होंने अपनी घड़ी निकाली और कहा कि मैं अपनी घड़ी उनकी घड़ी से मिला लूँ। यह मुझे बुरा मालूम हुआ। मैंने कह दिया कि मैं इसकी जरूरत नहीं समझता। वह अपनी घड़ी देखते रहे। मैंने यह भी कह दिया, यदि आध घंटे के भीतर मैं उनके सन्तोष के योग्य उत्तर न दूँ तो वह जो मुनासिब समझें करें। मैं सीधे मोटर पर सदाकत-आश्रम गया। सबकी राय हुई कि हम कुछ नहीं कर सकते, मजिस्ट्रेट जो चाहें करें। मैंने तुरन्त टेलीफ़ोन द्वारा सुलतानगंज थाने में यही उत्तर दे दिया। फिर यह समझकर कि अब वहाँ कुछ न कुछ होगा, मैं जल्दी से मोटर पर वहाँ के लिए रवाना हुआ।

रास्ते में, बाकरगंज में, उधर से मजिस्ट्रेट को मोटर पर लौटते देखा। उन्होंने भी मुझे देखा। मुसकुराते हुए वह आगे बढ़ गये। मैंने समझा कि वहाँ कुछ कार्रवाई करके वह लौट रहे हैं। वहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ कि उन्होंने पहले सत्याग्रहियों को चले जाने की आज्ञा दी, जब वे नहीं हटे तो कुछ दूरी पर खड़े घुड़सवारों को घोड़े दौड़ाने की आज्ञा दे दी। जब घोड़े चले तो लड़के सड़क पर लेट गये। इस तरह रास्ते को उन्होंने रोक लिया। घोड़े वहाँ तक दौड़ते आये, पर उनके पास पहुँचकर रुक गये। तब वे लड़के उठा-उठाकर एक मोटर-लारी में रख दिये गये। इस प्रकार गिरफ्तार कर वे हटा दिये गये।

अब, हमने निश्चय कर लिया कि सत्याग्रही पाँच-पाँच का जलूस बनाकर दिन-भर वहाँ जाते रहे। जब एक जत्था गिरफ्तार हो जाय तो

दूसरा चले। ऐसा ही दिन-रात हो। अप्रैल का महीना आधा से अधिक बीत चुका था। गर्मी काफ़ी पड़ रही थी। हमारे सत्याग्रहियों को भी लू लगती थी। पुलिसवाले तो दिन-रात खड़े रहते ही थे। एक-दो दिन तक इस तरह चला। तब मैंने तरीक़े में कुछ परिवर्तन कर दिया। दिन-रात गिरफ़्तारी का इन्तज़ार न कर दिया गया। दिन-रात में चार या पाँच जत्थे नियत समय पर जाते। वे शुरू में तो गिरफ़्तार कर लिये जाते, पर पीछे जब दर्शकों की बहुत भीड़ जुटने लगी तो घुड़सवार घोड़े दौड़ाते और लोगों को डंडों से पीटते। सत्याग्रही तो इस धक्कमधुक्की में कभी गिरफ़्तार होते, कभी नहीं भी होते; पर जनता पर ख़ूब मार पड़ती। यह विशेषकर सुबह और दोपहर के समय, जब जत्था जाता तभी, हुआ करता। मैं भी समय पर पहुँच जाया करता और जनता की भीड़ में रहकर सब देखा करता। शायद पुलिसवाले मुझे पहचानते थे, इसलिए मुझे कभी चोट न लगी। पर प्रोफ़ेसर अब्दुल बारी को बहुत चोट लगी थी।

यह सिलसिला कई दिनों तक चलता। रोज़ भीड़ बढ़ती गयी। मोर्चे का स्थान सुलतानगंज थाने से पश्चिम की ओर हटता-हटता पटना-कालेज के सामने तक आ गया। हमारे आदमी और साधारण जन भी बराबर शान्ति बनाये रखते। जो मारपीट होती, पुलिस की ओर से ही। एक दिन का जिक्र है, मिस्टर सैयद हसन इमाम की बीबी ने कहीं से आते समय पुलिस को मारपीट करते देखा। कई आदमियों के सिर फूट गये थे। इसका उनके दिल पर बहुत असर हुआ। उन्होंने जाकर हसन इमाम साहब से कहा कि बहुत खूनखराबा होने की सम्भावना है। उस समय तक मुझे मालूम नहीं था कि हसन इमाम साहब इस बात में कुछ दिलचस्पी ले रहे हैं। इस सम्बन्ध में मैं उनसे मिला न था और न उनसे कुछ बातें करने का मुझे मौका ही मिला था। अपनी बीबी की बात सुनकर उन्होंने मुझे तुरन्त टेलीफ़ोन से बुलाया। मैंने सब बातें ब्यौरे से कह सुनायीं। वह बहुत भावुक सज्जन थे। सब बातें सुनकर उनको भी

क्रोध हो आया। वह आवेश में आ गये। उन्होंने कहा कि पूरी मदद करेंगे। यह उत्साह उनका बढ़ता गया। यह मैं फिर आगे बताऊँगा।

इसी बीच ईस्टर की छुट्टी आ गयी। मैं इस सत्याग्रह को धार्मिक युद्ध समझता था। मैंने सोचा कि यह यदि धार्मिक चीज़ है तो इसके द्वारा किसीको अपने धर्मपालन में बाधा न पहुँचनी चाहिए। मैंने डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट को एक पत्र लिख दिया कि पुलिस-कर्मचारियों में कुछ क्रिस्तान भी हैं जो ईस्टर में कुछ धार्मिक क्रिया करते होंगे, इसलिए सोमवार को जत्था नहीं जायगा, फिर मंगलवार से नियमानुकूल जत्थे जाया करेंगे। शुक्रवार को भी दोपहर के समय जाने के लिए जत्था मुकर्रर था, उसको मैंने रोक दिया; क्योंकि घुड़सवारों में अधिक मुसलमान ही थे। मैंने यह पत्र सच्चे दिल से लिखा था। डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट ने पत्र पढ़ने पर टेलीफ़ोन द्वारा मुझसे पूछा कि मैंने जो लिखा है वह सचमुच धार्मिक ख़याल से ही लिखा है। मैंने कह दिया कि वास्तव में सच्चे दिल से ही लिखा है। इसपर उन्होंने कहा कि मैं उनसे मिलूं, वह विचार करेंगे कि यह झगड़ा किस तरह सुलझ सकता है।

दूसरे ही दिन, सोमवार था, मैं गया। बहुत देर तक बातें हुईं। मैंने कह दिया कि यह झगड़ा बहुत छोटा है। पाँच आदमियों का जलूस सड़क से होकर जाना चहता है। इसमें कोई कानून के विरुद्ध बात नहीं है। वह जलूस को निकल जाने दें, उसे रोकें नहीं, सारा झगड़ा मिट जायगा। जब जत्था नमक बनाकर क़ानून तोड़े, गिरफ्तार किया जाय, क़ानूनन् जो सज़ा हो, दी जाय। उन्होंने दूसरी सड़क से जलूस ले जाने की बात कही। मैं इसपर राजी न हुआ। बात इतने हीं तक होकर रह गयी। दूसरे दिन सवेरे जो जत्था गया वह गिरफ्तार कर लिया गया। गिरफ्तारी के बाद भीड़ खुद हट गयी। मारपीट की नौबत ही नहीं आयी। यह भी देखा गया कि पुलिस की संख्या बहुत कम है, घुड़सवार तो हैं ही नहीं। पुलिस के असिस्टेन्ट सूपरिण्टेण्डेण्ट ने गिरफ्तारी की। सत्याग्रही तुरन्त

कचहरी में पेश किये गये। मुक़द्दमा चल ही रहा था कि दूसरे जत्थे के आने का समय हो गया। वह जत्था सीधे रास्ते से चला गया। किसीने उसको नहीं रोका। हम लोग कचहरी में ही थे कि यह ख़बर मिली। उन सत्याग्रहियों को भी कचहरी उठने तक की क़ैद की सज़ा हुई। हुक्म सुनाकर हाकिम उठ गये। हम सब सत्याग्रहियों के साथ ही वह भी वहाँ से निकले। अब साफ़ हो गया कि जत्थे को पुलिस नहीं रोकेगी। संध्या को भी जत्था गया। पर कोई रोक-टोक नहीं हुई। इसके बाद जत्था भेजना बंद कर दिया गया। पर नमक बनाने का काम जारी रहा, इसलिए लोग गिरफ्तार होते रहे। पटना-शहर में भी गिरफ्तारियाँ होती रहीं।

30. नमक-सत्याग्रह के बाद

उधर गाँधीजी कुछ दिनों के बाद गिरफ्तार हो गये। धरासना में जहाँ नमक का सरकारी गोला है, सत्याग्रही धावा बोलने लगे। वहाँ बाहर मैदान में ही नमक बहुत जमा किया पड़ा रहता है। स्वयंसेवक उसे लूटने तो जाते नहीं थे, पर सरकारी आज्ञा के विरुद्ध उस स्थान पर पहुँचना चाहते थे। इसलिए वहाँ वे ख़ूब लाठियों से पीटे जाते। पहले गांधीजी, उसके बाद श्री अब्बास तैयबजी और श्रीमती सरोजिनी नायडू उन स्वयंसेवकों का नेतृत्व करते रहे। वे एक पर एक गिरफ्तार होते गये। वहाँ स्वयसेवकों के बेरहमी से पीटे जाने, लाठियों की चोट से बेहोश होने, बेहोशी की हालत में घसीटकर झाड़ियों में छोड़ दिये जाने और वहाँ से कांग्रेसी खाटों पर उठा ले जाकर कांग्रेसी अस्पताल में पहुँचाये जाने की रोमांचकारी ख़बरें छपती रहीं। इनसे उत्साह बढ़ता ही जाता था, घटता न था। यह जानते हुए भी कि बहुत ज़ोरों से मार खाना है, वहाँ सैकड़ों आदमी रोज़ जाते। यह बात, जब तक बरसात शुरू न हो गयी और वहाँ जाना-आना असम्भव-सा न हो गया, तब तक बराबर जारी रही।

बिहार-सूबे में समुद्र-तट तो था नहीं। पर सभी जगहों पर कुछ न कुछ नमकीन मिट्टी मिल जाती, उसे जमा करके उसका पानी चुला लेते

और उसे हाँडी में गर्म करके सुखा देते, कुछ नमक-जैसी चीज़ निकल आती। मैंने खुद कहीं नमक नहीं बनाया, पर जहाँ जाता वहाँ के बने हुए नमक को सभाओं में बेचता या नीलाम करता। उससे खर्च के कुछ रुपये भी मिल जाते और खुलेआम क़ानून भी टूटता; क्योंकि बिना 'कर' दिये नमक बेचना वैसा ही जुर्म है जैसा नमक बनाना। पर मैं बहुत दिनों तक गिरफ्तार नहीं हुआ।

पंडित जवाहरलालजी की गिरफ्तारी शुरू में ही हो गयी। उनके स्थान पर पंडित मोतीलालजी काम करने लगे। वह भी प्रायः जून के अंत तक गिरफ्तार नहीं किये गये। मुझे भी वर्किंग कमिटी का मेम्बर बना लिया था। इस बीच में जब तब प्रयाग में वर्किंग कमिटी की बैठक भी होती। वहाँ से आवश्यकतानुसार आदेश निकलते। जिस प्रकार की मदद लोग माँगते, दी जाती। सारे देश में गवर्नमेण्ट की दमन-नीति जोरों से चल रही थी। गिरफ्तारियाँ जितनी हो सकती थीं उतनी गवर्नमेण्ट न करतीं। उसने यह नीति ठहरा ली कि कुछ ही क़ानून तोड़नेवाले गिरफ्तार किये जायें, अधिकांश मारपीट कर ही छोड़ दिये जायँ। इसलिए, जहाँ कहीं लोग जमा होकर नमक बनाते, पुलिसवाले पहुँचते--हाँड़ी और चूल्हा तोड़-फोड़ डालते, जो लोग वहाँ रहते उनमें से एक-दो को गिरफ्तार करते और दूसरों को लाठियों से पीटकर चले जाते। इससे नमक बनना बंद न होता, फिर नयी हाँडी पहुँच जाती, नया चूल्हा बन जाता और नमक बनानेवालों की तादाद ज्यों की त्यों बनी रहती। गाँववाले यह काम लुक-छुपकर तो करते नहीं थे, क्योंकि खुलेआम करने की आज्ञा थी। मैं बराबर दिन-रात दौरा कर रहा था। सभी जगहों में देखता कि लोग गाँव के किसी मुख्य स्थान में, केले के थम्भ वगैरह गाड़कर, झंडे और बन्दनवार लगाकर, घिरी जगह बना लेते। वहीं चूल्हा और मिट्टी से पानी चुलाने के लिए छोटी कोठी बना लेते। गाँव के सभी लोग जानते कि कहाँ नमक बनता है।

किसी आगन्तुक व्यक्ति अथवा पुलिस को नमक बनाने की जगह का अनायास ही पता लग जाता।

ऊपर कह चुका हूँ कि मुझे कुछ दिनों तक गवर्नमेंट ने गिरफ्तार नहीं किया। यह भी कह चुका हूँ कि सत्याग्रह आरम्भ होने के पहले मुझे नमक-सत्याग्रह की सफलता में सन्देह था। पर तब भी मैंने इसके लिये पूरा प्रयत्न किया। जैसे-जैसे गांधीजी अपनी यात्रा में डांडी की ओर आगे बढ़ते जाते थे, देश में उत्साह उमड़ता जाता था। यह सब देखकर मेरा विश्वास भी दृढ़ होता गया कि इसमें पूरी सफलता होगी। तब मैं और भी ज़ोर लगाता गया। पंडित मोतीलालजी का भी कुछ ऐसा ही हाल था। उन्होंने भी, प्रयाग के अपने आनन्द-भवन में ही, जैसे प्रयोगशाला से कोई प्रयोग होता है वैसे ही, फ़िल्टर काग़ज़ के ज़रिये मिट्टी से नमक निकाला। उन्होंने उसे बहुत गर्व के साथ हम लोगों को दिखलाया। हम लोगों को भी इसका गर्व रहा। उनकी आज्ञा और सम्मति से, बिहार की स्थिति की ओर ध्यान रखते हुए, मैंने कार्यक्रम बनाया कि बिहार में जून तक नमक बनाया जाय—अर्थात् इसी पर अधिक ज़ोर रहे; उसके बाद विदेशी वस्त्र-बहिष्कार पर ज़ोर लगाया जाय, साथ ही मद्य-निषेध भी चले; बरसात में नमक नहीं बन सकता, इसलिये जून के बाद विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार और मद्य-निषेध के लिये पहरे वग़ैरह का काम चालू किया जाय; बरसात समाप्त होने पर चौकीदारी-टिकस बन्द करने का कार्यक्रम चलाया जाय।

मुझे खबर मिली थी कि आरम्भ में गवर्नमेंट का विचार मुझे गिरफ्तार करने का नहीं था। मैं तो गवर्नमेंट के विचार की परवाह न करके काम करता ही जाता। कुछ दिनों के बाद पता चला, ज़िला-मजिस्ट्रेटों को प्रांतीय सरकार की अनुमति मिल गयी है—अगर वे चाहें तो गिरफ्तार कर सकते हैं। मेरा कार्यक्रम ऐसा रहता कि मैं किसी ज़िले में चला जाता, एक मोटर मँगनी की या भाड़े की ले लेता, सवेरे पाँच-छः, बजे स्नानादि से निवृत्त होकर एक तरफ़ निकल जाता, दिन-भर

बारह-पन्द्रह जगहों में छोटी-मोटी सभाएँ करता, रास्ते में जहाँ-जहाँ नमक बनता होता उसका मुलाहज़ा करता, रात में 10-11 बजे दौरे से लौटता। इस तरह हर ज़िले के काफ़ी बड़े हिस्से का दौरा कर लेता। दो या तीन दिनों में एक ज़िले का दौरा समाप्त करके दूसरे ज़िले में निकल जाता। मैंने देखा, गाँवों में इस बात की स्पर्धा होती कि उनके अधिक आदमी गिरफ़्तार हों। जहाँ नमक नहीं बना रहता वहाँ के लोग, जब तक नमक वहाँ नहीं बनता, लज्जित रहते। मैं लोगों को विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार, मद्यनिषेध और नमक बनाने की बात समझाता। अक्सर लोग चौकीदारी टिकस और लगान देना बन्द करने की बात पूछते; उनसे कह देता कि यह चालू कार्यक्रम पूरा हो जाने पर उसकी आज्ञा निकलेगी। तब तक लोग उसके लिये तैयारी करें। लोग इसे समझ जाते।

जब 1930 का सत्याग्रह आरंभ हुआ और गांधीजी ने मद्यनिषेध तथा विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार को खासकर स्त्रियों का काम बताया, तो स्त्रियों में उत्साह की लहर बढ़ चली। शहरों में जहाँ-जहाँ दूकानों पर पहरे का काम होता, स्त्रियाँ ही करतीं। दूकान पर उनके खड़ी हो जाते ही कोई खरीददार उस तरफ़ झाँकने की हिम्मत न करता। दूकानदार भी सहम जाते और उनके साथ भद्रता-पूर्वक व्यवहार करते। पटने में इस प्रकार का पहरा दो-चार दिनों के लिये कुछ दूकानों पर बिठाना पड़ा था। इसमें मुख्य काम करनेवाली श्रीमती विन्ध्यवासिनीदेवी थीं। ऐसी-ऐसी स्त्रियाँ भी इसमें शरीक हुईं जो कभी घर के बाहर न निकली होंगी। सवेरे ही 8-9 बजे तक कांग्रेसी कार्यकर्ता उनको अपने-अपने घरों से बुला लाकर नियत दूकान पर बिठा जाते। फिर समय हो जाने पर उन्हें उनके घरों पर पहुँचा भी देते।

एक दिन का ज़िक्र है, किसी एक घर की नववधू आ गयी। स्वयंसेवक उसे घर पहुँचा देना भूल गया। रात हो गयी। उसे कोई ले

जाने नहीं आया। एक-दूसरी काम करनेवाली स्त्री के पति अपनी पत्नी को अपने घर ले जाने के लिये आये, तो उन्होंने इस लड़की को एक दूकान पर खड़ी देखा। पूछने पर मालूम हुआ कि उसे घर ले जाने के लिये कोई नहीं आया है; इसलिये वह अभी तक वहाँ खड़ी है। उन्होंने उसे अपनी मोटर पर चढ़ा लिया और चाहा कि उसके घर पहुँचा दें। पर वह अपना घर भी नहीं पहचान सकती थी, क्योंकि घर से बाहर कभी निकली न थी। शहर के सभी घरों को प्रायः एक तरह का देखकर अपना ही बता देती। हमारे यहाँ रिवाज है, स्त्रियाँ अपने पति का नाम नहीं लेतीं। इसलिये वह अपने पति का नाम भी नहीं बता सकती थी जिससे उसके घर का पता चले। वह शायद कैथी लिपि में अपना नाम लिख लेती रही हो, इससे ज्यादा पढ़ी-लिखी भी न थी। वह मोटरवाले सज्जन कैथी नहीं जानते थे कि उसके पति का नाम उससे लिखवाकर घर का पता लगा लें। कुछ देर तक यहाँ-वहाँ मोटर दौड़ाते रहे। फिर उसके पति का नाम उससे लिखवाकर किसीसे पढ़वाया। तब घर का पता लगा। इस तरह उसे उसके घर तक पहुँचा दिया। यह घटना मैंने इसलिये लिख दी है कि पाठक इससे देख सकेंगे कि स्त्रियों में कितना उत्साह था और किस तरह अशिक्षिता स्त्रियाँ भी इस काम में आ लगी थीं।

पटना लौटने पर मुझे मालूम हुआ कि अब मेरी गिरफ्तारी के लिये गवर्नमेंट का हुक्म हो गया है। मैंने पूर्ववत् अपना दौरा जारी रखा। कई ज़िलों में घूम आया, पर कहीं गिरफ्तार न किया गया। पीछे मालूम हुआ कि मैं एक ज़िले से दूसरे ज़िले में बहुत जल्दी घूमकर चला जाता हूँ। इसलिये ज़िला-मजिस्ट्रेट मुझे गिरफ्तार करके एक बला अपने ऊपर नहीं लेना चाहते। इस तरह मैं बचता चला गया। इसी बीच में एक दिन श्री विट्ठलभाई पटेल पटने में आये। वह हाल ही में केन्द्रीय असम्बली के सभापति-पद को छोड़ चुके थे। इससे लोगों में उनके प्रति श्रद्धा और

भी बढ़ गयी थी। पटने में एक सार्वजनिक सभा की गयी। मिस्टर हसन इमाम उसमें खादी का जाँघिया और अधबँहियाँ पहन कर आये वहीं खबर मिली कि उसी दिन सवेरे पंडित मोतीलालजी गिरफ्तार कर लिये गये। मैंने समझ लिया, अब मेरी गिरफ्तारी में भी देर न होगी। मैंने चलते समय मिस्टर हसन इमाम साहब से मुलाकात की। उन्होंने उत्साहपूर्वक आश्वासन दिया। कहा, बच्चू, तुम्हारे गिरफ्तार हो जाने से काम रुकेगा नहीं। मैं उसी सभा के बाद, श्री विट्ठलभाई पटेल को बिहार से विदा करके, खुद छपरा-जिले के दौरे पर चला गया।

वहाँ भी तीन दिनों का कार्यक्रम था। ज़िले के पश्चिमी भाग से प्रारम्भ करके तीसरे दिन पूर्वी भाग समाप्त कर पटने पहुँच जाना था। पहली रात जीरादेई में और दूसरी छपरे में बितानी थी। तीसरी रात को पटने पहुँचना था। दो दिन बीत चले थे। दूसरे दिन शाम का कार्यक्रम पूरा करते बहुत रात हो गयी। संध्या के बदले रात 12 बजे छपरा पहुँचा। बिहार-बंक में पहुँचने पर मालूम हुआ कि भाई कहीं गये हैं— छपरे में नहीं हैं और पुलिसवाले प्रायः 10-11 बजे तक मेरे इन्तज़ार में बंक में ठहरे हैं। मैं समझ गया कि गिरफ्तारी के लिये खोज कर रहे होंगे। मैं भोजन करके सो गया। सवेरे उठकर स्नानादि से निवृत्त हो, करीब आठ बजे, मोटर पर गड़खा के लिए रवाना हुआ। वहीं पर पहली सभा होनेवाली थी। पुलिसवालों को मालूम ही था; इसलिये वे लोग गड़खा में जा कर मेरा इन्तज़ार करने लगे। एक दल उस रास्ते पर ठहरा रहा, जिधर से मैं गड़खा पहुँचनेवाला था। मैं अभी छपरा-शहर के बाहर भी नहीं गया था कि गड़खा की ओर से एक मोटर पर पुलिसवाले लौटते मौना मुहल्ले में ही मिल गये। उन्होंने इशारा करके मेरी गाड़ी को रुकवाया। मुझसे कहा कि मेरी खोज में वे पहले दिन से घूम रहे हैं। मैं उनके साथ उनकी गाड़ी पर हो लिया। उन्होंने कहा कि बंक में यदि किसीसे मिल लेना हो अथवा कुछ लेना हो तो उधर से चल सकते हैं। मैं बंक में गया। वहाँ घर के लोगों से भेंट कर ली।

कुछ खा भी लिया एक आध घंटे के भीतर ही तैयार होकर उनकी गाड़ी पर फिर सवार हो गया। अभी तक इस वात की खबर शहर में पहुँची भी न थी कि मैं सीधे जेल ले जाया गया।

जेल का यह मेरा पहला अनुभव था। एक वार मैं छपरा-जेल में कुछ मित्रों से मिलने गया था। पर इससे ज्यादा उसके या किसी भी जेल के सम्बन्ध में नहीं जानता था। जेल में उस समय प्रायः 300-400 सत्याग्रही क़ैदी थे। उनको मालूम हो गया कि मैं फ़ाटक के अन्दर पहुँच गया। वे जयजयकार करते फाटक के पास पहुँच गये। जेलर कुछ घवरा गये। उन्होंने अन्दर का फाटक नहीं खोला। इस पर लोग और भी शोर करने लगे। मैंने जेलर से कहा कि मुझे अन्दर ले चलें, सव शान्त हो जायँगे। उन्होंने कहा कि जव तक ये लोग फाटक के नज़दीक रहेंगे, फाटक खोलने का नियम नहीं है; इसलिए ये लोग जब चले जायँ तभी वह मुझे अन्दर ले जायँगे। मैं सत्याग्रहियों से कुछ कह भी नहीं सकता था; क्योंकि छोटे सूराख से कहाँ तक बातें हो सकती थीं। मैं जनता था कि यह उत्साह केवल स्वागत के लिए है, मेरे अन्दर जाते ही और भेंट होते ही सव शान्त हो जायँगे। पर जेलर इस बात को नहीं समझ सकते थे। कुछ देर के वाद फाटक खोलकर वह मुझे अन्दर ले गये। सभी लोग इतना ही चाहते थे। सव मेरे साथ हो लिये और मुझे मेरी जगह पहुँचाकर अपने-अपने स्थान को चले गये।

इसी बीच में बाहर से जयजयकार की आवाज़ आने लगी। वहाँ के जेल में एक दोमहला मकान है। उसपर भी कुछ लोग रहते थे। उन्होंने देखा कि एक बड़ी भीड़ जेल की तरफ़ जयजयकार करती आ रही है। वह भीड़ वाहर सड़क पर थी। जेलर और भी घवरा गये थे। उन्होंने जेल के वार्डरों को फाटक पर से बन्दूक छोड़ने का हुक्म दिया। आवाज हम लोगों ने सुनी और समझा कि शायद कहीं गोली तो नहीं चली। पर

बात ऐसी नहीं थी। जेल एक तरह से बीच शहर में है, चारों ओर सड़क है। लोगों ने केवल जेल के इर्द-गिर्द जलूस घुमाकर और नारे लगाकर काम समाप्त किया। पर जेलर अपनी घबराहट में खामखाह बन्दूक छुड़वाने लगे। खैरियत थी कि खाली फ़ायर किया जाता था। सुना कि पीछे जब डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट को इसकी खबर मिली तो उन्होंने जेलर को डाँटा कि यह बड़ी भूल थी—यदि जनता बन्दूक छूटते देखकर बिगड़ जाती तो वह झूठे फ़ायर से उसे कैसे रोक सकते, खासकर जब उन्होंने पुलिस या मजिस्ट्रेट को भी खबर नहीं दी थी।

मेरा पहला अनुभव विचित्र रहा; क्योंकि पीछे जब औरों के अनुभव से मैंने अपने अनुभव को मिलाया तो मालूम हुआ कि औरों को ऐसा अनुभव नहीं हुआ था। उस समय तक छपरे में क़ैदियों के वर्गीकरण का कोई इन्तज़ाम नहीं था। मेरे सम्बन्ध में कोई खास हुक्म भी न था। इसलिए मैं लोहे के तसले में जो कुछ वहाँ मिलता वही खाता। घर से लोगों ने खाना भेजा; पर मैंने मना कर दिया और उसे नहीं खाया। जेलर का कहना था कि मैं जब तक हाजती (undertrial) हूँ तब तक घर का खाना खा सकता हूँ, पर फाटक पर जाकर खाना होगा! मैं तो यों ही इन्कार करता, इस शर्त ने और भी मजबूर कर दिया। दूसरे दिन भाई साहब छपरा पहुँचे। मुक़द्मे की पेशी के समय, जो जेल में ही हुई, आकर मिले। जेलर कायदा बरतने में इतने सख्त थे कि मेरे घर से कुछ आम आये तो उन्हें भी फाटक पर आकर ही खाने के लिए संवाद भेजा। मैंने इन्कार कर दिया। आम भी वापस कर देने को कह दिया। तब तक आम लानेवाला आदमी वापस चला गया था। फिर उन्होंने खुद आकर कहा, तो मेरे कारण पूछने पर कहने लगे कि जेल में एक क़ैदी दूसरे क़ैदी को अपना खाना नहीं दे सकता, इसलिए उसे बाहर की चीज़ हम अन्दर खाने नहीं देते। पीछे मालूम हुआ कि यह उनका मनगढ़न्त नियम था, किसी दूसरे जेल में ऐसा नहीं हुआ।

जिन मजिस्ट्रेट के सामने मेरा मुकद्दमा पेश हुआ, उनकी मेरी पहले से मुलाकात थी। मेरे वकालत के दिनों में वह मेरे मवक्किल रह चुके थे। उनके निजी मुकद्दमे में मैं काम कर चुका था। इत्तफ़ाक की बात, 1933 में जब मैं पटने में गिरफ्तार हुआ, वह पटने के सब-डिवीज़नल अफ़सर थे। उस बार भी उनको ही मेरा सज़ा सुनानी पड़ी। मुकद्दमे में कुछ कहना-सुनना तो था नहीं, कोई दफ़ा लगाकर मुझे छः महीने क़ैद की सज़ा उन्होंने दे दी।

मुझे कुछ भी मालूम न था कि मुझे वहीं रखेंगे या कहीं अन्यत्र ले जायँगे। पर इतना मैं जानता था कि सूबे के प्रमुख लोग हज़ारीबाग-जेल में रखे गये हैं। जेलर ने भी कुछ नहीं कहा कि मैं वहीं रहूँगा या हज़ारीबाग भेजा जाऊँगा। इस तरह पाँच-छः दिन बीत गये। एक दिन संध्या को भोजन करके मैं अपने वार्ड के छोटे आँगन में, एक कुर्ता पहने और एक अँगोछा हाथ में लिए, घूम रहा था। जेलर ने आकर कहा कि डिप्टी साहब फाटक पर आये हैं, मुझसे मिलना चाहते हैं। उन दिनों वहाँ के पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट छुट्टी पर गये थे, एक डिप्टी-मजिस्ट्रेट उनकी जगह काम कर रहे थे। मैंने समझा, वही आये होंगे। मैं गया, फाटक खुला। जैसे ही मैं अन्दर घुसा, डिपटी साहब दूसरी ओर मुंह फेरकर बाहरवाले दरवाज़े की तरफ़ चलते बने! मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। वार्डर ने मुझे अन्दर लेकर भीतर का दरवाज़ा बन्द करके दौड़कर बाहर का दरवाज़ा खोला। उसके खुलते ही एक दूसरे सज्जन अन्दर आ गये जो मिस्टर खाँ डिस्ट्रिक्ट-मजिस्ट्रेट थे। उन्होंने कहा कि मुझे तुरंत चलना है। मैंने पूछा कि सामान अन्दर है, जाकर ले जाऊँ। उन्होंने कहा कि उसकी मैं परवाह न करूँ, वह सब आ जायगा। जेल का एक नियम यह भी था कि पहने हुए कपड़ों और बिस्तर के सिवा दूसरा कुछ अन्दर नहीं जाने देते थे। इसलिए थोड़े कपड़े फाटक पर ही थे। मैंने टोपी निकाल ली और उसे पहन कर डिस्ट्रिक्ट-मजिस्ट्रेट की मोटर पर बैठ गया। उसके चारों ओर पर्दे लगे हुए थे।

मजिस्ट्रेट ने ड्राइवर से कहा कि पच्छिम ले जाओ। मेरे पूछने पर कि कहाँ जाना है, उन्होंने कहा कि पीछे बताऊँगा। जेल से छपरा-जंक्शन स्टेशन पश्चिम पड़ता है। पर जब स्टेशन के सामने मोटर पहुँची तो उधर मोड़ने के बदले उन्होंने सीधे पश्चिम जाने को कहा। कुछ देर में हम लोग शहर के बिलकुल बाहर पहुँच गये। तब उन्होंने पर्दा गिरा दिया। मुझसे माफ़ी माँगते हुए कहने लगे कि उनको अफ़सोस है कि इस तरह की कार्रवाई उन्हें करनी पड़ी है, मुझे हजारीबाग जाना होगा, पर रास्ता मामूली रास्ता नहीं है; मुझे वह 'माँझी' स्टेशन पर—जो छपरा-बनारस-लाइन में सरयू-तट पर एक छोटा स्टेशन है—बनारस की गाड़ी में सवार करायेंगे, वहाँ से मैं बनारस के रास्ते मुगलसराय ले जाया जाऊँगा जहाँ से ग्राण्ड-कोर्ड-लाइन द्वारा सोनईस्ट-बैंक स्टेशन तक ले जाकर उतार लिया जाऊँगा; फिर वहाँ से मोटर पर हज़ारीबाग पहुँचाया जाऊँगा; मेरे लिए रेलवे-पुलिस के एसिस्टैण्ट सुपरिण्टेडेण्ट अपना सैलून लेकर आ रहे हैं, कोई तकलीफ़ न होगी।

ख़ैर, हम लोग माँझी स्टेशन पर जल्द ही पहुँच गये, थोड़ी देर में डिप्टी साहब भी मेरे सामान के साथ पहुँच गये। गाड़ी भी आ गयी। मैं सैलून में सवार हो गया। पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट ने मुझसे इतना ही कहा कि मैं लोगों को अपना परिचय न दूँ। मैंने कहा कि मैं खुद थोड़े ही किसी को अपना परिचय देता चलूँगा; पर यदि कोई मुझे पहचान ही ले तो मैं क्या करूँगा। इस पर वह हँसे और मजे में हम दोनों साथ चले। रात का समय था। हमारा डब्बा गाड़ी के आखिरी डब्बे के पीछे जोड़ा गया; इससे वहाँ तक कोई मुसाफिर भी नहीं पहुँचता था। कुछ रात रहते ही हम बनारस पहुँच गये। वहाँ से मोटर पर मुगलसराय पहुँचे। वह रिफ्रेशमेण्ट रूम में मुझे कुछ खिलाने के लिए ले गये; पर मैं अभी तैयार नहीं था। कुछ देर तक वहाँ बैठा। इतने में गाड़ी आ गयी। इस बीच में शायद दो-चार आदमियों ने मुझे

पहचाना हो। खाने के लिए उन्होंने आम खरीद लिए। गाड़ी खुलने पर मैंने मुँह-हाथ धो स्नानादि से निवृत्त होकर नाश्ता कर लिया। सोनईस्ट-बैंक स्टेशन पर गया-जिले के पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट मिले। उन्होंने मुझे एक मोटर पर सवार कराकर, हजारीबाग के लिए, एक इन्स्पेक्टर के साथ, रवाना किया। वहाँ मैं एक बजे दिन के कुछ पहले पहुँच गया। मित्रों के साथ वहाँ रखा गया। इस लंबी-चौड़ी यात्रा की बातें जब मित्रों ने सुनीं तो बहुत चकित हुए। मिस्टर खाँ ने छपरे में ही पूछने पर इस तरह ले जाने का कारण बताया था—गवर्नमेण्ट नहीं चाहती कि छपरा, सोनपुर, पटना और गया स्टेशनों पर लोगों की भीड़ जमे और प्रदर्शन हो, इसलिए यह रास्ता सोचकर निकाला गया है। साथ के इन्सपेक्टर ने भी कहा कि रास्ते में कहीं भी मोटर न ठहराने का क्म है और औरंगाबाद (गया) में जहाँ कसबे के बीच होकर सड़क जाती है वहाँ मोटर को तेज ले जाने का हुक्म है। ऐसा उन्होंने किया भी।

छपरा-जेल से मेरे निकल आने पर जब जेलर मेरा सामान लाने अंदर गये तो लोगों को मालूम हो गया कि मैं वहाँ से हटा दिया गया। वहाँ के लोगों में बड़ी उत्तेजना फैली। कुछ लोगों ने कोठे पर से चिल्लाना शुरू कर दिया कि मुझे किसी अज्ञात स्थान में ले गये। शहर के किसी आदमी ने दौड़कर बिहार-बंक में पहुँच भाई को खबर दे दी। वह अपनी मोटर पर तुरन्त छपरा-स्टेशन पर पहुँचे। वहाँ उन्हें मालूम हुआ कि मैं किसी गाड़ी में नहीं सवार कराया गया हूँ। उन्होंने समझा कि शायद किसी आगे के स्टेशन पर सवार करायेंगे। पर उन्हें यह क्या पता कि सोनपुर की ओर न जाकर मुझे बनारस की ओर ले गये हैं। वह सोनपुर तक मोटर में से पहुँचे। जब वहाँ भी मुझे न पाया तो निराश होकर फिर छपरे लौट गये। बाद जब मालूम हुआ कि मैं हजारीबाग पहुँच गया तो वह आकर मुझसे मिले।

31. हज़ारीबाग जेल में

हज़ारीबाग-जेल के जेलर बाबू नारायणप्रसाद मेरे पूर्व-परिचित थे। उनके एक बड़े भाई मेरे स्कूल के साथी थे, जिनसे मेरी मित्रता थी। मैं घर पर कभी-कभी जाया करता था। वह बड़े कार्य-कुशल और विचार-शील जेलर थे। उन्होंने मुझे वहीं स्थान दिया जहाँ रामदयालु बाबू, श्री बाबू, विपिन बाबू प्रभृति रहते थे। जेल में मेरा समय कुछ पढ़ने और सूत कातने में बीतता था। पीछे सुपरिण्टेण्डेण्ट मेजर ऐयंगर से कहकर मैं उस कारखाने में, जहाँ कपड़ा और नेवार बुना जाता था, बुनाई का काम करने लगा। इन पाँच-छः महीनों में मैंने प्रायः दो सौ गज नेवार और 14–15 गज़ कपड़े भी बुन लिये। पर वह कपड़ा चर्खे के सूत का नहीं था, जेल का ही था, इसलिए उसे वहीं छोड़ दिया। पर नेवार को चलने के समय दाम देकर ख़रीद लिया। मैं जुलाई के पहले सप्ताह में गिरफ्तार हुआ था और दिसंबर के अंत तक वहाँ रहकर रिहा हुआ। समय बीतते देर न लगी।

इस बीच में श्री दीपनारायण सिंह भी वहाँ पहुँच गये। वह भी हमारे साथ ही उसी कार में रहे। दक्षिण अफ्रिकावाले स्वामी भवानी-दयाल भी उसी वार्ड में रहते थे। दूसरे वार्ड में जो मित्र रहते थे वे भी जेलर से इजाज़त लेकर जब-तब हम लोगों से मिलते रहते थे या हम ही उनके वार्ड में जाकर उसी तरह मिलते थे। किसी बात की तकलीफ़ नहीं थी। पुस्तकों के सम्बन्ध में कुछ रुकावट थी। कोई पुस्तक, पुलिस अथवा मजिस्ट्रेट के 'पास' किये बिना, हम लोगों को नहीं मिलती थी। पास करनेवाले सज्जन कुछ बहुत पढ़े-लिखे नहीं मालूम होते थे। जिस पुस्तक के नाम में किसी तरह 'पालिटिक्स' या 'पोलिटिकल' शब्द आ जाय उसे वे हरगिज़ नहीं पास करते। जिसमें ये शब्द न आवें उस पुस्तक को, चाहे उनके दृष्टिकोण से वह कितनी भी ख़राब पुस्तकें क्यों न हों, वे पास कर देते।

मैंने जेल में सोचा कि गांधीजी के लेख अधिकतर उनके साप्ताहिकों की फ़ाइलों में ही पड़े हैं। यद्यपि मद्रास के प्रकाशक श्री नटेशन ने उनको इकट्ठा करके पुस्तकाकार में प्रकाशित किया है और उसके लिए मैंने एक लंबी भूमिका भी लिखी है, तो भी मेरा विचार हुआ कि यदि एक-एक विषय के सभी लेखों का अलग-अलग संग्रह छापा जाय और आरंभ की छोटी-सी भूमिका में उन लेखों का संक्षिप्त अर्थ दे दिया जाय, जिससे पाठक उस विषय पर उनके विचारों को थोड़े शब्दों में जान लें और तब उनका विस्तार-पूर्वक उनके अपने शब्दों में एक जगह अध्ययन करें, तो अच्छा होगा। इसलिए, मैंने उन लेखों को कई विभागों में बाँटा। जैसे अहिंसा, स्वराज्य, सत्याग्रह, शिक्षा, खादी इत्यादि। फिर प्रत्येक विषय पर छोटा लेख लिखा जिसमें उनके विचारों का सारांश था। लेखों को चुन लिया। कुछ मित्रों ने अलग-अलग उनकी नक़ल भी तैयार कर दी। मेरी भूमिका भी पूरी हो गयी। इसी समय मैं छूट गया।

बाहर आने पर समय न मिला कि उसे फिर एक बार देखकर छपवाऊँ। गांधीजी से भेंट होने पर उनसे पूछा कि ऐसा करना क्या वह पसन्द करेंगे। उन्होंने अपनी अनुमति दे दी। यह भी कहा कि कुछ दिन पहले किसीने गुजराती में ऐसा ही संग्रह छापा भी है। कुछ और मित्रों ने भी इसे पसन्द किया। विशेषकर पुरुलिया के श्री निवारणचन्द्र दास गुप्त ने इसे बहुत पसंद किया था। उन्होंने भूमिका में कुछ सुधार भी बताये थे, जिनको मैंने मान लिया था। 1931 में यह चीज़ प्रेस में न जा सकी। जब 1932 में फिर हम लोग गिरफ्तार हो गये तो सदाकत आश्रम भी जब्त हो गया। बस फिर वह लिखी हुई चीज मुझे नहीं मिली। न मालूम कहाँ रखी गयी और किस तरह ग़ायब हो गयी।

दिसम्बर में जेल से छूटकर मैं सीधे बम्बई गया; क्योंकि उस समय बम्बई ही एक प्रकार से आन्दोलन का केन्द्र हो रहा था। वहाँ आज़ाद-मैदान में सभाएँ होतीं और लाठियों द्वारा भंग की जातीं, बहुतेरे घायल

होते। सब लोगों की सेवा-शुश्रूषा का प्रबन्ध कांग्रेस-अस्पताल में था। वहाँ का रुई-बाजार बहुत दिनों तक बन्द रहा। दूसरे प्रकार से वहाँ की जनता आन्दोलन में खूब भाग ले रही थी। वहाँ जाकर मैं सब लोगों से मिला। सरदार वल्लभभाई से भी भेंट हुई।

बिहार में चौकीदारी टिकस बन्द करने का कार्यक्रम चल रहा था। गवर्नमेण्ट सख्ती से उसे दबा रही थी। जिससे दो-चार आने का भी पावना रहता, उसका बहुत माल बरबाद कर दिया जाता। जहाँ किसी गाँव के लोगों ने टिकस बन्द किया, गाँव ही लूट लिया जाता। मैंने एक गाँव के सम्बन्ध में जानकारी हासिल की जो हम लोगों की ही जमीन्दारी में था। वहाँ पुलिस ने जाकर एक आदमी को गोली से मार डाला था और दूसरों को खूब पीटा था। एक दूसरे गाँव में मैंने खुद जाकर देखा था; वहाँ घर में घुसकर गल्ला रखने की कोठियाँ तोड़ डाली गयी थीं, सभी बासन-बर्तन चूर कर दिये गये थे, यहाँ तक कि चारपाइयों की बुनावट काट दी गयी थी, मकान के लकड़ी के खम्भे भी काट दिये गये थे। एक गाँव की यह कैफ़ियत थी कि पुलिस के चले जाने के बाद वहाँ गाँव में न एक घड़ा था और न एक रस्सी, जिससे लोग कुएँ से पानी निकालकर प्यास बुझा सकें। इस तरह की बातें अनेक गाँवों में हुई थीं। हमारी ग़ैरहाज़िरी में अनेक जगहों में गोली भी चली थी। दमन बहुत ज़ोरों से चल रहा था। पीछे जब गवर्नमेण्ट ने यह देखा कि केवल जेल जाने से लोग नहीं डरते तो जुर्माना शुरू किया। जुर्माने की अच्छी-अच्छी रक़मों की वसूली में घरवालों के साथ ज्यादतियाँ की जातीं, एक के बदले दस का माल बर्बाद किया जाता। हाईकोर्ट में किसीने अपील कर दी तो एक ऐसा फैसला हो गया कि हिन्दू के संयुक्त परिवार में एक आदमी के क़सूर के लिए सारे परिवार का संयुक्त धन नीलाम या जब्त नहीं किया जा सकता। इससे कुछ रुकावट पड़ी, तो भी जुर्माना और चौकीदारी-टिकस न देने के कारण जो लूटपाट होती उससे लोगों में आतंक-सा फैलता

दीख पड़ा। किन्तु इतने पर भी आन्दोलन चल ही रहा था, कहीं भी रुका नहीं था।

वर्किंग कमेटी के जो मेम्बर आ सकते थे, प्रयाग [illegible] थे। हम सब समझते थे कि ग़ैरक़ानूनी बैठक में सब लोग गिरफ्तार हो जायँगे, पर पंडितजी कहते थे कि जब हम मिस्टर मैकडोनल्ड के भाषण पर विचार करने की घोषणा कर चुके हैं, तब वे गिरफ्तार नहीं करेंगे। ऐसा ही हुआ भी। उस दिन तीसरे पहर से रात को देर तक बातचीत होती रही। एक निश्चय तक हम लोग पहुँचे जिसमें हमने मिस्टर मैकडोनल्ड के भाषण को ना-काफ़ी समझा और उसे ना-मंजूर किया। पंडितजी अपनी अस्वस्थता की हालत में भी बराबर काम करते रहे, हम लोगों के हज़ार कहने पर भी नहीं माना। प्रस्ताव तैयार हो गया। पंडितजी का विचार हुआ कि उसे तुरन्त प्रेस में दे देना चाहिए। क्योंकि ऐसा न करने से लोगों में यह जानकर ढिलाई आ जागगी कि कुछ सुलह होने जा रही है। मैंने कहा कि इसे एक बार और देखकर सबेरे प्रेस में दिया जाय। पंडितजी ने इस बात को मान लिया। वर्किंग कमिटी की ख़बर इंगलैंड पहुँच गयी थी। वहाँ से श्री श्रीनिवास शास्त्री, सर तेजबहादुर सप्रू और श्री जयकर का तार उसी रात हम लोगों के सो जाने के बाद पंडितजी को मिला, जिसमें उन्होंने लिखा था कि वे हिन्दुस्तान लौट रहे हैं और जब तक उनसे वर्किंग कमिटी की मुलाकात न हो ले, तब तक वह कोई आख़िरी फ़ैसला न करे। दूसरे दिन सबेरे जब मैं पंडितजी से मिला, उन्होंने तार दिखलाया और कहा कि अब उस प्रस्ताव को अख़बारों में मत दो, केवल इतना ही दे दो कि वर्किंग कमिटी तार पहुँचने के पहले ही फ़ैसले पर पहुँच गयी थी, पर तार पाकर उसका प्रकाशन स्थगित रखती है। मैं इस समय प्रयाग में प्रायः बराबर स्वराज्य-भवन में ही रहा करता था।

इन सब बातों का नतीजा यह हुआ कि गवर्नमेण्ट ने वर्किंग कमिटी के सभी मौजूदा और भूतपूर्व मेंबरों को छोड़ दिया। जब से सत्याग्रह शुरू

हुआ था, वर्किंग कमिटी के मेम्बर की गिरफ्तारी पर उसके स्थान में कोई स्थानापन्न मेम्बर बना दिया जाता था। इस तरह आरम्भ के और स्थानापन्न मेम्बरों की संख्या खाली हो गयी थी। सबके सब छोड़े गये,

32. गांधी-अर्विन समझौता

विलायत से लौटे हुए गोलमेज-सभा के सदस्यों की मुलाकात वर्किंग कमिटी से हुई। वहाँ का सब हाल उन्होंने बताया। और सब चीज़ों के अलावा महात्माजी इसपर बहुत ज़ोर दे रहे थे कि गवर्नमेण्ट को इस बात पर राज़ी होना चाहिए कि आन्दोलन के दबाने में उसके कर्मचारियों ने जो ज्यादतियाँ की हैं उनके संबन्ध में एक निष्पक्ष अदालत जाँच करे। पर लार्ड अर्विन इस बात को सुनना भी नहीं चाहते थे। प्रयाग में ऐसा मालूम पड़ा कि बातें आगे बढ़ेंगी ही नहीं, वहीं पर मामला समाप्त हो जायगा। महात्माजी भी अपनी बात पर डटे रहे। वायसराय से उनकी भेंट की बात चली; पर जब तक गांधीजी अपनी बात पर अड़े रहते, यह होनेवाली न थी। अन्त में एक दिन महात्माजी ने अपनी ओर से वायसराय के पास पत्र लिखा और उनसे मिलने की इच्छा प्रकट करते हुए समय माँगा। इसीसे मुलाक़ात का रास्ता खुल गया। दिल्ली में दोनों की मुलाक़ात हो गयी। हम लोग वर्किंग कमिटी के मेम्बर भी वहाँ बुलाये गये। मैं भी जाकर डाक्टर अनसारी के मकान पर ठहरा जहाँ दूसरे लोग भी ठहरे थे। महात्माजी की मुलाक़ात लगभग तीन दिनों तक रोज़ाना होती रही। कभी-कभी तो महात्माजी दिन-दिन-भर वायसराय के यहाँ रह जाते, कभी-कभी बहुत रात बीतने पर वापस आते। जिस दिन वहीं रह जाते, मीरा बहन उनका भोजन ले जाती। वहाँ से वापस आने पर महात्माजी हम सबको इकट्ठा करके वहाँ की बातचीत का सारांश कह हम लोगों की राय ले लेते। जिस दिन रात में देर करके आते और हम लोग सो गये रहते, तो भी सब उसी समय फिर उठकर उनसे सभी बातें सुन लेते।

अब तक सत्याग्रह स्थगित नहीं किया गया था। समझौते की

बातचीत चल रही थी और सत्याग्रह भी जारी था। स्वभावतः बातचीत चलने के कारण सत्याग्रह की प्रगति धीमी पड़ गयी थी; पर इस बीच भी कई स्थानों में गम्भीर घटनाएँ हो गयीं। महात्माजी ने वाइसराय को उनसे अवगत कर दिया। वायसराय ने उनके सम्बंध में पूछ-ताछ करने का वचन भी दे दिया। समझौते पर हस्ताक्षर होते ही वर्किंग कमिटी ने सभी सूबों को आदेश दे दिया कि सत्याग्रह स्थगित कर दिया जाय। गवर्नमेण्ट ने भी काँग्रेस-कमिटियों पर से प्रतिबन्ध उठा लिया।

उन्हीं दिनों मेरे छोटे लड़के धन्नू की शादी की बातचीत चल रही थी। उसके लिए दिन भी मुकर्रर हो गया था। भाई ने वह दिन यह सोचकर मुकर्रर किया था कि उसके पहले ही लार्ड अर्विन से होनेवाली बातचीत समाप्त हो जायगी और मैं शादी में शरीक हो सकूँगा। पर बात बढ़ती गयी। ऐसा मालूम होने लगा कि उस दिन तक कुछ तय न हो सकेगा। मैंने खबर दे दी कि यदि बात समाप्त हो जायगी तो मैं आ जाऊँगा, पर यदि न हुई तो मेरे लिए इन्तज़ार न करके नियत दिन पर शादी कर दी जाय। किन्तु शादी के ठीक दो दिन पहले समझौते पर हस्ताक्षर हो गया। मैं उसी दिन जीरादेई के लिए रवाना हो सका। बरात की रवानगी से क़रीब पंद्रह घंटे पहले जीरादेई पहुँच गया। समझौते की शर्तों में सत्याग्रहियों की रिहाई की बात भी थी। इसलिए, मैंने कुछ मित्रों को, जो हज़ारीबाग जेल में थे, आमंत्रित कर दिया था; पर कोई पहुँच न सका। मैं किसी तरह बरात में शरीक हो सका।

मेरा विचार है कि लार्ड अर्विन ने समझौता सच्चे दिल से किया। वह चाहते थे कि जो बातें तय पा चुकी हैं वे ठीक-ठीक बर्ती जायँ और पूरी की जायँ। समझौते को सिविल-सर्विस के लोग पसन्द नहीं करते थे। उनके ही बाधा डालने के कारण इसके तय होने में इतना समय लगा था। लार्ड अर्विन ने हिन्दुस्तान में और लेबर गवर्नमेण्ट ने इंग्लैंड से इसपर ज़ोर डालकर समझौता कराया। हम आशा करते थे कि एक बार बात तय हो

जाने पर सब काम ठीक चलेगा और हम लोग चैन से रचनात्मक काम कर सकेंगे। पर दुर्भाग्यवश लार्ड अर्विन का समय पूरा हो गया था। वह शीघ्र ही, एक-डेढ़ महीने के बाद ही, चले जानेवाले थे। उनकी जगह पर लार्ड विलिंगडन वाइसराय होकर आये। वह बंबई और मद्रास के गवर्नर रह चुके थे। हिन्दुस्तान से उनका बहुत पहले का परिचय था। सिविल सर्विस की गतिविधि से भी वह खूब परिचित थे। उन्होंने आकर सिविल सर्विस का ही साथ दिया। उनके हिन्दुस्तान पहुँचते ही हवा का रुख बदल गया। चूंकि समझौता हो चुका था, उसे खुलेआम तो वह तोड़ना नहीं चाहते थे; पर उसकी शर्तों के पूरा करने में हर तरह आनाकानी होने लगी।

हम यह मानते हैं कि यह समझौता बड़े महत्व का था। पहली बात तो यह थी कि यह पहला ही अवसर था जब ब्रिटिश गवर्नमेण्ट भारतीय जनता की किसी प्रतिनिधि संस्था से बातचीत और समझौता करने पर तैयार हुई थी। दूसरी बात यह थी कि नमक के संबंध में ग़रीबों को बहुत-सी सहूलियतें मिल गयीं। तीसरी बात यह थी कि कांग्रेस को गोलमेज़-कान्फ्रेन्स में जाकर विधान-रचना में हाथ बँटाना था। विधान में जो संरक्षण और बचाव की शर्तें अंग्रेज़ों के बचाव और संरक्षण के लिए रखी जानेवाली थीं, वे अब इस दृष्टि से देखी जानेवाली थीं कि वे भारत के लिए भी हितकर हैं या नहीं और वे तभी मानी जानेवाली हों जब जनता के लिए हितकर हों। चौथी बात यह थी कि सारे भारत के लिए एक केन्द्रीय सरकार को कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया था, पर प्रान्तों को अपना प्रबन्ध करने की स्वतन्त्रता होनेवाली थी और इस केन्द्रीकरण में देशी रजवाड़े भी शरीक होनेवाले थे। इस तरह कई बातों का चित्र—धुँधला ही सही—सामने आ गया था। इसलिए मैं तो इसका पक्षपाती था और इससे सन्तुष्ट भी। अफ़सोस यही रहा कि ब्रिटिश सरकार की ओर से यह भी, पहले की अनेकानेक घोषणाओं और प्रतिज्ञाओं की तरह, पूरा नहीं किया गया!

गोलमेज़-कान्फ्रेन्स का काम समाप्त होते ही गांधी जी निराश होकर, हिन्दुस्तान के लिए रवाना हो गये। उनके भारत पहुँचने के दिन बम्बई में वर्किंग कमिटी की बैठक रखी गयी। सब लोग अपने-अपने सूबे से बम्बई के लिए रवाना हुए। बंगाल में दमन-चक्र चल ही रहा था। इसी बीच सीमा-प्रान्त में भी खाँ अब्दुल गफ्फ़ार खाँ, डाक्टर खाँ साहब और दूसरे नेता एकाएक गिरफ्तार कर लिये गये। वे अपने सूबे से बाहर नज़रबन्द करके जहाँ-तहाँ भेज दिये गये। युक्तप्रान्त में श्री पुरुषोत्तमदास टंडन और शेरवानी साहब भी गिरफ्तार हो गये। हम जिस गाड़ी से जा रहे थे उसीसे पंडित जवाहरलालजी भी बम्बई जा रहे थे। डाकगाड़ी, प्रयाग से थोड़ी ही दूर पर, एक छोटे स्टेशन पर ठहर गयी। वहाँ पहले से मोटर लेकर पुलिसवाले पहुँचे थे। पंडितजी वहीं गिरफ्तार कर लिये गये। हम लोग सीधे बम्बई चले गये।

बम्बई में महात्माजी के स्वागत की बड़ी तैयारी थी। जिन रास्तों से उनको जाना था उनके सब मकान जन-समूह से खचाखच भरे थे। सड़कें भी लोगों से भरी थीं। इस तरह की भीड़ शायद ही किसी दूसरे अवसर पर किसीको देखने के लिए इकट्ठी हुई हो। निश्चित स्थान पर पहुँचते ही गांधीजी से सभी बातें कही गयीं। वह भी समझ गये कि गवर्नमेण्ट अब दमन खुले तौर पर करना चाहती है। वर्किंग कमिटी की बाज़ाब्ता बैठक हुई। तत्कालीन परिस्थिति-संबन्धी एक लम्बा प्रस्ताव स्वीकार किया गया। गांधीजी ने वायसराय को तार दिया जिसमें प्रस्ताव का सारांश बताया और उनसे मुलाकात की अनुमति माँगी। यह सब हो जाने पर हम सब अपने-अपने स्थान के लिए रवाना हुए।

बम्बई से चलकर मैंने सोचा कि अब तो बिहार में भी दमन होगा ही, इसलिए अपने लोगों से एक बार मिल लेना अच्छा होगा। इटारसी जंकशन से मैंने कई तार भेजे, जिनमें बिहार-प्रान्तीय वर्किंग कमिटी की बैठक पटने में करने की बात के अलावा उसके मेम्बरों के लिए निमंत्रण

भी थे। जब दूसरे दिन सवेरे पटने पहुँचा तो मालूम हुआ कि वहाँ तार पहुँचा ही नहीं है। तारों को गवर्नमेण्ट ने रोक लिया था। तब भी कुछ लोग पटने में पहुँच ही गये। वहाँ वर्किंग कमिटी की बैठक भी हमने कर ली। उसी रात को महात्माजी की गिरफ्तारी हो गयी थी। उनके साथ सरदार वल्लभभाई तथा दूसरे कई प्रमुख कांग्रेसी नेता गिरफ्तार कर लिये गये थे। यह सब हम अखबारों में देख चुके थे और समझ गये थे कि अब हम लोगों की गिरफ्तारी भी शीघ्र ही हो जायगी। इसलिए पटने में पहुँचते ही हमने वर्किंग कमिटी का काम कर लिया। सब लोगों के लिए आदेश तैयार करके उसे छपवाने का भी प्रबन्ध कर दिया। यह सब काम पूरा करके हम जब तक तैयार हुए तब तक पुलिस के आने की सूचना मिली। वह अभी सदाकत-आश्रम तक पहुँची नहीं थी, पर आ ही रही थी। हम भी गिरफ्तार होने का इन्तजार करने लगे। श्री रामदयालु बाबू, प्रोफ़ेसर अब्दुल बारी तथा दो-एक और सदस्य काम खतम करके चले जा चुके थे। तिरहुत के कुछ सदस्य दोपहर के स्टीमर से दीघाघाट तक आये थे, मगर जेल से बाहर रहकर कांग्रेस का काम करते रहने के ख़याल से उधर ही रह गये।

पुलिस सुपरिन्टेंण्डेण्ट कई सशस्त्र सिपाहियों के साथ आ धमके। आश्रम को उन्होंने घेर लिया। हम दो-चार आदमी जो बैठे थे उनसे वे पूछने लगे कि क्या हम वर्किंग कमिटी की बैठक कर रहे हैं। हमने स्पष्ट कह दिया कि वह काम पूरा हो चुका और बहुतेरे सदस्य जहाँ-तहाँ चले गये। उन्होंने सरकारी विज्ञप्ति दिखलाई, जिसके द्वारा कांग्रेस-कमिटी और उसकी सभी शाखाएँ ग़ैर क़ानूनी करार दी गयी थीं। पुलिस ने पहले तो टेलीफ़ोन अपने कब्ज़े में किया। फिर राष्ट्रीय झण्डे के स्थान पर अपना—ब्रिटिश सरकार का—झण्डा लगा दिया। तब वहाँ की तलाशी शुरू की। तलाशी में कोई ख़ास चीज़ तो मिली नहीं, पर उसमें कई घंटे लग गये। हम सब गिरफ्तार कर लिये गये; पर अभी वहीं रहे।

प्रायः दिन के एक-दो बजे से रात के आठ बजे तक हम सब वहीं रहे। आश्रम और विद्यापीठ की सभी इमारतें ज़ब्त कर ली गयीं। विद्यापीठ के जितने विद्यार्थी और शिक्षक वहाँ थे, सबको चले जाने की आज्ञा हुई।

श्री [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] बी. एन.-पी. और मैं तथा प्रजापति मिश्र [illegible] गिरफ्तार कर लिये गये। रात में नौ बजे हम लोग बाँकीपुर-जेल पहुँचाये गये। पुलिस की लारी से अपना सामान लेकर हम सब सवार हुए। पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट भी साथ ही जेल में पहुँचे। अपना-अपना बिस्तर और वगैरह सब सामान हम लोगों को स्वयं उतारना और ढोना पड़ा। सुपरिण्टेण्डेण्ट की यही आज्ञा थी।

रात को एक गन्दे 'वार्ड' में, जो ख़ाली रखा गया था, हम लोग बन्द कर दिये गये। बिछाने को कुछ कम्बल मिले। खाने के लिए बाज़ार से पूरी मँगा दी गयी। वहाँ पेशाब की इतनी बदबू थी कि हम रात-भर चैन से सो न सके। बाज़ार की पूरी भी कुछ वैसी ही थी जो रुचि से खाते न बनी। दूसरे दिन सवेरे अंग्रेज़ सिविल सर्जन, जो जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट थे, आये। उन्होंने कहा कि यदि हम चाहें, तो अपना भोजन बाहर से मँगवा सकते हैं। हम लोगों ने कह दिया कि जो कुछ जेल से मिलेगा वही हम लोग खायेंगे। वही लोहे का तसला और वही खाना मिला जो सब क़ैदियों को मिलता है। हम लोगों ने उसे ही खाया। दो दिनों के बाद गवर्नमेण्ट का हुक्म आया कि हम लोग 'अप्पर डिविज़न' (ऊँचे दर्जे) के क़ैदी समझे जाएँ। तब से कुछ अलग खाना मिलने लगा। दूसरे दिन से ही हम एक दूसरे वार्ड में ले जाकर रखे गये। जेल में ही हम लोगों पर मुक़द्दमा चलाया गया। ब्रजकिशोर बाबू को 5 महीने और बाकी सबको छः महीनों की सज़ा मिली। चन्द दिनों के बाद हम सब हजारीबाग-जेल भेज दिये गये। वहीं हमने अपनी मीयाद पूरी की।

33. हरिजनों के लिए

छः महीनों की सज़ा काटकर मैं हज़ारीबाग से रिहा हो गया। कुछ घंटों के लिए मुझे हज़ारीबाग शहर में ठहरना था। उसी समय मुझे ज़ोरों से जाड़ा-बुखार आ गया। मुझे कुछ ठहर जाना पड़ा। जब कुछ स्वस्थ होकर मैं पटने आया तब भी बीमार ही था और कमज़ोरी तो बेहद थी। मैंने कुछ अच्छा होकर बाहर की परिस्थिति का ज्ञान प्राप्त किया। अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी के कार्यकर्ताओं से मेरी मुलाकात हुई। सूबे में भी जो बाहर थे उनसे भेंट हुई। मुझसे जो कुछ हो सका, मैंने मदद भी की; पर काम चलाने का भार मैंने अपने ऊपर नहीं लिया, जो लोग चला रहे थे उन्हीं पर रहने दिया। अखिल भारतीय कमिटी के काम में ही मैंने अधिक दिलचस्पी ली और समय दिया। मैं काशी में पंडित मालवीयजी से जाकर मिला और वहाँ कई दिनों तक ठहरा रहा। फिर बम्बई भी गया और कलकत्ते भी। सभी जगहों में कार्यकर्ताओं से मिला और यथासाध्य रुपये जमा करने में उनकी कुछ मदद की। अभी तक पूरा स्वस्थ नहीं हो पाया था, पर ऐसा बीमार भी न था कि काम रुक जाय।

मैं मानता था कि मुझे बाहर नहीं रहना चाहिए और सोच भी रहा था कि कोई उपयुक्त अवसर मिले तो फिर जेल-यात्रा करूँ। इतने ही में एक दिन अख़बारों में महात्माजी के अनशन की बात पढ़ी। हम जब से बम्बई में गांधीजी से मिलकर अलग हुए थे, उनकी कोई ख़बर हमको नहीं मिली थी। पर गवर्नमेण्ट के साथ उनका कुछ दिनों से पत्र-व्यवहार चल रहा था। पहले कह चुका हूँ कि गोलमेज़-कान्फ़ेन्स में उन्होंने अस्पृश्य-वर्ग के लिए अलग चुनाव-क्षेत्रों का प्राणपण से तीव्र विरोध किया था। मिस्टर मैकडोनल्ड ने अपने फ़ैसले में अलग क्षेत्र कायम करने की बात कह दी थी। महात्माजी ने अपने उसी भाषण की याद दिलाते हुए कहा था कि गवर्नमेण्ट इस फ़ैसले को नहीं बदलेगी तो वह

आमरण अनशन करेंगे। इसलिए गवर्नमेण्ट के न मानने पर उन्होंने अनशन आरम्भ कर दिया। सरकार ने सारा पत्र-व्यवहार प्रकाशित कर दिया और उसके प्रकाशित होते ही देश-भर में बड़ी सनसनी पैदा हो गयी।

महात्माजी यरवदा-जेल में थे। वहीं अनशन आरम्भ हुआ। मैं खबर पाते ही बम्बई पहुँचा। पूज्य मालवीयजी भी पहुँचे। श्री राजगोपालाचारी भाग्यवश बाहर थे, वह भी आ गये। और लोग भी जो बाहर थे, बम्बई पहुँच गये। महात्माजी के अनशन को छुड़ाने की कोशिश होने लगी। पर महात्माजी अपनी प्रतिज्ञा से कब डिगनेवाले थे! मिस्टर मैकडोनल्ड के फ़ैसले में एक बात यह भी थी कि वह फ़ैसला तब तक कायम रहेगा जब तक उन जातियों के लोग, जिनके फ़ैसले से सम्बन्ध था, आपस के समझौते से उसके स्थान पर कोई दूसरी बात तय न कर लें। स्वभावतः इस ओर लोगों का ध्यान गया। अब भी इस बात की कोशिश होने लगी कि अस्पृश्य-वर्ग के लोगों को ही राज़ी करके अलग निर्वाचन-क्षेत्र छुड़वाये जाएँ। बम्बई में डाक्टर अम्बेदकर रहते थे। सरकार ने उनको ही अस्पृश्यों का नेता बनाकर गोलमेज़-कान्फ्रेन्स में भेजा था। उनसे बातें होने लगीं। एक-दो दिन बीत गये, पर कोई बात तब तक तय न हो सकती जब तक गांधीजी से भी राय न ले ली जाय। इस बीच में अस्पृश्य-वर्ग की जनता में भी हलचल मच गयी; क्योंकि अस्पृश्यता-निवारण में गांधीजी ने बहुत काम किया था। उस वर्ग के लोग देखने लगे कि इनकी मृत्यु यदि इसी कारण हो जायगी तो उनके लिए यह एक अमिट कलंक हो जायगा।

जैसे-जैसे दिन बीतते जाते मैं घबराता था; क्योंकि बातचीत में गांधीजी को पूरा परिश्रम पड़ता और मैं डरता था कि वह इतने परिश्रम के साथ बहुत देर तक अनशन बर्दाश्त नहीं कर सकेंगे। जब-जब बातें होतीं, मैं भी शरीक होता; पर अपनी आदत के मुताबिक बातें बहुत कम करता। गांधीजी ने एक दिन संध्या को डा० अम्बेदकर से बहुत बातें कीं और उनसे

ज़ोरदार अपील भी की। बातें तय हो गयीं। मुख्य बातें यह थीं कि अलग निर्वाचन-क्षेत्र नहीं होंगे, उनके बदले में चुनाव का तरीका यह होगा कि निर्धारित संख्या में अस्पृश्य-वर्ग के लिए जगहें सुरक्षित रहेंगी, चुनाव के पहले अस्पृश्य मतदाताओं को अधिकार होगा कि प्रत्येक स्थान के लिए चार उम्मीदवार मनोनीत कर दें; यदि चार से अधिक उम्मीदवार हों तो केवल उन्हीं के वोट से चार ही चुन लिए जाएं और इन चार की ही उम्मीदवारी कायम रहे; चारों नामों पर वोट लिये जाएँ और वोट सवर्ण तथा अस्पृश्य सभी हिन्दू दें और जो सबसे अधिक वोट पावें वे ही चुने जाएँ, यह दस वर्षों तक रहेगा और उसके बाद इसपर फिर विचार किया जायगा। मिस्टर मैकडोनल्ड के फ़ैसले में अस्पृश्यों को जितनी जगहें मिली थीं, उनकी संख्या बहुत बढ़ा दी गयी। वह उनकी जनसंख्या के अनुपात से बढ़ायी गयी। ये बातें तय हो गयीं और प्रधान मन्त्री मैकडोनल्ड के पास तार भेज दिया गया। उन्होंने इसे मंजूर कर लिया और अपने फ़ैसले को इस हद तक बदल दिया।

इतना हो जाने पर गांधीजी के अनशन का कोई कारण नहीं रह गया। उसे उन्होंने समाप्त कर दिया। इस समझौते से हम लोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई। राजाजी और डाक्टर अम्बेदकर ने अपने कलम आपस में अदल-बदल कर लिये। यह राजाजी की इच्छा से हुआ; क्योंकि वह बहुत ही खुश थे। विलायत से उत्तर आने में अधिक विलम्ब नहीं हुआ, शायद चौबीस घंटों के अन्दर ही मंजूरी आ गयी। पर ये चौबीस घंटे भी हम लोगों को बहुत गुजर रहे थे। उस दिन सबेरे से ही हम सब परेशान थे। होते-हवाते दोपहर का समय हो गया। मालूम हुआ कि उत्तर आ गया है और जल्द ही जेल में पहुँचनेवाला है। उसी दिन विश्वकवि रवीन्द्रनाथ पूना पहुँचे। वह रवाना हुए थे गांधीजी को देखने के लिए। उस समय तक समझौते की खबर उनको नहीं थी। पूना पहुँचने पर उन्हें इसकी खबर मिली। वह ठीक उसी समय जेल में

पहुँचे जब समझौते की मंजूरी की खबर वहाँ पहुँची और गांधीजी के अनशन छोड़ने का समय आ गया। बड़ा ही शुभ मुहूर्त था वह। प्रार्थना की गयी। गुरुदेव ने एक सुन्दर गान गाया और आशीर्वाद दिये। इसके उपरान्त गांधीजी ने नारंगी का रस लेकर उपवास समाप्त किया। सारे देश में खुशियाँ मनायी गयीं। अछूतोद्धार की प्रचण्ड लहर चल पड़ी।

कलकत्ते मैं गया एकता-सम्मेलन के काम से; पर वहाँ कुछ ठहर जाना पड़ा। मैंने वहाँ आन्दोलन के लिए भी कुछ काम कर लिया। उन दिनों रुपये की ज़रूरत थी। इस ज़रूरत को पूरा करने में मैंने कुछ हाथ बँटा लिया। लोगों में आन्दोलन के प्रति उत्साह और श्रद्धा थी, पर लोग बहुत डर गये थे। इसलिए कोई धनी आदमी खुल्लमखुल्ला मदद करने को तैयार नहीं था। पर चुपचाप पैसे देनेवाले बहुत थे। मैं इसका एक बहुत ही अच्छा उदाहरण यहाँ बता देना ठीक समझता हूँ। जब मैं बनारस में ठहरा हुआ था, एक दिन कहीं जाते समय, सड़क पर एक पुराने परिचित मित्र से मुलाकात हो गयी, जो गांधीजी के यहाँ आया-जाया करते थे। उन्हें देखकर मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। वहाँ उन्होंने मुझसे इतना ही जान लिया कि मैं बाबू शिवप्रसाद गुप्त के यहाँ ठहरा हूँ। वह आकर मुझसे मिले। उन्होंने कहा—सुना है कि आन्दोलन में रुपयों की जरूरत है और यह ज़रूरत मद्रास तथा बिहार में विशेष महसूस हो रही है। मैंने कहा—रुपयों की ज़रूरत तो है ही। रुपये वह साथ लाये थे। आज मुझे ठीक स्मरण नहीं है, पर अखिल भारतीय काम के लिये आठ या दस हज़ार के नोट मेरे हाथों में उन्होंने रख दिये। मैं बहुत कृतज्ञ हुआ और उनकी इच्छा के अनुसार रुपयों को जहाँ-तहाँ भिजवा दिया। इसी तरह लोगों की मदद कलकत्ते में भी मिली। कलकत्ते से मैं पटने वापस आ गया।

मुझे जेल से निकले प्रायः छः महीने बीत चुके थे। दिन बीतते देर नहीं लगती। इसी बीच मैं दो बार बीमार पड़ा, गांधीजी के उपवास और पूना के समझौते के समय वहाँ हाजिर रहा, हरिजन-सेवक-संघ-संबंधी यात्राएँ और सभाएँ कीं, प्रयाग के एकता-सम्मेलन के लम्बे अधिवेशन में काम करना और फिर कलकत्ते में उसीके लिए आना पड़ा। यह सब करता हुआ भी मैंने बराबर महसूस किया करता था कि मुझे बाहर नहीं रहना चाहिए। मैं ही कांग्रेस का सभापति अथवा डिक्टेटर समझा जाता था और उस समय की प्रचलित पद्धति के अनुसार अपनी जगह पर किसीको मनोनीत करना था। प्रयाग में एकता-सम्मेलन समाप्त होने के समय ही मैंने सोच लिया था कि अब मैं कलकत्ते से लौटकर ही जेल यात्रा कर दूँगा। वहाँ पर राजाजी और श्री अणे भी थे। उनसे मैंने सलाह ली और राजाजी को मनोनीत करना चाहा। पर उन्होंने अभी कुछ देर तक हरिजन-सेवा का काम और करने की इच्छा प्रकट की। आपस की राय के बाद मैंने श्री अणे को मनोनींत कर दिया। मेरी गिरफ्तारी के बाद वही डिक्टेटर हुए।

कलकत्ते से लौटकर मैं पटने में उपयक्त दिन की इन्तज़ारी कर रहा था। बड़े दिन की छुट्टियाँ आ गयी थीं। मैंने सोच लिया था कि 4 जनवरी (1933) को मैं किसी तरह गिरफ्तार हो जाऊँगा। 4 जनवरी को ही (1932) में गवर्नमेण्ट ने गांधीजी को गिरफ्तार करके दमन शुरू किया था। उसकी यादगार में इस वर्ष भी सभी जगहों में एक दिज्ञप्ति कांग्रेस की ओर से पढ़ी जानेवाली थी। इसी बीच में एक दिन श्री कृपालानी, जो बाहर थे, मुझसे मिलने आये। वह कुछ रुपयों के बन्दोवस्त के लिए ही आये थे। जो कुछ कलकत्ते में हुआ था, मैंने उनको बतला दिया। किसी मित्र के नाम से, जो मुझे याद नहीं है, उनको पत्र भी दे दिया। वह उस पत्र को लेकर आ रहे थे। पटना-स्टेशन पर वह गिरफ्तार कर लिये गये। गिरफ्तारी होते ही उन्होंने पत्र को

फाड़कर फेंक दिया। पर पुलिस ने टुकड़ों को एकत्र कर सटा करके पूरा पत्र फिर तैयार कर लिया। उसपर मुकद्दमा चला। वह बाँकीपुर-जेल के अन्दर ही पेश हुआ। मैं भी पेशी में मुकद्दमा देखने गया। मुकद्दमा समाप्त होने पर मैं बाहर निकला। अपनी सवारी पर ज्यों ही सवार होना चाहता था कि पुलिस अफ़सर ने आकर मुझे खबर दी कि मुझे भी यहाँ रह जाना चाहिए! मैं तुरन्त फिर फाटक के अन्दर दाखिल हुआ। कृपालानीजी और बाबू मथुराप्रसाद पहले से ही वहाँ आ गये थे—मथुरा बाबू 4 जनवरी की घोषणा पढ़ने के लिए! मैं भी उनका साथी हो गया। एक-दो दिनों के बाद मुझपर भी मुकद्दमा चला। मथुरा बाबू को 18 महीने, कृपालानीजी को छः महीने और मुझे 15 महीनों की सज़ा हुई। मुझे आश्चर्य हुआ कि मुझे 15 महीने क्यों मिले, जब मथुरा बाबू को अठारह महीने दिये गये। मैंने मज़ाक में मजिस्ट्रेट से पूछा भी। यह वही पूर्व-परिचित मजिस्ट्रेट थे जिन्होंने मुझे छपरे में सज़ा दी थी और मेरी वकालत के समय के मेरे पुराने मवक्किल भी थे। खैर, चन्द दिनों के बाद हम लोग हज़ारीबाग पहुँचा दिये गये।

हज़ारीबाग में फिर उसी तरह पढ़ने और चर्खा चलाने में समय बीतने लगा। खाँ साहब दोनों भाई अभी तक वहीं थे। कुछ दिनों के बाद अखबारों से पता चला कि गांधीजी को हरिजनों के सम्बन्ध में लिखने की जो सुविधा मिली थी वह बन्द कर दी गयी, इसलिए उन्होंने अनशन कर दिया, अन्त में सरकार को सुविधा देनी पड़ी और उनको छोड़ देना भी पड़ा। बाहर निकलकर उन्होंने देश की परिस्थिति देखी। उन्होंने हरिजनों के प्रति सवर्ण हिन्दुओं की ओर से प्रायश्चित्त और उनके कर्त्तव्यों को जताने के लिए 21 दिनों का उपवास किया। इससे हम लोग बहुत चिन्तित हुए। वहाँ प्रतिदिन हम लोग प्रार्थना करते। यों तो संध्या के समय, ठीक कोठरी बन्द होने के पहले, सामूहिक प्रार्थना हम लोग बराबर करते ही थे; पर इस उपवास के दिनों में और भी अधिक

प्रार्थना होती। कोई गीता-पाठ करता, कोई रामायण की आवृत्ति करता, कोई केवल फल खाकर रहता। अपनी रुचि और शक्ति के अनुसार बहुतेरों ने कुछ न कुछ आत्मशुद्धि के लिए वहाँ किया। जिस दिन यह 21 दिनों का व्रत निर्विघ्न समाप्त हुआ, उस दिन हम लोगों ने इकट्ठे होकर विशेष प्रार्थना की और ईश्वर को धन्यवाद दिया।

34. मेरी सख्त बीमारी

मैं 1933 की जुलाई के पहले सप्ताह में बीमार पड़ गया। कुछ खाँसी शुरू हो गयी। शायद अचानक ठंड लग जाने से ही ऐसा हुआ। पहले तो हमने समझा कि यह मामूली खाँसी है, जल्द आराम हो जायगा। पर यह कम न होकर दिन-दिन बढ़ती गयी। दमा भी जोर पकड़ गया। एक बार तो इतने जोर से उठा कि प्रायः दो दिनों तक मैं बहुत परेशान रहा। उसके बाद सुई दी गयी। दम कुछ कम हुआ और तब कुछ खाने के लिए मैं बैठा। जैसे ही चमच में लेकर दूध और रोटी का टुकड़ा मुँह में दिया कि फिर दम बहुत जोरों से शुरू हो गया और साँस इस तरह घुटने लगा कि मानों प्राणान्त हो जायगा। मैं बेहोश-सा हो गया। जेल-डाक्टर ने आकर कुछ सुंघाया, तब होश हुआ। उसके बाद बहुत जोर मल (आँव) पड़ गया। दिन में चौबीस-पच्चीस बार दस्त होने लगा। कमजोरी बहुत बढ़ गयी। शरीर बहुत दुर्बल हो गया। जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट ने गवर्नमेण्ट को लिखा, यह पटना-अस्पताल में दवा के लिए भेजे जाएँ। पहले इसपर कुछ खयाल नहीं किया गया। भाई साहब को खबर मिली। वह घबराकर वहाँ पहुँचे। मेरी हालत देखकर बहुत चिन्तित हुए। राँची गये। कुछ मित्रों से मिले। अन्त में गवर्नमेण्ट का हुक्म मुझे पटने भेजने के लिए हुआ। यह हुआ सितम्बर के पहले सप्ताह में, बीमारी शुरू होने के दो महीने बाद! हुक्म यह था कि मैं पटना-जेल भेजा जाऊँ और पटना-अस्पताल में बीमारी की जाँच की जाय। मुझे जब हुक्म बताया गया तो मैंने कहा कि पटना-अस्पताल में यदि नहीं

जाना है—पटना-जेल में ही जाना है, तो बेहतर है कि यहीं रहूँ। पर मुझको बताया गया कि यही कायदा है लिखने का, इसका अर्थ यह है कि मैं अस्पताल में भेजा जा रहा हूँ।

दूसरे दिन सवेरे किसी तरह मुझे पटने ले आये। भाई भी साथ ही आये। यहाँ पहले जेल में लाकर वहाँ से फिर तुरन्त ही अस्पताल में मैं उन मकानों में से एक में रखा गया जिनमें रोगी भाड़े देकर रहते हैं और जिनमें थोड़ी जगह घर के बाल-बच्चों के रहने की भी होती है। मेरी भौजाई, पत्नी और नौकर भी साथ रहने लगे। डाक्टर बनर्जी ने मेरे पहुँचते ही जाँच की। हालत ख़राब देख तुरन्त अपनी चिकित्सा आरम्भ कर दी। डाक्टर रघुनाथ शरण तथा दूसरे डाक्टर भी जो पहले से मुझे जानते थे, आया-जाया करते थे। पुलिस का पहरा रहता था; पर किसी के आने-जाने की मनाही न थी। कई दिनों तक तो हालत ख़राब रही; पर आहिस्ता-आहिस्ता सुधरने लगी। मल और ज्वर कुछ सँभाल में आये। खांसी भी कुछ कम हुई। अभी बीमारी गयी नहीं थी उसका उग्र रूप कुछ कम हुआ था। बीमारी को दूर करने के लिए दवा अब शुरू हो रही थी कि एक दिन सेपहर को ३-४ बजे अचानक ख़बर मिली—गवर्नमेण्ट का हुक्म आया है कि मैं तुरन्त बाँकीपुर-जेल भेज दिया जाऊँ। शायद किसी ने गवर्नमेण्ट के पास कुछ ख़बर दे दी थी या चुगली कर दी थी कि मेरे पास बहुत लोग मिलने आते हैं और मैं वहाँ खाट पर पड़े आन्दोलन चला रहा हूँ। बात बिल्कुल झूठी थी। मुझसे लोग मिलने आते थे जरूर—और वह बीमारी के कारण स्वाभाविक था; पर मैंने किसी से आन्दोलन के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा था।

जो हो, अस्पताल से तुरन्त मैं बांकीपुर-जेल पहुँचाया गया। डाक्टर बनर्जी साहब ख़बर पाते ही आये। उनको बहुत अफ़सोस हुआ। क्योंकि वह बीमारी का इलाज अब शुरू कर रहे थे, अब तक तो उग्र कारणों को ही कम कर पाये थे। वहाँ जो दवा इत्यादि वह दे

रहे थे उसे लिखकर उन्होंने एक रिपोर्ट भी साथ कर दी। जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट मेजर स्ट्रिक्लैण्ड से, जो जिले के सिविल सर्जन भी थे, उनकी बातें भी हुईं। सुपरिण्टेण्डेण्ट ने उनके ही इलाज को जारी रखने का इरादा बतला दिया। जेल में वही दवा जारी रही। मैं कुछ अच्छा तो हो ही गया था। जेल में भी सुधार जारी रहा। अब सर्दी के दिन आ रहे थे, जब मेरी तबीयत अक्सर ख़राब हुआ करती है। एक दिन अचानक फिर बड़े ज़ोर का दमा शुरू हो गया। दो दिनों में हालत बहुत ख़राब हो गयी। सिविल सर्जन ने बहुत प्रयत्न किया, पर कुछ सफल न हुए। हालत देखकर वह भी कुछ घबराये। उन्होंने फिर गवर्नमेण्ट के पास लिखा या टेलीफोन किया; डाक्टर बेनर्जी को भी मुझे देखने के लिए लाये। डाक्टर बनर्जी ने कुछ दवा दी। उस रात को मैं कुछ सो सका, पर बहुत सुधार नहीं हुआ। अन्त में सिविल सर्जन ने फिर गवर्नमेण्ट से बातें करके मुझे जेल से अस्पताल भेजने का प्रबन्ध किया। जब उन्होंने मुझसे यह कहा कि गवर्नमेण्ट का हुक्म मुझे अस्पताल भेजने का आ गया तो मैंने कहा कि इस तरह जेल से अस्पताल और फिर अस्पताल से जेल आना-जाना मैं नहीं बर्दाश्त कर सकता—जो होना होगा, यहीं होगा। इस पर उन्होंने आश्वासन दिया कि इस बार जब तक डाक्टर लोग मुझे आराम करके वापस न करेंगे तब तक मैं अस्पताल में ही रखा जाऊँगा।

बात यह थी कि पहली बार के हुक्म में केवल जांच के लिए ही अस्पताल ले जाने की बात थी; पर वहां डाक्टरों ने दवा करना शुरू कर दिया था, इससे गवर्नमेण्ट ने उनसे कैफ़ियत मांगी थी! पर जेल के इन्सपेक्टर-जेनरल, सिविल सर्जन और अस्पताल के डाक्टर, सबने जवाब दिया था कि इलाज से अलग जांच के कोई मानी नहीं है और हालत इतनी ख़राब थी कि दवा देना आवश्यक था। इस बात की रिपोर्ट डाक्टरी भाषा में गवर्नमेण्ट को दी भी गयी थी। इससे गवर्नमेण्ट का मुँह बन्द

हुआ, पर तुरन्त मुझे वापस जेल भेजने का हुक्म निकाल दिया गया। जब जेल में दुबारा बीमारी बहुत बढ़ गई, तो सबने मिलकर नया हुक्म कराया कि आराम होने तक मैं वहीं रक्खा जाऊँ। सिविल सर्जन का इशारा इसी की तरफ था, जब उन्होंने कहा कि मुझे आराम होने तक वहीं रहना होगा।

मैं अस्पताल में बहुत बुरी हालत में पहुँचाया गया। इस बार सख्ती भी काफी थी। हुक्म था कि घर की दो स्त्रियाँ साथ रह सकती हैं और काम के लिए एक या दो नौकर, कोई दूसरा मिलने के लिए नहीं आ सकता, हफ्ते में एक बार घर के लोगों से मुलाकात हो सकती है—वह भी पुलिस और जेल के कर्मचारी की हाजिरी में। मुझे इससे कोई खास तकलीफ़ नहीं थी, क्योंकि मैं पहले भी किसीसे आन्दोलन की बातें नहीं किया करता था, और अभी तो इतना बीमार था कि चारपाई से उठकर कुर्सी पर भी नहीं बैठ सकता था। इस बार की बीमारी पहले से भी बहुत कड़ी थी। हजार कोशिश करने पर भी उसमें कमी नहीं आती थी। कभी-कभी तो ऐसा मौका आया कि सूई देनी पड़ी। साँस का फूलना चार-पाँच घंटों के लिए कुछ कम हो जाता, फिर ज्यों का त्यों, बस, फिर सूई दी जाती।

नवम्बर-दिसम्बर बहुत खराब गुजरे। यद्यपि मैं बहुत बीमार पड़ा करता हूँ तथापि इतनी सख्त बीमारी कभी हुई नहीं। दिसम्बर में अस्पताल के डाक्टरों ने गवर्नमेण्ट को लिखा कि हालत खराब है और बीमारी कब्जे में नहीं आती है, रात को इतनी परेशानी रहती है कि मेडिकल कालेज के दो विद्यार्थी बारी-बारी से आकर देखभाल करते हैं। पर गवर्नमेण्ट का काम जल्दी तो होता नहीं। अन्त में हुक्म हुआ कि मेडिकल बोर्ड मेरी जाँच करे। इस बोर्ड में वही डाक्टर बनर्जी थे, वही सिविल सर्जन थे और एक तीसरे थे मेडिकल कालेज के प्रिन्सिपाल।

मेरा अनुभव था कि दिसम्बर के अन्त से हर साल बीमारी का जोर कम हो जाया करता है।

इस साल भी वैसा ही हुआ। जब मेडिकल बोर्ड 1934 की जनवरी के पहले सप्ताह में जाँच करने आया, बीमारी में कमी आ गयी थी। सब हालत और प्रतिदिन की रिपोर्ट देखकर बोर्ड ने मुझे छोड़ देने की सिफ़ारिश की। मुझसे यह कहा नहीं गया। एक साल से अधिक जेल में हो चुका था—15 महीनों की सजा थी। शायद डेढ़ दो महीने मीयाद के बाकी रह गये थे। रिपोर्ट पर गवर्नमेण्ट ने 1934 की 15 जनवरी को विचार किया—मुझे छोड़ देने का निश्चय किया। मैं उस दिन भोजन करके चारपाई पर लेटा हुआ था। एक आदमी ने आकर नौकर से खबर दी कि सर गणेशदत्तसिंह ने संदेशा भेजा है—गवर्नमेण्ट ने आज निश्चय किया है कि मैं छोड़ दिया जाऊँ और अब एक-आध दिन में यह हुक्म जेल की मार्फ़त पहुँच जायगा। नौकर ने मेरी भौजाई और पत्नी से यह कहा—फिर उन्होंने मुझे ख़बर दी।

35. बिहार-भूकम्प

अस्पताल में चारपाई पर लेटे-लेटे मैं सोच रहा था—जब बीमारी का बहुत ज़ोर था, जिस वक़्त अब-तब की नौबत थी, उस वक़्त तो गवर्नमेण्ट ने कुछ किया ही नहीं; अब जब कुछ अच्छा हो गया हूँ, स्वास्थ्य में दिन-दिन उन्नति होने की सम्भावना और आशा है तथा मीयाद भी प्रायः पूरी हो चली है, तब यह मुफ्त का अहसान मुझपर क्यों लादा जा रहा है! बीमारी की सख़्ती के दिनों में तो घर के किसी आदमी से, भाई से भी, हफ्ते में एक ही बार पुलिस के सामने मुलाकात हो सकती थी! सख़्ती इतनी थी कि एक बार मेरी भौजाई चली गयीं और मेरे भतीजे की स्त्री दो-चार दिनों के लिए सेवा करने आयी, उसका एक चार साल का बच्चा था जो उससे कहीं अलग नहीं रह सकता था; इसपर भी

उत्तर हुआ कि हुक्म दो आदमी के रहने का है, वह तीसरा व्यक्ति साथ नहीं रह सकता ! उसे चला जाना पड़ा ! अब क्यों यह मुफ्त का एहसान लिया जाय ?

मैं इसी उधेड़बुन में लगा चारपाई पर करवटें बदल रहा था कि चारपाई हिलती हुई जान पड़ी। फिर मकान के दरवाज़े और जँगले हिलने लगे। मुझे आभास हुआ कि मैं बीमारी के कारण इतना कमज़ोर हो गया हूँ और इतनी देर से सोच-विचार में लगा रहा हूँ इसलिए मेरे दिमाग में चक्कर आ गया है। मैं यह सोच ही रहा था कि मेरी भौजाई ने दूसरे कमरे से चिल्लाकर कहा कि धरती डोल रही है। मैं तुरन्त समझ गया। कहा कि सब निकल भागो। तुरन्त चारपाई से उतरकर बाहर निकल गया। सामने के मैदान में जाकर खड़ा हो गया। धरती इतनी ज़ोरों से डोल रही थी कि खड़ा रहना कठिन था। साथ ही साथ भयानक गड़गड़ाहट थी, सैकड़ों रेलगाड़ियों के एक साथ चलने के बराबर आवाज़ हो रही थी।

कुछ दूसरे बीमार, जो आस-पास के मकानों में थे और जो चल सकते थे, मेरे नज़दीक ही आकर खड़े हो गये। मैदान में बहुत-सी गायें चर रही थीं, वे पूँछ उठाकर इधर-उधर दौड़ने लगीं। एक बार सब मिलकर जहाँ हम लोग खड़े थे वहाँ इस तरह दौड़ी आयीं कि जान पड़ा, हम लोगों पर हमला कर रही हैं ! पर ऐसा कुछ न करके हम लोगों के पास दौड़ती आकर खड़ी हो गयीं, मानो उन्होंने उस स्थान को निरापद समझा अथवा हम लोगों को अपना हितैषी मानकर हमारे पास रहना ही अच्छा समझा। इतने में ही, कुछ दूर पर, नर्सों के रहने का बड़ा दोमंजिला मकान धड़ाम से गिर पड़ा। पर गड़गड़ाहट इतनी थी कि मकान गिरने की आवाज़ कम ही सुनाई दी, केवल धूल-गर्द को ज़ोरों से उड़ते देखकर ही हमने समझा कि वह मकान गिरा है।

अस्पताल के कुछ हिस्से जहाँ-तहाँ गिरे, पर सौभाग्यवश कोई मरा नहीं और न कोई घायल ही हुआ। कुछ देर में शान्ति हुई।

मैंने करीब 4–30 मिनट तक भूकम्प जारी रहने का अन्दाजा लगाया था। पीछे सूबे के भिन्न स्थानों से खबरें आयीं, तो जान पड़ा कि 4–30 मिनट से [illegible] मिनट तक भूकम्प का जारी रहना देखा गया था। सब लोग जहाँ-तहाँ से डरे-घबराये निकलने लगे। अब घर के अन्दर जाने की किसी को हिम्मत नहीं होती थी। मैं जब से अस्पताल आया था, यह पहला ही अवसर था कि कमरे के बाहर निकला था और पहला ही अवसर था जो दूसरे लोगों से बातें हुईं। बातें और क्या हो सकती थीं, भूकम्प के बारे में ही थीं। मित्र लोग शहर से दौड़कर देखने आये कि मेरी क्या हालत है। आहिस्ता-आहिस्ता खबर आने लगी कि शहर में बहुत मकान गिरे हैं। कुछ लोग अस्पताल में घायल लाये भी गये। हम लोगों की चारपाई बाहर मैदान में ही निकाल दी गयी थी। वहीं संध्या तक हम पड़े रहे।

जनवरी का जाड़ा था। हवा जोर से चल रही थी। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। मेरे सामने प्रश्न हुआ कि रात को क्या किया जाय। मकान के अन्दर जाकर लोगों ने देखा तो कई जगह दीवार फट गयी थी, पर कोई हिस्सा गिरा नहीं था। मैंने सोचा रात में बाहर रहने से तो सर्दी के कारण मेरी अवश्य ही बीमारी बढ़ जायगी और मैं बच न सकूँगा यदि फिर रात में भूकम्प आया तो फिर निकल आवेंगे। हिम्मत करके मैं मकान के अन्दर चला गया। देखादेखी कुछ और मरीज गये, पर सब नहीं। पास में बच्चों का वार्ड था, उसका एक हिस्सा गिर गया था, दीवारें कुछ कमजोर हो गयी थीं; इसलिए अस्पतालवालों ने सबकी चारपइयाँ मैदान में ही रखवा दीं और उसी सर्दी में वे रात काटने लगे। रात को एक बजे भूकम्प का एक

धक्का और आया। यह भी ज़बरदस्त था; क्योंकि चारपाई इतनी हिली कि मैं जाग उठा। सब फिर बाहर निकल आये। पर यह उतनी देर तक न रहा जितनी देर दिन का भूकम्प रहा था। किसी तरह रात कटी। हम लोगों को बाहर की ख़बर उस दिन कुछ न मिली। शहर की थोड़ी ख़बर मिली जिससे मालूम हुआ कि शहर की काफ़ी बर्बादी हुई है।

दूसरे दिन सबेरे 10 बजे डाक्टर बनर्जी मुझे देखने आये। मैं उनसे बातें करते-करते बरामदे से नीचे उतर ही रहा था कि एक झोंका और आया। हम दोनों बाहर निकल गये। उनसे पहले-पहल मालूम हुआ कि मुंगेर की हालत ख़राब है, यद्यपि कुछ भी साफ़ ख़बर नहीं मिली है। वह मुंगेर के ही रहनेवाले हैं अतः बहुत चिन्तित थे। उन्होंने यह भी कहा कि गवर्नमेण्ट की आज्ञा हुई है कि जितने डाक्टर मिल सकें, तैयार रखे जाएँ कि जहाँ जाने का हुक्म मिले, तुरन्त चले जाएँ और अस्पताल में भी घायलों के लिए जगह तथा दूसरे प्रबन्ध ठीक रखे जाएँ।

अब कुछ पता चला कि यह भूकम्प कुछ दूर तक करामात दिखला गया है। यह भी सुनने में आया कि सरकारी सेक्रेटेरियट का एक हिस्सा गिर गया है, सब काम तितर-बितर है; इसी हल्ले में मेरी रिहाई का हुक्म भी न आ सका। मैं दो दिनों के बाद छोड़ा गया। उस दिन सिविल सर्जन ने आकर मुझसे चार बजे दोपहर को कहा कि मैं छोड़ दिया गया और मैं जो चाहूँ कर सकता हूँ। पुलिस का पहरा हटा लिया गया। कुछ लोगों की धारणा है कि भूकम्प के कारण गवर्नमेण्ट ने मुझे छोड़ दिया। जैसा ऊपर बताया गया है, मुझे बीमारी के कारण छोड़ने का निश्चय भूकम्प के चन्द घंटे पहले ही हो चुका था और उसकी सूचना भी मुझे मिल गयी थी।

भूकम्प से रिहाई में दो दिनों की देर हो गयी; क्योंकि सब मामला ही गड़बड़ में पड़ गया। जब उत्तर बिहार की शोचनीय

दशा का पता दो दिनों के बाद कुछ लगने लगा, तो गवर्नमेण्ट ने उधर के रहनेवाले कुछ सत्याग्रहियों को छोड़ दिया। उन लोगों को मालूम हो गया कि मैं भी मुक्त हूँ। मैं सोच ही रहा था कि भूकम्पपीड़ित लोगों की सहायता के लिए कुछ न कुछ करना होगा। तब तक वे लोग आ गये। उनको मैंने तिरहुत के जिलों में भेजा। कुछ रुपये उधार लेकर उनके लिए कम्बल ख़रीदवाये, उन लोगों के पास ओढ़ने को कुछ नहीं था, वे सब गरमी में गिरफ्तार हुए थे और चलते के वक़्त वही गरमी की धोती और कुर्ता बदन लिये थे। कुछ रुपये के साथ किसी तरह चम्पारन, मुज़फ़्फ़रपुर, दरभंगा और सारन की ख़बर लेने के लिए उनको भेजा। रेल, तार, सब बन्द थे। इसका भी पता न था कि वे किस तरह जा सकेंगे। उन्होंने हिम्मत करके नाव पर और पैदल जाकर पता लगाना शुरू किया।

एक दिन एक छोटी सभा हुई जिसमें बिहार-सेण्ट्रल-रिलीफ़-कमिटी के नाम से एक संस्था स्थापित की गयी। मैं उसका प्रधान बनाया गया और उसीके नाम मैंने अपील निकाली। उसके बाद गवर्नमेण्ट की ओर से सार्वजनिक सभा हुई। उसमें मैं भी अपील निकाली। मेरी अपील पर चारों ओर से रुपये और सामान आने लगे। अख़बारों में अब ध्वंस का विवरण भी छपने लगा। उसको पढ़-पढ़कर सारे देश में और विदेशों में भी बिहार के प्रति बहुत सहानुभूति उत्पन्न हो गयी। पंडित जवाहरलाल पटने आये। तिरहुत और मुंगेर में जाकर, जहाँ ध्वंस सबसे अधिक हुआ था, उन्होंने अपनी आँखों हाल देखा। मुंगेर में तो उन्होंने गिरे मकानों का मलबा खोदकर मुर्दे निकालने में भी मदद की और एक तरह से सबके लिए नमूना पेश किया।

बंगाल से संकट-त्राण-समिति की ओर से श्री सतीशचन्द्र गुप्त रुपये और माल-असबाब लेकर चले आये। मैंने गाँधीजी को भी तार द्वारा सूचना भेजी। वह उन दिनों बहुत दूर मद्रास-प्रान्त में कहीं हरिजन-यात्रा में

घूम रहे थे। तार पाते ही उन्होंने भी अपील निकाली और स्वयं पैसे जमा करने लगे। कमिटी की ओर से सभी जिलों में मुख्य कार्यकर्ता नियुक्त किये गये और उनकी मातहती में अनेकानेक काम करनेवाले काम करने लगे। हिन्दुस्तान के सभी प्रान्तों से रुपये आने लगे—कपड़ा, चावल, दूसरे खाद्य पदार्थ, बर्तन, कम्बल, दवा इत्यादि पहुँचने लगे। सब चीजों की जरूरत थी। पहले से हम आवश्यकतानुसार सबको पीड़ित जिलों में भेजने लगे। दो-चार दिनों के अन्दर ही काम बहुत बढ़ गया। हमारे साथी बहुतेरे जेलों में थे। गवर्नमेन्ट ने प्रायः सबको—जो तिरहुत, भागलपुर और पटना कमिश्नरियों के रहनेवाले थे—धीरे-धीरे छोड़ दिया। वे लोग जो आकर काम में जुट गये।

36. भाई की मृत्यु और ऋण-संकट

इधर मेरे घर में बड़ी विपत्ति आ गयी। मैं इसी कारण से पटना में अखिल भारतीय कमिटी की बैठक हो जाने के बाद वर्धा में होनेवाली वर्किंग कमिटी में शरीक न हो सका। अखिल भारतीय कमिटी की बैठक समाप्त होने के बाद बहुत जल्द ही यह विपत्ति आयी।

रिलीफ़ के काम में भाई ने भी बहुत परिश्रम किया था। छपरे में ही उनको अधिक काम करना पड़ा था। प्रान्तीय काम में भी उन्होंने अच्छा भाग लिया था। मैंने ऊपर एक जगह लिखा है कि उन्होंने आसाम में कुछ ज़मीन ली थी। कभी-कभी वहाँ जाया करते थे। अभी तक उसका कोई समुचित प्रबन्ध न हो सका था। वह मई के महीने में वहाँ एक बार गये। वहाँ से लौटकर आये तो उनको ज्वर हो गया। वह जगह बहुत मलेरिया-ग्रस्त थी। उनको मलेरिया ने वहीं पकड़ा जिसका असर यहाँ घर लौटने पर मालूम हुआ। पर उससे वह अच्छे हो गये। मैं एक दिन छपरे गया तो उनको अच्छा पाया, पर देखा कि वह बंक का काम करने लगे हैं। उस समय वह बहुत कमजोर थे। मैंने

मना किया, कहा कि अभी कुछ और आराम कर लें, शक्ति हो जाने पर ही काम करें। यह सब कहकर मैं पटने चला आया। मेरे पटना लौटने के दो-चार दिनों के अन्दर ही एक दिन दोपहर को छपरे से तार आया कि उनकी तबीयत खराब है, डाक्टर रघुनाथशरण को मैं भेज दूं अथवा साथ लेकर आऊं। तार पढ़कर मेरी चिन्ता बढ़ गयी। यह तार छपरे के सिविल सर्जन डाक्टर राजेश्वर प्रसाद की राय से दिया गया था।

जब तक डाक्टर शरण से मिलकर छपरा जाने का निश्चय हो रहा था तब तक दोपहर का स्टीमर, जो गंगा-पार जाता है, निकल गया। हम लोगों ने रात तक ठहरना मुनासिब नहीं समझा। मोटर पर डाक्टर शरण के साथ मैं रवाना हो गया। नाव से मोटर को गंगा-पार करके हम लोग आगे चले। भूकम्प के कारण सड़कें तो यों ही खराब हो गयी थीं, रेल बन्द हो जाने से जो बहुत बैलगाड़ियाँ और लारियाँ चली थीं उससे सड़कों की हालत और भी रद्दी हो गयी थी।

हम लोग प्रायः दस बजे रात को छपरे पहुँचे। वहाँ के सभी डाक्टर बहुत चाव और प्रेम से चिकित्सा कर रहे थे। डाक्टर राजेश्वर प्रसाद तो दिन-रात वहीं रहते थे। जब उन्होंने हालत काबू के बाहर देखी तभी तार दिया था। ज्वर के अलावा इस समय 'किडनी' की हालत खराब हो गयी थी। इसलिए पेशाब और खून का जाँचना अत्यन्त आवश्यक था। उनको पहले कुछ चीनी की शिकायत थी और उसकी चिकित्सा भी करायी गयी थी जिससे वह कुछ संभल गयी थी; पर कमजोरी की हालत में शायद उसने भी जोर कर दिया था।

रात को ही पेशाब इत्यादि लेकर आदमी पटने भेजा गया। डाक्टरों ने बहुत परिश्रम किया, पर दिन-दिन बीमारी बढ़ती गयी। पटने से वैद्यराज पंडित व्रजबिहारी चौबेजी को भी बुलाया। उन्होंने भी

कुछ उपचार किया, पर किसीका कुछ असर न हुआ। अन्त में डाक्टरों की राय हुई कि शायद एक 'किडनी' निकालने से कुछ लाभ हो। डाक्टर राजेश्वरप्रसाद अच्छे सर्जन हैं पर वह यह जवाबदेही अकेले लेना नहीं चाहते थे। डाक्टर बनर्जी को बुलाने का प्रयत्न किया गया, पर वह मेडिकल कालेज बन्द होने के कारण पटने में नहीं थे।

मुँगेर में डाक्टर वटुकदेवप्रसाद वर्मा सिविल सर्जन थे। वह भी अच्छे सर्जन हैं। वह बुलाये गये, पर उनके हाथ में कोई दूसरा मरीज था, जिसको तुरन्त छोड़कर वह कहीं बाहर जा नहीं सकते थे। लखनऊ में तार दिया कि वहाँ के नामी सर्जन डाक्टर भाटिया बुलाये जाएँ, पर वह भी न आ सके। कलकत्ते तार दिया तो वहाँ के मित्रों ने नामी सर्जन डाक्टर पंचानन चटर्जी को भेजा। पटने के कर्नल एलेक्जेण्डर को भी बुलाया। सबने देखकर यही कहा कि कमज़ोरी इतनी है कि छुरी लगाना ठीक न होगा। हार मानकर नश्तर की बात छोड़ दी गयी। इसके दो दिनों के अन्दर ही उनका स्वर्गवास हो गया।

पिताजी के मरने के समय थोड़ा कर्ज़ था। उनकी मृत्यु के बाद एक भतीजी की शादी हुई, उसमें भी कुछ कर्ज़ हो गया। इस तरह कई हज़ार का कर्ज़ था। पर इतनी ज़मीन्दारी के लिए कुछ इतना बड़ा न था कि अदा ही न हो सके, विशेषकर अगर कुछ बाहर की नगदी आमदनी हो जाय। भाई साहब बिहार-बंक की छपरा-शाखा के मैनेजर थे। पर उनको इतना वेतन नहीं मिलता था कि वहाँ का सब खर्च चलाकर वह कुछ बचा सकें। मैं कुछ कमाता था ज़रूर; पर खर्च भी काफ़ी करता था। इसलिए यह कर्ज़ अदा न हो सका। एक और लड़की की शादी आ गयी। उसमें भी खर्च पड़ा। चाची मर गयीं। उनके श्राद्ध में खर्च पड़ा। पर इन सबसे कर्ज़ बढ़ा नहीं; बल्कि आमदनी कुछ बढ़ गयी; क्योंकि रु. 1200 की सालाना आमदनी जो चाची को

तीर्थाटन के लिए मिली हुई थी, अब बचने लगी। तो भी किसी तरह बोझ हल्का न हुआ।

घर सब लोग बड़े आराम से रहते। ऊपरी ठाट-बाट बहुत अच्छा था। नाम और यश अच्छा फैला। भाई साहब बहुत ही उदार थे। खर्च काफ़ी किया करते थे, किसी व्यसन या शौकीनी में नहीं; पर तरह-तरह के दूसरे खर्च थे। इसलिए अच्छा प्रबन्ध होने पर भी पहले का कर्ज़ अदा न हो सका। वह आशा लगाये थे कि मैं इतने पैसे कमा लूँगा कि कर्ज़ आसानी से अदा हो जायगा। जब मैंने वकालत छोड़ने का निश्चय कर लिया तो उनकी सब आशाओं पर पानी फिर गया। पर कभी उन्होंने एक शब्द भी मुझसे कहा नहीं।

उनकी मृत्यु हो जाने के बाद हमको इसका पता लगा कि हम कितने गहरे पानी में उतर गये हैं। लोगों का उनपर इतना विश्वास था कि बिना किसी लिखा-पढ़ी के लोगों ने हज़ारों-हज़ार का कर्ज़ उन्हें दे दिया था। अगर वह जीते रहते, तो और भी न मालूम कितने हज़ार उनको लोगों से मिल जाते।

उनके मरने के बाद जब मुझे यह सब देखने की नौबत आयी, तो पहले तो मुझे यही नहीं मालूम था कि किसको कितना देना है और किसको कितना पाना है। मैं अधेरे में ठहर गया। उनके एक विश्वासी बैंक के नौकर थे जो उनको निजी लेन-देन की भी पूरी ख़बर रखते थे। उन्होंने मुझे कुछ बताया और पीछे महाजन लोग एक-एक करके खुद मेरे पास आये और कहने लगे। जब मुझे पूरा पता चल गया कि कितना देना है, तो मैं बहुत परेशान हो गया; क्योंकि सब कुछ बेच देने पर भी सबका कर्ज़ अदा होना कठिन था। हाँ, यदि अच्छी क़ीमत आ जाय, तो किसी तरह शायद सब अदा हो सके। पर अब ज़मीन्दारी की अच्छी क़ीमत देता कौन है और वह भी जब जल्दी में बेचना हो।

इतने कर्ज़ का भार सिर पर रखना मेरे लिए असह्य था। मैं चाहता था कि किसी तरह लोग ज़मीन्दारी ले लेते और हमको मुक्त कर देते तो बड़ी कृपा होती। पर सभी महाजन ज़मीन्दारी लेना नहीं चाहते थे। मैंने सबसे कहा कि मैं कोई न कोई प्रबन्ध करके एक साल में रुपये अदा करने का प्रयत्न करूँगा और जो ज़मीन्दारी लेना चाहें उनको तत्काल ही लिख देने को तैयार हूँ। लोगों का भाई साहब पर इतना विश्वास था—उनके साथ इतना प्रेम था और मुझपर भी विश्वास था कि सभी बिना हिचक के मेरी बात मान गये। मैं चाहता था कि अब सब काम छोड़-छाड़कर ज़मीन्दारी बेचने के प्रबन्ध में लग जाऊँ और इस बोझ को हटाकर फिर सार्वजनिक काम में आ लगूँ।

इतने ही में बम्बई में होनेवाली कांग्रेस का समय नज़दीक आने लगा और सभापति के लिए मेरा नाम आया। कराची-कांग्रेस के बाद उड़ीसा में होनेवाली कांग्रेस के सभापतित्व के लिए भी मेरा नाम आया था और एक प्रकार से मैं चुना भी गया था। पर सत्याग्रह छिड़ जाने के कारण वह कांग्रेस हुई ही नहीं। जब फिर बाजाब्ता कांग्रेस होने लगी तो स्वाभाविकरीति से मेरा ही नाम लोगों को जँचने लगा। इसके अलावा भूकम्प-संकट-निवारण के काम से सारे देश में मेरे प्रति बहुत प्रेम और विश्वास बढ़ गया था। गांधीजी भी चाहते थे कि मैं ही सभापति होऊँ।

भाई की मृत्यु के आघात से मैं घायल था ही। ऊपर कर्ज़ के बोझ का पता लगते ही मैं और भी कातर हो गया था। मैंने ऐसी अवस्था में कांग्रेस के सभापतित्व का बोझ लेना अनुचित और असम्भव समझा। महात्माजी की ओर से श्री महादेव भाई देसाई ने लिखा कि भूकम्प-संबन्धी काम से सन्तुष्ट होकर देश मेरे प्रति विश्वास और श्रद्धा दिखलाना चाहता है, मुझे इस भार को लेना उचित है, कर्ज़ के सम्बन्ध में सेठ जमनालालजी से कुछ बातें हुई हैं, वह देखेंगे। शायद वहाँ यह समझा गया

था कि उनका ही अधिक कर्ज़ है तो वह कोई उपाय सोचकर कोई प्रबन्ध कर देंगे।

भाई साहब गये। जमनालालजी उसका स्थान ले लिया। मैं पहले-जैसा ही निठल्ला बना रहा। उनके प्रति शब्दों द्वारा कृतज्ञता नहीं प्रकट की जा सकती। साथ ही, मैं अपने भतीजे जनार्दन और दोनों लड़के मृत्युञ्जय तथा धनञ्जय को भी हृदय से आशीर्वाद देता हूँ कि ऋण-संकट के इस कठिन समय में वे भी अधीर नहीं हुए। घर का सब कुछ खुशी-खुशी हँसते-हँसते उन्होंने दे डाला। एक प्रकार से पहला काम उनका इस बोझ को ढोना और कर्ज़ को अदा करने के लिए दस्तावेज पर दस्तखत करना ही हुआ। उन्होंने न कभी शिकायत की और न मुँह बनाया। अब वे अपना कमाते-खाते हैं। जो बोझ अभी रह गया है उसको भी हटाने की चिन्ता में वे हैं। इस हिम्मत और सब्र के लिए उनको भी बधाई है। ईश्वर उनका भला करेगा। अभी ही अच्छे दिन लौटते दीखने लगे हैं।

बम्बई-कांग्रेस के दिन निकट आ गये। 1931 के मार्च के बाद कांग्रेस का बाज़ाब्ता अधिवेशन यहीं होनेवाला था। इस बीच में दूसरी बार का सत्याग्रह हो चुका था। ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने सुधार-सम्बन्धी अपनी नीति श्वेत-पत्र के रूप में प्रकाशित कर दी थी। विलायत में नया विधान उसी के अनुसार बन रहा था। कांग्रेस गैर-क़ानूनी संस्था अब नहीं थी। वह इन विषयों पर अपनी राय देनेवाली थी। साथ ही 1934 के नवम्बर में ही—अर्थात् कांग्रेस-अधिवेशन के चन्द हफ़्तों के अन्दर ही केन्द्रीय असेम्बली के सदस्यों का चुनाव होनेवाला था। इस सम्बन्ध में भी कांग्रेस को अन्तिम फ़ैसला देना था। भावी-विधान-सम्बन्धी नीति भी निर्धारित करनी थी। इसलिए अधिवेशन का महत्व काफ़ी था।

मैंने परिपाटी के अनुसार अपना भाषण लिखा। पर वह अभी पूरा न हो पाया था। मैंने सोचा था कि कुछ पहले ही वर्धा चला जाऊँगा और वह

एकान्त में बैठकर उसे समाप्त करूँगा। वहाँ गांधीजी से भी बातें कर लेने का मौका मिलेगा। पर जो भाषण मैंने लिखा था उसमें प्रस्तावित विधान की काफ़ी आलोचना थी। मैंने उसे डाक्टर सच्चिदानन्दसिंह को दिखाया कि कहीं किसी अंश में, अज्ञान अथवा असावधानी के कारण, मैंने कुछ भूल तो नहीं की है। उन्होंने उसे देखा और मुझे विश्वास दिलाया कि आलोचना ठीक है और कोई भूल नहीं है। मैं पटने से जमशेदपुर गया। वहीं से वर्धा जानेवाला था। पर वहाँ मुझे ज्वर दमा का दौरा हो गया। वहीं ठहर जाना पड़ा। अच्छा होकर वर्धा गया। वहाँ की अच्छी आब-हवा में जल्द ही अच्छा हो गया। भाषण भी वहीं समाप्त कर सका।

37. केन्द्रीय असम्बली का चुनाव

बम्बई से मैं पटने आया। पहला काम जो कांग्रेस को करना था, वह केन्द्रीय असम्बली के लिए अपने उम्मीदवारों को खड़ा करना और उनको चुनवाना। गवर्नमेण्ट समझती थी कि 1930–1934 के सत्याग्रह के कारण उसने कांग्रेस को इतना दबा दिया है कि वह अब फिर उठ न सकेगी। लार्ड विलिंगडन ने 1932 के आरम्भ में, जब राउण्ड-टेबुल से लौटने के बाद फिर सत्याग्रह पर गांधीजी और वर्किंग कमिटी को मजबूर किया गया था, कहा था कि दो-चार हफ़्ते में आंदोलन दबा दिया जायगा। उन्होंने इसका पूरा प्रयत्न भी किया था।

पर दो-चार हफ़्तों के बदले दो बरसों तक आंदोलन चलता रहा और शुरू में तो बहुत ज़ोरों से चला था। तो भी अभी कोई ऐसा मौक़ा नहीं आया था जहाँ कांग्रेस की लोकप्रियता का पूरा परिचय मिल जाता। भूकम्प की सहायता और बम्बई के अधिवेशन से कुछ-कुछ पता चला था; पर अब भी सब लोगों को और विशेषकर गवर्नमेण्ट के लोगों को इस बात का विश्वास नहीं था कि कांग्रेस सारे देश में लोकप्रिय संस्था है।

इस चुनाव में एक प्रकार से इस बात की जाँच होनेवाली थी कि कांग्रेस कहाँ तक जनता का प्रतिनिधित्व करती है। हम भी उस चुनाव को इसी कारण बहुत महत्व देते थे।

यद्यपि चुनाव में कांग्रेस की जीत हुई थी और दूसरे प्रकार से भी मालूम पड़ता था कि कांग्रेस जीवित है, तथापि हम यह आवश्यक समझते कि उसका संगठन मजबूत बना दिया जाय, क्योंकि चार बरसों की लडाई में, जब कांग्रेस-कमिटियाँ गैर-क़ानूनी संस्था करार दे दी गयी थीं, कांग्रेस का संगठन तितर-बितर हो गया था। उसको एक बार पुनर्जीवित और सुसंगठित करना आवश्यक था। इसलिए कमिटियों की ओर से इस बात का तकाजा भी हुआ कि मैं सभापति की हैसियत से दौरा करूँ। जाड़ों में तो मेरे लिए यह सम्भव नहीं था, पर मैंने सोचा कि जाड़ा कम होते ही मैं बाजाब्ता सिलसिलेवार दौरा शुरू करूँगा--इस बीच में, अपने स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए, अगर हो सका तो जहाँ-तहाँ जाऊँगा।

दिल्ली में असम्बली का काम जनवरी में शुरू होनेवाला था। वहीं वर्किंग कमिटी की बैठक भी की गयी। वहाँ महात्माजी भी इत्तफ़ाक से आ गये थे। वहाँ के लोगों की इच्छा भी थी कि कांग्रेस सभापति का दौरा वहीं से शुरू किया जाय। इसलिए जब मैं वहाँ पहुँचा तो वहाँ के लोगों ने भी बड़ी शान से स्वागत किया। बम्बई ने स्वागत का एक खासा नमूना क़ायम कर दिया था। दिल्ली में भी उसी प्रकार का स्वागत बहुत बड़े जुलूस में किया गया। शहर के लोगों ने बहुत उत्साह दिखलाया। मैं अभी तक कमज़ोर ही था; पर मैंने उसे किसी तरह सँभाल लिया।

मैं जलूस के कुछ बाद ही महात्माजी से मिला। उनको सब खबर मिल चुकी थी। उन्होंने एक मार्के की बात कही जिसका जिक्र शायद मैंने

स्वतंत्र रूप से ऊपर किया है। उन्होंने कहा कि अन्त में हमको मजबूरन सत्याग्रह बन्द करना पड़ा था, क्योंकि जनता का उसमें उत्साह नहीं रह गया था और लोग कुछ दब-से गये थे; पर कांग्रेस के प्रति उनका प्रेम कम नहीं हुआ था, लोग चाहते थे कि कोई मौक़ा मिले तो उसे दिखलावें। इसलिए इस प्रकार के स्वागत में इतना उत्साह देखने में आता है, जैसा तुमने बम्बई में देखा अथवा दिल्ली में देख रहे हो—ऐसा ही स्वागत जहाँ जाओगे लोग करेंगे।

मैं इस प्रकार के भीड़-भड़क्के से बहुत घबराता हूँ। विशेषकर स्वागत और जुलूस से तो बहुत डरता हूँ। पर मैंने उस पद की ख़ातिर बर्दाश्त करना मंजूर कर लिया। महात्माजी ने मेरी इस राय को पसन्द किया कि मैं सभी सूबों में दौरा करूँ। मैंने यह कांग्रेस के संगठन के विचार से ज़रूरी समझा। मैंने देखा कि जहाँ 1932-33 में बहुत जगहों में लोग कांग्रेसी कार्यकर्ताओं को अपने यहाँ ठहराने से भी हिचकते थे, वहाँ 1935 में कांग्रेस के अध्यक्ष का इतने ज़ोर-शोर से स्वागत करने पर तैयार थे

सभी जगहों से इस दौरे के संबन्ध में मेरे साथ पत्र-व्यवहार होने लगा। तिथियाँ सोची जाने लगीं। इस यात्रा को शुरू करने के पहले अपने साथ निजी काम के लिए भी चक्रधरशरण को रख लिया। वह मुज़फ्फरपुर ज़िले के बेलसंड थाने के अंतर्गत परतापुर गाँव के रहनेवाले हैं। 1920 से ही वह कांग्रेस का काम करते आये हैं। भूकम्प के समय मुजफ़्फ़रपुर में उन्होंने अच्छा काम किया था। रिलीफ़ में भी बड़े उत्साह और ईमानदारी से काम किया था।

पर इस यात्रा को शुरू करने के पहले एक दूसरा प्रश्न था जिसका हल आवश्यक था। श्री मैकडोनल्ड ने साम्प्रदायिक निर्णय देकर मुसलमानों को बहुत खुश कर दिया था; पर हिन्दू उनसे बहुत क्षुब्ध थे। सभी समझदार लोग मानते थे कि यदि कोई समझौता हो जाय तो वह सबसे अच्छा होगा। इसके लिए डाक्टर अनसारी बहुत ही उत्सुक थे। उन्होंने

श्री जिन्ना से लिखा-पढ़ी शुरू की थी। दिल्ली में वर्किंग-कमिटि के सामने उन्होंने यह बात पेश की। वर्किंग-कमिटि ने कहा कि यदि कोई रास्ता निकल सके, तो उसे जरूर ढूँढ़ निकालना चाहिए।

इसी बीच श्री जिन्ना दिल्ली पहुँच गये। एक दिन डाक्टर अन्सारी के मकान पर वर्किंग-कमिटि के मेम्बरों से उनकी मुलाकात और कुछ बातचीत हुई। पर वह बातचीत ऐसी नहीं थी कि इतने लोग एक साथ ठीक तरह से कर सकें और वह इतनी जल्द तय हो जाय। अन्त में श्री जिन्ना की राय हुई कि वह और कांग्रेस के अध्यक्ष ही बातें करें, अगर कुछ रास्ता निकल आवे तो अपनी-अपनी संस्था से उसकी मंजूरी करा लेवें। डाक्टर अन्सारी के घर पर पहले दिन जो बातें जिस ढंग से हुईं उनसे और उस ढंग से मुझे कुछ विशेष आशा नहीं मालूम हुई। तो भी यह बात ऐसी थी कि इसमें अपनी ओर से किसी तरह की कोताही नहीं की जा सकती थी, इसलिए मैं इस में दिलो-जान से पड़ गया।

मुझे इस बात का शक था कि मैं इस तरह के काम के लिए कहाँ तक योग्य हूँ। पर मुझे डाक्टर अनसारी और सरदार वल्लभ भाई पटेल की पूरी मदद थी। महात्माजी का आशीर्वाद भी था। इससे मैं समझता था कि कोई भूल न होने पावेगी। बातचीत बहुत लम्बी चली। मुझे कई हफ्तों तक दिल्ली में रह जाना पड़ा। श्री जिन्ना और मैंने खुलासगी और सफाई से बातें कीं। जहाँ तक मैं समझ सका, हम दोनों का एक दूसरे के प्रति भाव भी अच्छा ही रहा। मैं बातचीत के बाद जो कुछ बातें हुईं, उनका खुलासा उसी दिन लिख लिया करता। उस समय के वे लिखे हुए नोट आज भी कहीं मौजूद मिलेंगे। मंत्री श्री कृपालानी भी प्रायः बराबर दिल्ली में ही रहे। उनसे तथा डाक्टर अनसारी से सभी बातें मैं बता दिया करता। श्रीमती सरोजिनी नायडू भी बहुत करके दिल्ली में रहीं। उनको भी सब बातें मालूम हो जातीं। महात्माजी तथा सरदार

को भी मैं पत्रों द्वारा सब बातों से आगाह रखता। सब बातों को यहाँ विस्तार से देना अनावश्यक है।

अन्त में बात खत्म करनी पड़ी। समझौता नहीं हो सका। इसका मुझे बहुत अफ़सोस रहा; क्योंकि मैं समझता था कि हम जिन शर्तों पर समझौता करना चाहते थे और जिनपर हमने श्री जिन्ना को राज़ी कर लिया था, वे शर्तें देश के लिए हितकर होतीं।

इधर तो बात दूसरी हो गयी है। अब वह चाहते हैं कि कांग्रेस मुस्लिम लीग को मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधि-संस्था मान ले और स्वयं हिन्दुओं की ओर से समझौता करने पर राज़ी हो जाय! कांग्रेस न उस समय केवल हिन्दुओं की संस्था थी और न आज है। वह हमेशा से राष्ट्रीय संस्था रही जिसमें सब जातियों और सब धर्मों के लोगों के लिए स्थान है और रहेगा। उसकी नीति भी वैसी ही राष्ट्रीय नीति है और रहेगी। उस दिन समझौता नहीं हुआ। यह दुख की बात है, क्योंकि उसके बाद परिस्थिति बराबर बिगड़ती ही गयी है, और आज तो वायुमंडल भी विषाक्त है।

जब तक यह बातचीत चलती रही, मैं दिल्ली में ही रहा। पर बीच-बीच में जहाँ-तहाँ एक-दो दिनों के लिए चला जाता। मैं इलाहाबाद और आगरा इन्हीं दिनों में हो आया। मार्च से बाजाब्ता सिलसिलेवार दौरा करने का निश्चय किया। मैंने सबसे पहले पंजाब जाने का ही निश्चय किया। मार्च में वहाँ गया। सबसे पहले मैं जालंधर में उतारा गया। वहाँ से कुछ दूर पर खादी का मुख्य केन्द्र आदमपुर में है। मैं वहाँ गया और वहाँ का काम देखा। जालंधर से लाहौर गया। वहाँ से दूसरे स्थानों में जाने का कार्यक्रम बना था। लाहौर में मेरे रेल से उतरने पर हस्ब-मामूल बड़ा जुलूस निकाला गया। कुछ दूर जुलूस जाने के बाद ही बहुत ज़ोरों से पानी बरसने लगा। मैं खूब भीग गया। पर जुलूस समाप्त करके ही मुझे फ़ुर्सत दी गयी। जुलूस

समाप्त होते कुछ रात हो गयी। मैं लोक सेवक-समिति (Servants of People Society) के लाजपतराय-भवन में भोजन करने के लिए गया।

भोजनोपरान्त डाक्टर सत्यपाल के घर पर ठहरने के लिए गया। पानी में भीगना और उसके बाद रात की सर्दी लग जाना मुझसे बर्दाश्त न हो सका। दूसरे दिन सवेरे ही खाँसी-दमा शुरू हो गया। मैंने उम्मीद की कि मेरे स्वास्थ्य के लिए अच्छे दिन आ गये और यह व्यतिक्रम दो-एक दिनों में ठीक हो जायगा। पर वैसा न हो सका, मैं बीमार पड़ गया। नतीजा यह हुआ कि मुझे सारे कार्यक्रम को बदल देना पड़ा। लाहौर में मैं कई दिनों तक पड़ा रहा। पानी भी कुछ न कुछ कई दिनों तक बरसता रहा। मेरे अच्छा होते-होते वह सारा समय, जो मैंने पंजाब-भ्रमण के लिए दिया था, समाप्त हो गया। पंजाब का दौरा स्थगित करके मैं सीधे बिहार वापस आ गया।

अप्रैल से जो यात्राक्रम बना था, उसे मैं निर्विघ्न प्रायः जून के अन्त तक ठीक-ठीक पूरा करता रहा। अप्रैल में जबलपुर में अखिल भारतीय कमिटी की एक बैठक की गयी। इस बैठक के लिए कोई विशेष कार्यक्रम अथवा महत्व का प्रश्न नहीं था। पर मैंने सोचा था कि साल में दो-तीन बार अखिल भारतीय कमिटी को अवश्य मिलना चाहिए, ताकि सदस्यों को कांग्रेस-सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करने का अवसर मिले। मध्यप्रदेश में बहुत दिनों से अखिल भारतीय कमिटी की बैठक नहीं हुई थी। इस-लिए मैंने वहाँ के लोगों की इच्छा के अनुसार वहीं बैठक बुलायी। वह सफलतापूर्वक समाप्त हुई। वहाँ से मैं यात्रा पर निकल गया। यात्रा का आरम्भ बरार-प्रान्त में हुआ। वहाँ प्रान्तीय राजनीतिक कान्फ्रेन्स थी जिसके सभापति पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त थे। कान्फ्रेन्स समाप्त करके मैं बरार के सभी ज़िलों में गया।

सभी जगहों में सभाएँ होतीं, स्वागत होता, जलूस निकलता; लोगों में उत्साह काफ़ी दीखता। मेरे लिए इस प्रकार की यात्रा का, अपने सूबे के बाहर, यह पहला ही अनुभव था; वह अनुभव अच्छा और सुखद था; क्योंकि भिन्न-भिन्न प्रान्तों को देखने के अलावा कांग्रेस के संगठन को सुदृढ़ बनाने का कुछ मौका मिलता और जन-साधारण से सम्पर्क बढ़ता।

बरार की यात्रा समाप्त करके मैं सीधे कर्नाटक चला गया। वहाँ के सभी जिलों में दौरा किया। उसके बाद सारे महाराष्ट्र में गया। मैं सवेरे उठता और नहा-धोकर प्रायः 7 बजे मोटर पर निकल जाता। स्थान-स्थान पर सभा करता हुआ दिन के 12 बजे तक कहीं पहुँचता, जहाँ भोजनादि का प्रबन्ध रहता। भोजन और विश्राम के बाद प्रायः दो बजे फिर निकल जाता और रात के 8–9 बजे तक सभा करता। रात को विश्राम के स्थान पर पहुँच जाता। रेल पर कम चलता, अधिकतर मोटर पर ही सारी यात्रा समाप्त हुई। बरार, कर्नाटक और महाराष्ट्र की यात्रा में ही प्रायः आधा अप्रैल, पूरा मई और प्रायः पूरा जून समाप्त हो गया। इस बीच में, केवल दो-तीन दिनों के लिए मैं एक बार अपने घर गया— भाई साहब के वार्षिक श्राद्ध के लिए, जून के आरम्भ में।

38· दक्षिण भारत का दौरा

मैं वर्धा से मद्रास के लिए रवाना हुआ। वहाँ पर अखिल भारतीय कमिटी की बैठक के बाद दक्षिण भारत की यात्रा आरम्भ की गयी। यहाँ का भी कार्यक्रम वैसा ही था—दिन भर मोटर पर चलना, रास्ते में स्थान-स्थान पर भाषण देते जाना, दोपहर को कहीं कुछ देर के लिए भोजन और विश्राम के वास्ते ठहर जाना, फिर रात के 9–10 बजे तक वही सिलसिला जारी रखना। प्रायः संध्या तक किसी बड़े स्थान पर पहुँच जाता था जहाँ रात को रहता और जहाँ संध्या के बाद ही सभा होती।

दक्षिण भारत की यात्रा में भाषा का प्रश्न उपस्थित हुआ। मध्य-प्रदेश और प्रायः महाराष्ट्र तक में भी मैंने हिन्दी में ही भाषण किये। कहीं-कहीं, खासकर गाँवों में, श्री शंकरराव देव मेरे भाषण का उल्था कर देते; पर अधिकांश जगहों में हिन्दी से ही काम चल जाता। पर तमिलनाडु में यह बात नहीं थी। वहाँ तो मद्रास से ही मुझे अंग्रेज़ी में भाषण करना पड़ा। मैं जो कुछ कहता उसके प्रत्येक वाक्य का भाषान्तर कोई स्थानीय सज्जन कर दिया करते।

दक्षिण भारत में हिन्दी-प्रचार का काम 1918 से ही, महात्मा गांधीजी की प्रेरणा से, हो रहा है। तमिल-प्रदेश में भी हज़ारों स्त्री-पुरुष ऐसे हो गये हैं जो हिन्दी बोल और समझ लेते हैं। मैं जिस बड़े शहर में पहुँचता, हिन्दी-प्रचारक से मुलाक़ात हो जाती। कुछ तो वहाँ के ही निवासी थे जिन्होंने हिन्दी सीख ली है; कुछ उत्तर भारत के रहनेवाले हैं जो बिहार तथा युक्तप्रान्त से जाकर वहाँ उस काम में लगे हुए हैं। वहाँ के लोगों का हिन्दी के प्रति प्रेम और श्रद्धा अवर्णनीय है। हिन्दी-प्रचार का काम विशेषकर पढ़े-लिखे लोगों में ही अधिक हुआ है।

स्त्रियों ने इसमें उतना ही रस लिया है जितना पुरुषों ने। हिन्दी-पाठशालाओं में बूढ़े और बच्चे, स्त्रियाँ और पुरुष, एक साथ शिक्षा पाते हैं। जब मैं एक बार और दक्षिण में गया था तो मैंने देखा था कि एक ही सभा में पिता और पुत्र, माता और पुत्री को हिन्दी-परीक्षा पास करने के प्रमाणपत्र एक साथ ही दिये गये थे। यह सिलसिला अभी तक जारी है। लाखों लोगों ने हिन्दी का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। तो भी हिन्दी में भाषण करना अभी सम्भव न था; क्योंकि हज़ारों की संख्या में जो लोग जमा होते उनमें हिन्दी समझनेवाले थोड़े ही होते। अंगरेज़ी जाननेवालों की संख्या हिन्दी जाननेवालों से कहीं ज़्यादा होती; तो भी सारी जनता में उनकी गणना भी बहुत थोड़ी ही होती। इसलिए, मैं

चाहे अंगरेजी में बोलता या हिन्दी में, सभा में उपस्थित सौ आदमियों में प्रायः 90 ऐसे होंगे ही, जो न हिन्दी समझते होंगे न अंगरेज़ी, और उनके लिए भाषण का भाषान्तर हर हालत में आवश्यक होता।

मद्रास-जैसे बड़े शहर में शायद अंगरेज़ी जाननेवालों की संख्या गाँवों की अपेक्षा बहुत अधिक होती; वहाँ भी अंगरेज़ी का भाषण समझनेवालों की गिनती थोड़ी ही होगी। पर जो थोड़े अंगरेज़ी जाननेवाले होते उनके बराबर भी हिन्दी जाननेवाले न होते। किन्तु इससे भी अधिक बड़ा कारण अंगरेज़ी में भाषण करने का यह होता कि अंगरेज़ी से तमिल में उल्था करनेवाला आसानी से सभी जगहों में मिल जाता; किन्तु हिन्दी से तमिल में उल्था करनेवाला मिलना कठिन होता। इसलिए मुझे तमिल-नाड़ु में और केरल प्रदेश में अधिकतर अंगरेज़ी में ही भाषण करने पड़े। बहुत दिनों से अंगरेज़ी अधिक बोलने की आदत छूट गयी थी; पर दो-चार सभाओं के बाद ही फिर मुँह खुल गया और मैं अच्छी तरह से भाषण कर सका।

एक और चीज़ थी जिसका ज़िक्र कर देना अच्छा होगा। मद्रास में 'हिन्दू' नामक अंगरेज़ी दैनिक-पत्र बहुत पुराना और प्रतिष्ठित है। इसकी बिक्री बहुत काफ़ी हैं। छपाई इत्यादि भी बहुत सुन्दर है। इसका सम्पादन और समाचार-संग्रह भी बहुत ही अच्छा होता है। यदि यह कहा जाय कि हिन्दुस्तान के सभी हिन्दुस्तानी पत्रों में, जो अंगरेजी में छपते हैं, यह सबसे अच्छा है, तो अतिशयोक्ति न होगी। इसका मुझे अनुभव वहाँ पूरी तरह से हो गया।

मैं जिस दिन मद्रास पहुँचा, स्टेशन पर लोगों ने स्वागत किया। वहीं एक छोटी-सी सभा हो गयी—छोटी इस माने में कि जो सभा समुद्र के किनारे होती, उसके मुकाबले में वह छोटी ही थी। पर तो भी वहाँ हजारों आदमी मौजूद थे। वहाँ मुझे सम्मान के साथ उतारकर लोग ले गये।

वहीं मुझे पहले-पहल उस प्रान्त में कुछ कहना पड़ा। वहाँ से जलूस निकला, जो शहर के कई हिस्सों से गुजरता हुआ मैलापुर गया, जहाँ मुझे ठहरना था। रास्ते में 'हिन्दू' का आफ़िस पड़ता था। जलूस जब 'हिन्दू' आफ़िस के सामने पहुँचा, 'हिन्दू' का एक अंक, जो उन दिनों संध्या के समय निकला करता था, मेरे हाथ में दिया गया। उसमें मैंने स्टेशन के स्वागत का वर्णन और वहाँ के दृश्य का चित्र तथा अपना भाषण भी देख लिया।

मैं जहाँ-कहीं गया, 'हिन्दू' का संवाद-दाता मौजूद मिला करता। वह मेरे पूरे भाषण को, जो अंगरेज़ी में ही हुआ करता था, पूरा-पूरा अपने पत्र के पास लिख भेजा करता। इस तरह तमिलनाडु में और केरल में मेरे भाषणों की जैसी पूरी और अच्छी रिपोर्ट छपी वैसी और कहीं नहीं। 'हिन्दू' के संवाददाता सभी जगहों में होते। ऐसा नहीं था कि कोई संवाददाता मेरे साथ-साथ सफ़र में फिरता रहा हो। स्थानीय संवाददाता भी शीघ्रलिपि जानते थे, अंगरेज़ी की अच्छी लियाकत रखते थे और अपने काम में इतने तत्पर होते थे कि मद्रास से किसी को मेरे साथ घूमने की ज़रूरत न हुई।

उन सभी स्थानों का नाम देना तो कठिन है जहाँ-जहाँ मैं गया। यदि मैं ऐसा कहूँ कि सारे सूबे में शायद ही कोई तालूका या शहर होगा जहाँ मैं नहीं गया, और एक तालूका से दूसरे तालूके तक के रास्ते में शायद ही कोई मुख्य स्थान होगा जहाँ मैं कुछ देर के लिए न ठहरा होऊँ, तो अत्युक्ति नहीं होगी। इस सफ़र में भी प्रायः सारा रास्ता मोटर पर ही कटा। कहीं-कहीं ऐसा हुआ कि एक रास्ते पर दो बार जाना पड़ा, तो वहाँ एक ओर से रेल पर सफ़र किया गया।

तमिलनाडु, केरल और आन्ध्र प्रदेशों में बहुत ज़बरदस्त स्वागत हुआ। प्रचार-कार्य भी काफ़ी हुआ। आन्ध्र में मैं सबसे पीछे आया।

वहाँ एक नयी बात यह हुई कि मेरे पूरे सफ़र में हिन्दी-प्रचार-सभा के श्री सत्यनारायण साथ रहे। वह आन्ध्र के रहनेवाले हैं। पर हिन्दी का ज्ञान उनका इतना अच्छा है कि यदि वह भाषण देने लगें तो किसी हिन्दी-भाषी को यह संदेह न होगा कि वह हिन्दी-भाषी नहीं हैं। इसलिए वहाँ मेरे भाषणों के भाषान्तर का प्रश्न बहुत आसान हो गया। आन्ध्र में तमिल की अपेक्षा हिन्दी-प्रचार अधिक हुआ भी है। वहाँ मैंने यह भी देखा कि बहुत जगहों में लोग मेरा भाषण हिन्दी में ही सुनना चाहते थे। इसलिए, आन्ध्र में कुछ स्थानों को छोड़कर और सब जगहों में हिन्दी में ही भाषण किया। सत्यनारायणजी जैसा भाषान्तरकार साथ में था। जहाँ तक मैं समझ सकता था, मेरे भावों का वह बहुत सुन्दर रीति से तेलुगु में उल्था करके बता देते थे। बात तो यह है कि वहाँ भी सौ में 90 ऐसे ही लोग हुआ करते थे जो न हिन्दी जानते थे और न अंगरेज़ी; उनको तेलुगु-उल्था के लिए हर हालत में इन्तज़ार करना पड़ता था, चाहे मैं अंगरेज़ी में बोलूँ या हिन्दी में। यही बात तमिलनाडु में भी थी। पर आन्ध्र के जो थोड़े अंगरेज़ी जाननेवाले होते वे भी या तो हिन्दी समझ लेते या तेलुगु-भाषान्तर के लिए इन्तज़ार करने को तैयार होते। तमिलनाडु के अंगरेज़ी जाननेवाले इतना सब्र नहीं कर सकते।

इस यात्रा से मुझे इस बात का पता चला कि हिन्दी-प्रचार-सभा ने कितने महत्व का काम किया है और वह काम राष्ट्र-निर्माण में कितना सहायक हुआ है तथा आगे कितना सहायक होगा। एक बात और देखने में आयी। मैं जहाँ गया वहाँ जो थोड़े मुसलमान मिले उनमें बहुतेरे टूटी-फूटी हिन्दी कुछ न कुछ समझ लेते थे। उनकी बोली तो शायद उस स्थान की ही बोली होगी, पर वे न मालूम किस तरह कुछ-कुछ ऐसी बोली समझ लेते जिसे मैं समझ सकता। वह न शुद्ध हिन्दी होती और न फ़ारसी-मिश्रित शुद्ध उर्दू। वह तो होती एक ऐसी सरल भाषा जिसे प्रत्येक हिन्दी-भाषी समझ सकता है। इस भाषा को वहाँ के लोग

'मुसलमानी' कहा करते थे। इससे अनुमान हुआ कि इसे मुसलमान ही उत्तर भारत से उस तरफ़ ले गये थे।

कार्यक्रम ऐसा बना था कि दिसम्बर की 20 या 24 तारीख तक मैं प्रायः तीन महीनों में सफ़र समाप्त करके वर्धा पहुँच जाऊँ और वहाँ से बम्बई जाऊँ जहाँ कांग्रेस की जयन्ती मनाने का प्रबन्ध किया गया था। मैं आन्ध्र में सबसे पीछे विशाखपट्टनम् में पहुँचा। वहाँ से ट्रेन पर सवार होकर रायपुर आया। रायपुर में, श्री पंडित रविशंकर शुक्लजी के आग्रह से, वहाँ की सेवा-समिति के उत्सव में शरीक होने का पहले से ही वचन दे चुका था। उस उत्सव को देखकर वर्धा गया। वर्धा में एक या दो दिन ठहरकर बम्बई चला गया।

मुझे नागपुर जाना था। वहाँ अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन होनेवाला था, जिसका मैं सभापति निर्वाचित हुआ था और वह ठीक कांग्रेस के बाद तीन-चार दिनों के अन्दर ही होनेवाला था। इसलिए मैं उसी गाड़ी से गया जिससे महात्माजी गये। उनके साथ ही वर्धा गया और वहाँ से सम्मेलन के दिन नागपुर आया।

वर्धा में बैठकर मैंने भाषण लिखा। कुछ दिनों से इस बात पर बहस चल रही थी कि हिन्दी की शब्दावली में विदेशी भाषाओं के शब्दों को लेना चाहिए या नहीं। सच पूछिये तो प्रश्न को यह रूप देना भी उचित नहीं है; क्योंकि कोई भी हिन्दी का लेखक – चाहे वह कितना भी विदेशी शब्दों का विरोधी क्यों न हो—सभी विदेशी शब्दों का बहिष्कार नहीं करना चाहता, और न अपने लेखों अथवा भाषणों में उनका बहिष्कार करता है। यह झगड़ा हिन्दी और उर्दू का । हिन्दी में, जैसा उसका रूप आज हो गया है और होता जा रहा है, संस्कृत के शब्दों का बाहुल्य होता है। उर्दू में, जिस तरह वह आज बढ़ और फूल-फल रही है, अरबी और फ़ारसी शब्दों की बहुतायत हुआ करती है। दोनों में बहुतेरे अच्छे

सुलेखक हैं जो सादी और सहज भाषा भी लिखते हैं। दोनों में कुछ ऐसे लोग भी हैं जो संस्कृत, फ़ारसी या अरबी शब्दों को देखकर घबड़ाते हैं और डरते हैं कि इनसे हिन्दी का रूप विकृत हो जायगा और वह उर्दू बन जायगी तथा उर्दू बिगड़कर हिन्दी बन जायगी। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो हिन्दी को हिन्दुओं की और उर्दू को मुसलमानों की भाषा मानते हैं। इस तरह इस झगड़े में कुछ साम्प्रदायिकता भी आ गयी है—यद्यपि बहुतेरे मुसलमान कवि और लेखक हुए, जिन्होंने हिन्दी की सेवा की है तथा उसी तरह बहुतेरे हिन्दुओं ने उर्दू की सेवा की है।

कांग्रेस के विधान में जहाँ भाषा का ज़िक्र है वहाँ न 'हिन्दी' का व्यवहार किया है न 'उर्दू' शब्द का, बल्कि वहाँ 'हिन्दुस्तानी' शब्द का का ही इस्तेमाल हुआ है। जब गांधीजी ने दक्षिण-भारत में राष्ट्रभाषा का प्रचार 1918 में आरम्भ किया था तब हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के तत्वावधान में ही आरम्भ कराया था। उसी समय वह इन्दौर में साहित्य-सम्मेलन के सभापति हुए थे। कांग्रेस के विधान में 'हिन्दुस्तानी' शब्द का व्यवहार महात्माजी और श्री पुरुषोत्तमदास टंडन ने ही किया था। उनके ही शब्द को कांग्रेस ने मान लिया था। दक्षिण-भारत में जिस सभा के द्वारा राष्ट्रभाषा-प्रचार का काम आज भी किया जा रहा है, उसका नाम दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार सभा है। इससे स्पष्ट है कि गाँधीजी ने जब से इस काम को हाथ में लिया है, उन्होंने हिन्दी और उर्दू को दो भिन्न-भिन्न भाषा नहीं माना है। यद्यपि दोनों की शब्दावली में अंतर है और वह अन्तर दिन-दिन बढ़ता जा रहा है, तथापि दोनों का व्याकरण प्रायः एक ही है और वह व्याकरण दूसरी किसी भाषा के व्याकरण से पूर-पूरा नहीं मिलता। भाषा-तत्वविदों का कहना है कि भाषा की विभिन्नता शब्दावली से उतनी नहीं होती, जितनी उसके वाक्यों के गठन और व्याकरण के नियमों के कारण होती है। इसलिए यह मानना अनुचित और भाषा-विज्ञान के नियमों के प्रतिकूल नहीं है कि हिन्दी और उर्दू एक ही भाषा के नाम हैं, अथवा एक ही

भाषा की दो शैलियाँ हैं—दो विभिन्न भाषाएँ नहीं। 'हिन्दुस्तानी' हिन्दी भी है और उर्दू भी; क्योंकि वह प्रायः क्लिष्ट शब्दों को काम में नहीं लाती। वह अपना रूप ऐसा रखती है जिसको हिन्दीवाले और उर्दूवाले दोनों ही अपना समझ सकें।

मैं इस बात का हिमायती हूँ कि जिस भाषा का शब्द-भंडार जितना भरा-पूरा होगा वह भाषा उतनी ही अधिक उन्नत होगी। यदि एक ही अर्थ में कई शब्द होंगे, तो समय पाकर उनके अर्थ में थोड़ा-बहुत भेद होता जायगा और उनमें बारीकियाँ आती जाएँगी। विचार की सूक्ष्मता को व्यक्त करने की शक्ति ऐसी भाषा में अधिक होती जायेगी। जीती-जागती भाषा दूसरी भाषाओं के संपर्क से, यदि उसमें ग्रहण और संग्रह करने की शक्ति है, तो लाभ उठाती जायगी और उसका शब्द-भण्डार बढ़ता जायगा। वह इस बात से डरकर घोंघे की तरह अपनी खपड़िया के अन्दर घुसकर अपने को बन्द नहीं कर लेती कि बाहर की हवा से, बाहर के शब्दों से वह पिस जायगी और अपना अस्तित्व ही खो देगी। वह हिम्मत के साथ खुले आम संघर्ष में आवेगी और दूसरी भाषाओं के अच्छे भावग्राही शब्दों को अपने में मिला लेगी। हाँ, ऐसा करने में वह अपने नियमों को, अपने रूप को नहीं बदलेगी—अपनी पोशाक और अपनी सजावट को भले ही बदल ले और उसमें भले ही विचित्रता लावे।

मैंने अपने भाषण का यही विषय रखा और हिन्दी-साहित्य-सेवियों के विचारार्थ यह प्रश्न उपस्थित किया। मेरा कहना था कि हिन्दी को विदेशी शब्दों के ग्रहण करने में हिचकना नहीं चाहिए—चाहे वे फ़ारसी और अरबी के हों या अंगरेजी के, पर जो शब्द हिन्दी में आवें उन्हें हिन्दी बन जाना चाहिए—अर्थात् हिन्दी में आकर वे अपने साथ अरबी-फ़ारसी या अंगरेज़ी का व्याकरण हिन्दी में न दाखिल करें, बल्कि वे हिन्दी व्याकरण के अनुशासन के अधीन होकर रह जायँ। मेरा यही विचार आज भी है।

उस समय से आज तक इस बात पर बहुत बहस छिड़ी रही है; पर मैं अपने विचार में अधिक दृढ़ होता गया हूँ। और, केवल इन तीन भाषाओं के ही शब्द नहीं लेने पड़ेंगे, हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनते-बनते बहुतेरे ग्रामीण शब्दों को भी अपने में ले लेना पड़ेगा—जो प्रान्तीय भाषाएँ हैं उनकी शब्दावली के भी बहुतेरे शब्द ले लेने पड़ेंगे।

इस सम्बन्ध का एक दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रश्न भी है जिसपर विचार कर लेना आवश्यक है। क्या आज की आधुनिक हिन्दी और उर्दू एक हैं या हो सकती हैं? व्याकरण प्रायः एक होते हुए भी शब्दावली का अन्तर बहुत बढ़ता जा रहा है। आज केवल हिन्दी अथवा उर्दू जाननेवालों की सभा में ऐसी भाषा बोली जा सकती है जिसे वहाँ के श्रोता न समझ सकें—ऐसी संस्कृत-मिश्रित हिन्दी जिसको उर्दू जाननेवाले न समझ सकें और ऐसी फारसी-अरबी-मिश्रित उर्दू जो हिन्दी-दाँ के लिए आम-फ़हम न हो। यह भी संभव है—बहुत कठिन नहीं है—कि ऐसी भाषा बोली जाय जिसको केवल हिन्दी जाननेवाले और सिर्फ उर्दू जाननेवाले अच्छी तरह समझ जाएँ। मैं इसीको 'हिन्दुस्तानी' अथवा 'हिन्दुस्थानी' नाम देता हूँ। बड़ी-बड़ी सभाओं के लिए, साधारण समाचार-पत्रों के लिए, किस्से-कहानियों के लिए और दिल पर असर करनेवाली कविता के लिए भी इस तरह की सुगम भाषा हो सकती है, इसमें सन्देह नहीं है। हाँ, जब उच्च कोटि की वैज्ञानिक पुस्तक लिखनी हो, तो उसके लिए बहुतेरे वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों की ज़रूरत पड़ सकती है। ऐसे शब्द हमेशा सहज और सुबोध नहीं हो सकते। यह किसी भी भाषा में नहीं है। अंगरेज़ी एक उन्नत भाषा समझी जाती है। यदि अंगरेज़ी में लिखी कोई विज्ञान की पुस्तक अंगरेज़ी के अच्छे ज्ञाता को भी दी जाय, तो वह उसे ठीक समझ न सकेगा; क्योंकि उसमें—पंक्ति-पंक्ति में इस तरह के पारिभाषिक शब्द मिलेंगे, जिनको केवल अंगरेजी साहित्य का जाननेवाला साधारणतः नहीं जानता—जानता केवल वही है

जो उस विज्ञान-विद्या से परिचित है। यों तो अब इस प्रकार की कहानियाँ और ऐसे उपन्यास भी लिखे जाते हैं जिनमें बहुत-से वैज्ञानिक शब्द आ जाते हैं। पर मैं इस समय इस प्रकार की विशेष पुस्तकों पर विचार नहीं कर रहा हूँ। साधारणतया किसी भी मामूली अंगरेज़ी जाननेवाले के सामने भौतिक विज्ञान की अथवा चिकित्सा-विषय की कोई अंगरेज़ी पुस्तक रख दी जाय, तो वह उसे प्रायः ठीक-ठीक नहीं समझेगा, यद्यपि उसका व्याकरण उसके लिए सरल होगा। पर उसके बहुतेरे शब्द ऐसे होंगे जो उसके लिए अपरिचित-से होंगे।

इसी तरह, यदि हिन्दी उर्दू में इस प्रकार के वैज्ञानिक और दार्शनिक ग्रंथ लिखे जायँ, तो उनकी भाषा एक भिन्न प्रकार की होगी। पारिभाषिक शब्द किसी संस्कृत (अथवा संस्कारयुक्त) भाषा से ही लिये जा सकते हैं, अथवा किसी संस्कृत वा संस्कार-युक्त भाषा की मदद से बनाये जा सकते हैं—वह भाषा चाहे संस्कृत हो या अरबी। अंगरेज़ी में भी इस प्रकार के शब्द बहुतायत करके लैटिन से ही बने होते हैं। यहाँ पर मैं मानता हूँ कि इन वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दों के लिए हमको संस्कृत अथवा अरबी की ओर जाना होगा—हो सकता है कि यूरोपीय भाषा के बहुतेरे शब्दों को ज्यों का त्यों ले लेना पड़े। किन्तु भारतवर्ष में तो इस प्रकार के शब्द यदि अधिकतर संस्कृत के ही होंगे, तो उनका ज्यादा प्रचार होगा; क्योंकि यहाँ की जितनी प्रान्तीय भाषाएँ हैं सभी संस्कृत के साथ गहरा सम्बन्ध रखती हैं। यहाँ तक कि दक्षिण भारत की भाषाएँ भी संस्कृत से बहुत ज्यादा प्रभावित हुई हैं। यदि उनको भी नये शब्द लेने पड़े, जिन्हें वे स्वयं नहीं बना सकतीं, तो वे संस्कृत से ही लेना पसन्द करेंगी। उदाहरणार्थ, यदि हमको 'ज्योतिष' शब्द लेना पड़े तो वह 'इल्मनजूम' की अपेक्षा अधिक सुगमता से हिन्दी-भाषी प्रान्तों में समझा जायगा—बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र, तमिल, तेलुगु, केरल, पंजाब इत्यादि में भी लोगों की समझ में आवेगा। उसी विज्ञान के शब्द 'नक्षत्र' और

'ग्रह' को भी लोग सारे भारतवर्ष में अधिक सुगमता से समझ लेंगे। इसलिए मैं समझता हूँ कि इन पारिभाषिक शब्दों के लिए राष्ट्रभाषा को, चाहे हम जिस नाम से पुकारें, हमको संस्कृत पर ही निर्भर करना होगा। हो सकता है कि विदेश से कुछ शब्द ऐसे आ गये हैं जो प्रचलित हो गये हैं। उनको वैसे ही रहने देना उचित और अनिवार्य है। पर जहाँ नये शब्द गढ़ने हों वहाँ संस्कृत की सहायता लेना ही उचित और सुकर है। इसमें उर्दूवालों का यदि आग्रह हो, तो वे जैसे चाहें अपने शब्द बना लें। पर वे ध्यान रक्खें कि उनके वे शब्द सार्वदेशिक न हो सकेंगे—सिर्फ़ उर्दू के ही रह जाएँगे। इसलिए, जहाँ तक मामूली बोलचाल और समाचार-पत्रों की भाषा का सम्बन्ध है, हम ऐसी ही भाषा व्यवहार में ला सकते हैं जो हिन्दी और उर्दू दोनों के लिए ग्राह्य हों। पर जहाँ पारिभाषिक शब्दों का काम पड़ेगा वहाँ दोनों विलग हो सकती हैं—यद्यपि यह भी आवश्यक या अनिवार्य नहीं है। और, जैसा ऊपर कहा गया है, वह (पारिभाषिक) तभी सर्वमान्य और सार्वदेशिक शब्द हो सकता है जब वह संस्कृत की सहायता से बना हो।

राष्ट्रभाषा का सम्बन्ध विशेषकर प्रतिदिन के कारबार से ही रहता है। इसलिए जहाँ तक मैं समझ सकता हूँ, वह ऐसी होनी चाहिए जिसे हिन्दी और उर्दू दोनों ही अपनी समझ सकें। वैज्ञानिक और दार्शनिक ग्रंथों की, शायद उच्च कोटि के साहित्य की भी भाषा हिन्दी और उर्दू में अलग-अलग होगी। यदि हम इस विभेद को मान लें तो हिन्दी-उर्दू का झगड़ा बहुतांश में मिट सकता है। हम तो सारे भारत के आपस के व्यवहार के लिए एक राष्ट्रभाषा चाहते हैं—वह अंगरेजी नहीं हो सकती, वह हिन्दी ही हो सकती है, चाहे उसे हम हिन्दुस्तानी कहें अथवा उर्दू कहें। आज की प्रचलित प्रान्तीय भाषाओं के स्थान को उसे नहीं लेना है; वे अपने-अपने स्थान पर ज्यों की त्यों कायम रहकर प्रान्तीय काम में और प्रान्तीय साहित्य में व्यवहृत होती रहेंगी। सार्वदेशिक व्यवहार के लिए ही हमको राष्ट्रभाषा

चाहिए। यदि उसको हम फ़ारसी-अरबी के बहुत-से अप्रचलित शब्दों से भरकर कठिन बना देंगे, तो वह बंगाल, आसाम, उत्कल, आन्ध्र, तमिल, केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात इत्यादि में मुश्किल से प्रवेश पा सकेगी। अतएव उसको वहाँ के लिए सुगम बनाने में जहाँ तक हो सके इन प्रान्तीय भाषाओं के प्रचलित शब्दों को लेना हितकर और सहायक होगा। साथ ही, हम यह भी नहीं भूल सकते कि पंजाब, सीमा-प्रान्त और कुछ पश्चिमी युक्त प्रदेश की भाषा में भी उर्दू का पुट अधिक है—विशेषकर शिक्षित मुसलमानों में वहाँ फ़ारसी-अरबी के शब्द अधिक आसानी से बोले और समझे जाते हैं। राष्ट्रभाषा ऐसे लोगों को भी अपने दायरे के बाहर नहीं कर सकती। इसलिए राष्ट्रभाषा को उदार नीति ग्रहण करनी पड़ेगी और बहिष्कार-नीति छोड़नी पड़ेगी।

मैंने स्वयं अपने देशव्यापी दौरे में देखा है कि मुझे दो प्रकार की हिन्दी बोलनी पड़ती है। जब मैं सीमाप्रान्त और पंजाब में गया—विशेषकर ऐसी सभाओं में जहाँ मुसलमानों की संख्या अधिक थी—तो मैं फ़ारसी-मिश्रित हिन्दी बोलकर अपने विचारों को व्यक्त कर सका और लोगों को समझा सका। बंगाल, महाराष्ट्र इत्यादि और दक्षिण-भारत में भी, जहाँ कुछ हिन्दी समझी जाती थी, मैं संस्कृत-बहुल हिन्दी ही बोलकर अपना काम कर सका। मैं न तो अरबी-फारसी का आलिम हूँ और न संस्कृत का पण्डित। अरबी का ज्ञान तो बिलकुल नहीं।। फ़ारसी का थोड़ा ज्ञान है। संस्कृत का भी वैसा ही अन्दाज़ा का परिचय है। पर मैं दोनों प्रकार की भाषाएँ कुछ-कुछ बोल सकता हूँ। दोनों प्रकार के श्रोताओं में मेरे भाषण आसानी से समझ लिये जाते हैं। इसका एक विशेष कारण इन भाषाओं का अपना अज्ञान ही मैं समझता हूँ। इसलिए मैं मानता हूँ कि मेरे जैसे लोगों के लिए—और ऐसे लोगों की संख्या अधिक है और रहेगी—ऐसी राष्ट्रभाषा का प्रयोग सहज है। आलिमों और पण्डितों के लिए उसमें अधिक कठिनाई है और रहेगी; क्योंकि जहाँ

कहीं शब्द की कमी मालूम हुई, वे झट संस्कृत या अरबी की शरण में दौड़ जाते हैं और मेरे-जैसे लोगों की वहाँ तक पहुँच नहीं होती; इसलिए हम अपनी छोटी निधि में से ही काम की चीज़ खोज निकालने को बाध्य होते हैं, जो अधिकतर मेरे-जैसे लोगों के लिए विशेष परिचित ही होगी।

39. मेरी सख्त बीमारी

कांग्रेस ने जुलाई 1937 में मंत्रिमण्डल बनाया था। हरिपुरा-अधिवेशन 1938 की फरवरी में हुआ। उन सात-आठ महीनों में मंत्रिमण्डल ने अपना काम सभी सूबों में ज़ोरों से शुरू कर दिया था। पर अभी तक कोई काम पूरा नहीं हो सका था। इसी समय एक अड़चन आ पड़ी। कांग्रेस के चुनाव-पत्र में एक वादा यह भी था कि हम राजबन्दी लोगों को छुड़ायेंगे। इसका प्रयत्न वे करने लगे, पर पूरी सफ़लता न होती। इसी बीच अण्डमान टापू के राजबन्दियों ने अनशन आरंभ कर दिया। बहुत कष्ट के बाद भारत–सरकार इस बात पर राज़ी हुई कि वे टापू से हटाकर हिन्दुस्तान में अपने-अपने सूबे में भेज दिये जायँ। जब वे यहाँ आ गये, तो अब प्रायः प्रान्तीय सरकारों के अधिकार में हो गये। इस तरह उनको मुक्त करने का प्रश्न आया। मंत्रिमण्डल उन्हें छोड़ना चाहता था। पर गवर्नर इसपर राज़ी नहीं होते थे। मेरी बीमारी की हालत में ही मौलाना अबुलकलाम आजाद पटने आकर मुझसे अस्पताल में मिले। मैं उनसे बहुत बातें न कर सका। वह यहाँ से जाकर सरदार बल्लभभाई और महात्माजी से मिले। सबका फ़ैसला हुआ कि गवर्नर यदि राजबन्दियों को छोड़ने पर राज़ी न हों तो मंत्री लोग इस्तीफा दे दें। युक्तप्रदेश और बिहार में, मंत्रिमण्डल ने बहुत ज़ोर लगाया, पर गवर्नर राज़ी न हुए। अन्त में, हरिपुरा-कांग्रेस में जाने के पहले, मंत्रिमण्डल ने दोनों जगहों में इस्तीफा दे दिया। उसे गवर्नर ने उस समय मंजूर नहीं किया। यह कहकर बात टाल रखी कि जब तक वह इस बात पर विचार करते हैं और दूसरे मंत्री ढूंढ़ते हैं, तब

तक वे काम जारी रखें। बिहार के और मंत्री लोग तो हरिपुरा चले गये, सिर्फ़ अनुग्रह बाबू चारपाई पर पड़े काम करते रहे। मैं भी वहीं उनका साथ देता रहा।

इस इस्तीफ़ा का असर देखना था। यद्यपि एक प्रकार से वायसराय और गवर्नरों ने अपने विशेष अधिकार को काम में न लाने का वचन दे दिया था, तथापि यह पहला ही अवसर था जब उन्होंने उसे काम में लाना चाहा। काँग्रेसी मंत्रिमण्डल ने युक्तप्रान्त और बिहार में, उसे नहीं माना, पदत्याग कर दिया। यह बात सारे देश में और ब्रिटिश गवर्नमेण्ट पर भी जाहिर हो गयी कि काँग्रेसी मंत्रिमण्डल अपनी बात पर अड़ा रहेगा, यदि वह ऐसा न करने पावेगा तो पद-त्याग कर देगा—अपनी बात न छोड़ेगा। यह पहला इम्तहान था जिसमें ब्रिटिश गवर्नमेण्ट और मंत्रिमण्डल दोनों की परीक्षा हो रही थी। ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने मंत्रिमण्डल की बात मान ली और राजबन्दियों को छोड़ने का भार उन पर ही दे दिया। वहाँ हरिपुरा में इस्तीफ़ा की ख़बर पहुँचते ही वायुमण्डल एकदम बदल गया। जो लोग मंत्रि-पद के विरोधी थे, और कहा करते थे कि मंत्रि-पद ग्रहण कर लेने पर ये लोग अपनी जगहों के साथ चिपके रह जायँगे तथा अपने वादे भी भूल जाएँगे, उनकी भी आँखें खुल गयी—यदि वे सचमुच ऐसा मानते थे तो उनको भी अपने विचार बदलने पड़े। मैं तो कांग्रेस में जा ही न सका; पर जो कुछ सुना उससे मालूम हुआ कि इस इस्तीफा के कारण जो थोड़ा-बहुत विरोध मंत्रि-पद ग्रहण करने के सम्बन्ध में था, वह अब जाता रहा।

हरिपुरा-कांग्रेस का समारोह भी अपूर्व था। श्री सुभाषचन्द्र बोस सभापति थे। वहाँ का प्रबन्ध इतने बड़े पैमाने पर और इतने खर्च के साथ किया गया था कि उसका मुकाबला अभी तक और किसी अधिवेशन ने नहीं किया। हम लोगों के अस्पताल में रहते-रहते ही हरिपुरा से लोग वापस आ गये। इस्तीफ़े भी वापस हो गये। मंत्रिमण्डल फ़िर काम

करने लगा। अभी तक जो कार्यक्रम बन चुके थे, उनका काम सात-आठ महीनों में पूरा नहीं हो पाया था, इसलिए मंत्रिमण्डल का फिर अपनी जगह पर आ जाना अच्छा ही हुआ। अब अधिक उत्साह के साथ काम होने लगा; क्योंकि कोई कह नहीं सकता था कि कब और किस विषय को लेकर फिर इस्तीफा देना पड़े, इसलिए जो कुछ हो सके, कर गुजरना ही अच्छा होगा।

40. गांधी-सेवा-संघ

मैं अस्पताल में मार्च के अन्तिम सप्ताह तक रह गया। जब तबीयत कुछ अच्छी हो गयी और ताकत भी आ गयी तो वहाँ से निकला। गांधी-सेवा-संघ का वार्षिक सम्मेलन उस साल उड़ीसा में, पुरी के पास 'डेलांग' गाँव में होनेवाला था। वहीं मैं सीधे चला गया। महात्माजी भी वहाँ आनेवाले थे। मेरी बहन, मृत्युञ्जय की माँ और मेरी भौजाई भी साथ गयीं। वहाँ हम लोग कई दिनों तक रहे। दूसरे सम्मेलनों की तरह यहाँ भी तात्विक विषयों पर चर्चा होती रही। सब लोग मिलकर एक साथ चर्खा चलाते। संध्या के समय जनता जमा हो जाती, तो कुछ लोग व्याख्यान देते। गांधी-सेवा-संघ सम्मेलन चार-पाँच ही बार हुए, पर इनका महत्व यह था कि यहाँ गांधीजी के समक्ष सभी सदस्यों को कई दिनों तक रहने का सुअवसर मिल जाता। सिद्धांत की बातों पर आपस में बहुत बहस होती। उपस्थित विषयों पर गांधीजी की सम्मति मिल जाती। जो सदस्य जहाँ जिस काम में लगा रहता वहाँ उत्साह के साथ जाकर फिर काम करता।

इस संघ का उद्देश्य कभी कोई राजनीतिक दल तैयार करने का नहीं था। इसने कभी ऐसा किया भी नहीं। कभी इस संघ की ओर से किसीने किसी चुनाव में भाग नहीं लिया, चाहे वह कांग्रेस का हो या म्युनिसिपैलिटी या डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड या असम्बली या कौन्सिल का।

अधिकांश तो इन सभी संस्थाओं से अपने को अलग रखते थे। वे किसी चुनाव से सम्बन्ध नहीं रखते थे। अगर कहीं कोई चुनाव में आता भी तो व्यक्तिगत रूप से, अपनी सेवा के बल पर, न कि संघ की सदस्यता से लाभ उठाकर। संघ में सेठ जमनालाल बजाज, सरदार वल्लभभाई पटेल और मुझ-जैसे लोग भी थे जो कांग्रेस की वर्किंग कमिटी के सदस्य थे तथा अपने-अपने स्थान में कांग्रेस के काम में प्रमुख भाग लेते थे। स्वयं गांधीजी सदस्य तो नहीं थे, पर मार्ग-प्रदर्शक तो थे ही। तो भी यह कहना बिलकुल बेबुनियाद था कि जैसे कांग्रेस के अन्दर स्वराज्य-पार्टी अथवा कांग्रेस-सोशलिस्ट-पार्टी बनी थी वैसी ही संस्था यह भी थी। इसका उद्देश्य सेवक तैयार करना था, उनके द्वार रचनात्मक काम में यथासाध्य मदद पहुँचाना था। उन सेवकों से अपेक्षा की जाती थी कि वे अपने जीवन और उदाहरण से गांधीजी के सिद्धान्तों का यथासाध्य प्रचार करते रहेंगे। पर कुछ लोगों ने उसपर यह आक्षेप लगाया कि वह भी एक दल है। रामगढ़-कांग्रेस से कुछ पहले जो संघ का वार्षिक अधिवेशन बंगाल में हुआ था, उसमें संघ को विघटित करने का निश्चय कर लिया गया।

डाक्टरों की राय थी कि मुझे अभी कुछ और आराम कर लेने की जरूरत है। इसलिए जब गर्मी शुरू हुई, तो मैंने निश्चय किया कि कुछ दिनों तक किसी स्वास्थ्यकर स्थान में जाकर रह जाऊँ। इसलिए मैंने नासिक में जाकर रहने का निश्चय किया। वहाँ पर सेठ बिड़ला का एक मकान था जिसका वह खासकर, हवा बदलने के लिए निवास स्थान की तरह इस्तेमाल करते हैं। मैंने वहीं जाकर ठहरने का निश्चय किया। सेठ रामेश्वरदास बिड़ला ने बम्बई से भी सब प्रबन्ध कर दिया। नासिक जाने का विचार एक और कारण से हुआ। मई के महीने में बम्बई में अखिल भारतीय कमिटी की बैठक होनेवाली थी। सोचा कि नासिक बम्बई के नजदीक है, वहाँ से आसानी से सभा में शरीक हो सकूँगा।

नासिक जाने के पहले एक और काम था जिसके सम्बन्ध में मुझे कुछ कर लेना था। बिहार-मंत्रिमण्डल का विचार था कि गांवों के सुधार के लिए सरकारी तौर पर कुछ काम किया जाय। इसके लिए वह एक विभाग बनाना चाहता था। इसके लिए एक ऐसी योजना बनानी थी जिसके अनुसार काम किया जाय। इस काम के लिए एक ऐसा आदमी भी चाहिए था जो उस दृष्टि से इस काम को चलावे जिसे मंत्रिमण्डल पसन्द करता था। अब तक ग्राम-सुधार का काम गवर्नमेण्ट की ओर से कुछ भी नहीं हुआ था। यह पहला प्रोग्राम था। इसमें विशेषकर गांवों के रहनेवालों की हालत हर तरह से सुधारने का ही विचार था। अब तक जो लोग सरकारी काम किया करते थे वे एक प्रकार से जनता के मालिक और शासक बनकर ही किया करते थे। जरूरत थी कि कुछ लोग सेवक बनकर काम करें। यही काम इस विभाग के जिम्मे लगाने का निश्चय किया गया। मैंने एक योजना बनायी। गवर्नमेण्ट ने पंडित प्रजापति मिश्र को इस विभाग का चार्ज दिया। दूसरे कार्यकर्ताओं की नियुक्ति भी हुई। इनमें बहुतेरे कांग्रेसी लोगों को नौकरी देनी थी। वह काम ही ऐसा था जिसका थोड़ा-बहुत अनुभव अगर किसीको था तो काँग्रेसी कार्यकर्ताओं को ही, दूसरों को नहीं; क्योंकि किसीने बिहार-प्रान्त में इस प्रकार का कोई काम किया ही न था। पर इनके साथ-साथ दूसरे लोग भी नियुक्त किये गये। समझा गया कि सबको कुछ दिनों के लिए शिक्षा देकर तैयार कर दिया जायगा। जो योजना मैं बना रहा था वह पूरी नहीं हो पायी थी, इसीलिए पंडित प्रजापति मिश्र नासिक में जाकर मुझसे मिले। वहीं पर हमने उसे पूरा किया। जब तक यह विभाग काम करता रहा, उसी साँचे पर काम हुआ। मेरा विचार है कि इससे जनता की भलाई हो रही थी; पर मंत्रिमण्डल के इस्तीफा देने के बाद इसका रुख आहिस्ता-आहिस्ता बदलने लगा। अन्त में गवर्नमेण्ट ने इसे तोड़ दिया।

नासिक-यात्रा में मेरे साथ एक और साथी मिले जिनका कुछ जिक्र कर देना आवश्यक मालूम होता है। वह थे एक सज्जन जिनका नाम था श्री देवरातजी ब्रह्मचारी। वह कर्नाटक-प्रदेश में समुद्र के किनारे पर बसे। गोकर्ण नामक तीर्थस्थान के ब्राह्मण थे। मुजफ्फरपुर में सुहृद-संघ के वार्षिकोत्सव में मैं गया था। वहीं उनसे पहली मुलाकात हुई थी। वहाँ उन्होंने एक प्रशंसापत्र की तरह की चीज तैयार की थी, जिसको पढ़ सुनाया था। संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। पर वहाँ उनसे अधिक बातों या परिचय नहीं हो सका था। एक दिन मैं सदाकत-आश्रम में बैठा था। मेरी बहन भी थीं। उस दिन कोई पुण्यतिथि थी जिस कारण बहुत लोग गंगास्नान के लिए आये थे। मैंने देखा कि वह सज्जन भी उनमें थे। बहन का ख्याल उनकी ओर गया। उनका आदर-सत्कार उन्होंने किया। जब बातें हुईं तो उनकी विद्वत्ता इत्यादि का कुछ पता चला। मैंने उनको निमन्त्रण दिया कि आप मेरे साथ कुछ दिनों तक रहें। उन्होंने उसे स्वीकार किया। वह यों ही भ्रमण करते-करते बिहार आ गये थे। मैं जीरादेई गया। वह भी वहाँ आये। कुछ दिनों तक हम लोग साथ रहे। उनको मैंने नासिक भी बुला लिया। वह वैदिक ब्राह्मण थे। वेद उनको प्रायः मुखस्थ थे। उपनिषद् तो वह बिना पुस्तक देखे ही सुना जाते थे। उनसे मालूम हुआ कि कर्नाटक में आज भी यह परिपाटी है। वहाँ ब्राह्मण वेदों और उपनिषदों को कंठस्थ कर लेते हैं। वे अपना काम करते हुए, खेती करने के समय भी, इनका पाठ किया करते हैं। नासिक में हम लोग घूमते-फिरते, खूब टहलते और वह संध्या के समय उपनिषद की व्याख्या करते। वह योगी थे। उनका विचार था कि मैं यदि कुछ क्रिया नियम-पूर्वक किया करूँ, तो दमा छूट जाय। मैंने धौति-क्रिया उनकी देख-रेख में आरम्भ की।

देवरातजी का समागम बहुत ही अच्छा रहा। वहीं मालूम हुआ कि वह पहले कुछ दिनों तक श्री रमण महर्षि के साथ तिरुवण्णामलै में भी रह

चुके हैं। श्री महर्षि की जीवनी में उनकी विद्वत्ता और उनके प्रेममय नाट्य का ज़िक्र है। वह महर्षि के साथ रहनेवाले उद्भट विद्वान गणपति शास्त्री के शिष्य थे। इसी संपर्क से वहाँ आश्रम में जाकर कुछ बरस पहले रहे थे। वह गोकर्ण में एक पाठशाला और गोशाला चला रहे हैं। उत्तर भारत में तो भ्रमण के लिए वह चले आये थे। हिन्दी भी उन्होंने अच्छी सीख ली थी। उनकी भाषा सुनकर उनके सम्बन्ध में कोई ऐसा नहीं कह सकता था कि वह दक्षिण भारत के रहनेवाले हैं। उनके साथ नासिक से हम त्र्यम्बक भी दर्शनार्थ गये। यह स्थान गोदावरी का उद्गम-स्थल समझा जाता है।

नासिक से मैं बम्बई गया। वहाँ वर्किंग कमिटी और अखिल भारतीय कमिटी की बैठक होनेवाली थी। हरिपुरा-काँग्रेस के बाद अखिल भारतीय कमिटी का यह पहला अधिवेशन था जिसमें श्री सुभाषचन्द्र बोस सभापतित्व करनेवाले थे। आठ-दस महीनों से काँग्रेसी-मंत्रिमण्डल काम करते आ रहे थे। कुछ लोग उसकी कड़ी टीकाएँ करते आ रहे थे। कहीं-कहीं काँग्रेसी लोग ही उसके विरुद्ध आपस में दलबन्दी कर रहे थे जिससे उनके काम में कुछ कठिनाई भी पड़ रही थी। मुमकिन था कि इस विषय पर वहाँ विचार हो, यद्यपि हरिपुरा के समय दो सूबों में उनके इस्तीफा देने से वायुमण्डल में बहुत फर्क पड़ गया था। तो भी जो लोग असन्तुष्ट थे, अपनी हरकतों से बाज नहीं आ रहे थे। मैं तो वहाँ जाकर बीमार पड़ गया। अधिवेशन में शरीक न हो सका। एक काम महत्त्व का हुआ। वहीं निश्चय हुआ कि सारे देश-भर के लिए एक प्लैनिङ्ग-कमिटी बनायी जाय, जो सभी सूबों से राय और मदद लेकर एक कार्यक्रम बनावे, जिसके अनुसार सभी सूबों में मंत्रिमण्डल काम करें। पंडित जवाहरलाल नेहरू इसके सभापति और प्रोफेसर के. टी. शाह मंत्री बनाये गये। सभी सूबों के कांग्रेसी मंत्रि-मंडल इस कमिटी की पूरी मदद करने लगे। दूसरे सूबों के लोगों ने भी मदद देना मंजूर किया। यह कमिटी

कई उपसमितियों में बँटकर काम करती रही। इसकी रिपोर्ट प्रायः तैयार हो चुकी थी। पर पूरी तैयार होने के पहले ही काँग्रेस का गवर्नमेण्ट से झगड़ा छिड़ गया। वह रिपोर्ट पास होकर देश के सामने न आ सकी।

त्रिपुरी-काँग्रेस का अधिवेशन एक अजीब और दुःख स्थिति में हुआ। चुनाव के बाद समाचार-पत्रों में जो वाद-विवाद हुआ, उससे आपस में काफ़ी कटुता आ गयी थी। सुभाष बाबू के समर्थक लोग हम लोगों पर यह दोषारोपण कर रहे थे कि उनके बहुमत से चुने जाने के कारण हम लोग रुष्ट हो गये हैं, उनको नीचा दिखाना चाहते हैं, इसीलिए हमने वर्किंग कमिटी से इतीफा दे दिया है और हर तरह उनके रास्ते में अड़ंगा लगा रहे हैं। हम यह समझते थे कि यदि सचमुच बहुमत उनके साथ है, तो काँग्रेस चलाने का पूरा भार उनको उठाना चाहिए और ऐसे ही लोगों की वर्किंग कमिटी बनाकर कार्यक्रम निश्चित करना चाहिए जो उनसे पूरी तरह सहमत हो; हम उनसे बहुत बातों में सहमत नहीं थे और हमारे लिए उनके साथ मिलकर काम करना कठिन था—यदि सिद्धांत और कार्य-क्रम में हमारे साथ उनका मतभेद नहीं था, तो उनको चुनाव में लड़ना ही उचित नहीं था—यदि उनके साथ बहुमत नहीं था और वह लोगों की गैर-समझ के कारण अथवा किसी दूसरे कारण से चुने गये थे, तो वह चुनाव ही गलत था। जो हो, हम चाहते थे कि दाँत साफ़ हो जाय। हम नहीं चाहते थे कि कार्यक्रम वह और उनके विचार के लोग बनावें, और उसकी जवाबदेही हमारे सिर पर रहे; हम यह भी न कह सकें कि हम उससे सहमत नहीं हैं। इन्हीं विचारों से हमने कांग्रेस के जलसे से पहले ही इस्तीफ़ा दे दिया था। पर जैसा ऊपर कहा गया है, वह इस्तीफा दे दिया था। पर जैसा ऊपर कहा गया है, वह इस्तीफ़ा मंजूर नहीं हुआ; त्रिपुरी-कांग्रेस के समय पुरानी वर्किंग कमिटी बनी रही।

त्रिपुरी में अधिवेशन के पहले और अधिवेशन के समय आपस में बहुत कशमकश थी। कार्यकर्ताओं में तीव्र मतभेद था। दुर्भाग्यवश सुभाष बाबू बीमार भी थे। त्रिपुरी में वह बहुत खिन्नावस्था में पहुँचे थे। वहाँ की स्वागतकारिणी ने बहुत बड़े समारोह का प्रबन्ध किया था। सभापति के जुलूस के लिए सारे सूबे से उतने हाथी जमा किये थे जितने वर्षों से कांग्रेस के अधिवेशन होते आ रहे थे। बहुतेरे हाथी उस सूबे के रजवाड़ों के थे। प्रतिनिधियों के रहने आदि का भी अच्छा प्रबन्ध हुआ था। सभापति के लिए एक अलग ही कैम्प था जिसमें काफ़ी लोग ठहरे थे। वर्किंग कमिटी के सदस्य दूसरे कैम्प में ठहराये गये थे और प्रतिनिधि अपने-अपने सूबे के लिए बने कैम्पों में ठहरे थे। प्रतिनिधियों के कैम्पों में गरमा-गरम बहस चल रही थी। वर्किंग कमिटी की बाजाब्ता बैठक होना भी कठिन था; क्योंकि मनोनीत सभापति बीमार थे और आपस का मनमुटाव भी काफ़ी बढ गया था। हमने वहाँ भी बहुत प्रयत्न किया कि मनोनीत सभापति नयी कार्यकारिणी बना लें और हम लोगों को मुक्त कर दें, ताकि हम स्वतंत्रतापूर्वक कांग्रेस के काम में भाग ले सकें। पर ऐसा नहीं आ।

विषय-निर्वाचिनी की बैठक में सुभाष बाबू अस्वस्थावस्था में किसी तरह लाये गये। वह मंचपर लेटे रहे। उनकी पूजनीय माता और उनके परिवार की लड़कियाँ उनकी देखभाल करती रहीं। उनके भाई डाक्टर सुनील बोस तथा दूसरे डाक्टर भी बराबर उन्हें देखते रहे। उन्होंने लेटे-लेटे छोटा-सा भाषण भी दिया जिसमें अपनी राय और अपना दृष्टिकोण बतला दिया। हम लोगों का प्रस्ताव भी रखा गया और बहुमत से वही स्वीकृत हुआ। बात स्पष्ट हो गयी कि विषय-निर्वाचिनी समिति में, जिसके सदस्य अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी के सदस्य हुआ करते हैं, उनका बहुमत नहीं है और उन्हीं लोगों के साथ अखिल भारतीय कमिटी के प में जब तक दूसरा अधिवेशन न हो और नये सदस्य न चुन लिये जायें

सभापति को काम करना होगा। पर अभी कांग्रेस के खुले अधिवेशन में प्रतिनिधियों का क्या रुख होगा—मालूम नहीं था। हम जानते थे कि वहाँ भी बहुत बड़ा बहुमत हमारे साथ होगा, तो भी जब तक अधिवेशन न हो ले, इसको कोई निश्चित रूप से नहीं कह सकता था। अब अधिवेशन के समय दो प्रस्ताव पेश होंगे—एक सभापति की ओर से, दूसरा हम लोगों की ओर से, और यही देखना था कि खुले जलसे में क्या नतीजा निकलता है।

खुले अधिवेशन का समय आ गया। सुभाष बाबू अधिवेशन में शरीक नहीं हुए। इसलिए उनके स्थान पर मौलाना अबुल कलाम आज़ाद बैठे। यह तभी हुआ जब बहुत इन्तज़ार के बाद भी मनोनीत सभापति नहीं पहुँचे। उनकी अस्वस्थता का हाल सब लोगों को मालूम था और वहाँ भी सब बातें बता दी गयीं। अधिवेशन आरंभ हुआ। सभापति का भाषण पढ़कर सुना दिया गया।

अधिवेशन तो समाप्त हुआ, पर कटुता और भी बढ़ गयी। किसी बात को हम तय नहीं कर सके। कांग्रेस के अधिवेशन ने ऐसा प्रस्ताव स्वीकार किया जिसको सभापति नहीं चाहते थे। इतना ही नहीं, उसने सभापति के प्रस्ताव को ना मंजूर कर दिया। अब प्रश्न यह था कि सभापति क्या करते हैं। यदि उस प्रस्ताव को वह मान लेते हैं तो उनको नयी कार्यकारिणी ऐसी बनानी होगी जिसपर गाँधीजी का विश्वास हो और जिससे वह सहमत भी हों। त्रिपुरी में बीमार रहने के कारण सुभाष बाबू ने वहाँ नयी कार्यकारिणी नहीं बनायी, जैसा सभापति किया करते हैं। वह तथा हम सब लोग अपने-अपने स्थान को वापस गये।

त्रिपुरी में जो निश्चय हुआ, उसके अनुसार सुभाष बाबू काम नहीं करना चाहते थे। उनका स्वास्थ्य भी ऐसा नहीं था कि इस विषय में कुछ दिनों तक उनके साथ विचार कर कोई फैसला किया जा सके। शायद

महात्माजी के साथ उनका कुछ पत्र-व्यवहार होता रहा। पर कोई बात तय नहीं हो पायी। उन्होंने अखिल भारतीय कमिटी की बैठक करनी चाही जो कलकत्ते में होनेवाली थी। उसके पहले मैं उनसे एक बार उनकी बीमारी की हालत में, झरिया के जामाडूवा-कोलियरी में जाकर मिला भी जहाँ वह अपने भाई के साथ स्वास्थ्य सुधार रहे थे। पर मुझसे कोई खुलकर बातें नहीं हुईं। अखिल भारतीय कमिटी कलकत्ते में हुई। महात्माजी भी कलकत्ते गये, यद्यपि वह कमिटी की बैठक में शरीक नहीं हुए। महात्माजी सोदपुर के खादी-प्रतिष्ठान में ठहरे और हम लोग शहर में। सुभाष बाबू और महात्माजी में कई बार बातें हुईं, जिनमें हम भी अकसर शरीक रहे। पर कोई नतीजा नहीं निकला। अब साफ़ हो गया कि सुभाष बाबू सभापति नहीं रह सकेंगे; क्योंकि अखिल भारतीय कमिटी का बहुमत उनके साथ नहीं था। अब प्रश्न हुआ कि सभापति बने कौन।

लोगों का खयाल हुआ कि सुभाष बाबू के इस्तीफ़ा देने पर मैं ही सभापति बनाया जाऊँ। मुझे यह बात बिल्कुल पसन्द नहीं थी। एक तो मैं इस तरह के झगड़े से हमेशा बचना चाहता हूँ—मैं समझता था कि जब तक फिर कांग्रेस न हो और नया सभापति न चुन लिया जाय, तब तक गड़बड़ी मचती ही रहेगी और मैं इस झंझट को नहीं सँभाल सकूँगा, क्योंकि मेरा मिज़ाज ही ऐसा नहीं है कि झगड़े कर सकूँ; दूसरे त्रिपुरी के बाद बिहार में ही कांग्रेस आमंत्रित थी और मुझे उसके लिए भी प्रबन्ध करना था, मुझे उसीमें समय लगाना पड़ेगा और यदि मैं अखिल भारतीय काम में ही फँसा रहा, तो अपने सूबे का काम बिगड़ जायगा। इन सब विचारों से मैं नहीं चाहता था कि सभापति मैं बनाया जाऊँ। पर जब महात्माजी ने दूसरा कोई उपाय न देखकर मुझे आज्ञा दी कि मुझे यह भार उठाना ही पड़ेगा, तब मैं इनकार नहीं कर सका।

41. एक अत्यन्त अप्रिय कार्य

अखिल भारतीय कमिटी की उस बैठक के थोड़े ही दिनों के बाद, जिसमें निश्चय किया गया था कि कोई भी कांग्रेसी किसी ऐसे क्रियात्मक कार्य में भाग न ले, जिससे कांग्रेस तथा मंत्रिमण्डलों की प्रतिष्ठा में ठेस लगे, श्री सुभाषचन्द्र बोस ने घोषणा की कांग्रेस-कमिटी के इस निश्चय के विरुद्ध सारे देश में ज़बरदस्त प्रदर्शन किया जाय। ऊपर कहा जा चुका है कि यह निश्चय बहुत बड़े बहुमत से स्वीकृत हुआ था। अब उस निश्चय की सीधी अवहेलना पर प्रदर्शन करनेवाले तुल गये। घोषणा समाचार-पत्रों में पढ़कर मैंने सभापति की हैसियत से सुभाष बाबू को तार दिया कि इस प्रकार की अवहेलना उचित नहीं है और वह इससे बाज आवें।

वर्किंग कमिटी की बैठक की गयी। सुभाष बाबू से कैफ़ियत माँगी गयी। उन्होंने कैफ़ियत में अपनी कार्रवाई की पुष्टि की और उसका समर्थन किया। वर्किंग कमिटी ने बहुत विचार के बाद निश्चय किया कि सुभाष बाबू का काम ऐसा है जिसपर उनको मजबूरी अनुशासन की कार्रवाई करनी चाहिए। यह निश्चय कुछ आसान नहीं था; क्योंकि सुभाष बाबू कांग्रेस के एक प्रमुख व्यक्ति थे। वह काँग्रेस के सभापति दो बार चुने गये और हो चुके थे। मतभेद के कारण इस समय वह उस पद से हट गये थे। पर उनकी देश-सेवा, निर्भीकता और त्याग के सभी कायल थे। ऐसे आदमी पर अनुशासन की कार्रवाई कैसे की जाय? सबको खटकता था। न मालूम क्यों, मेरा कुछ भीतरी प्रेम भी उनके साथ था, यद्यपि मुझे उनके साथ मिलकर कोई काम करने का मौका नहीं मिला था और न हम दोनों में किसी समय उतनी घनिष्ठता हुई थी। हाँ, उनके भाई श्री शरतचन्द्र बोस को मैं पढ़ने के समय से ही जानता था; क्योंकि हम दोनों एक ही समय प्रेसिडेन्सी कालेज में पढ़ते थे और एक ही होस्टल में रहा करते थे--उनके साथ कुछ घनिष्ठता थी और उनके प्रति मेरा कुछ आदर और प्रेम भी था। पर प्रश्न यह

था कि कांग्रेस के सारे संगठन पर इस प्रकार से धक्का लगने देना क्या उचित होगा—क्या अपने व्यक्तिगत भावों के कारण इस सार्वजनिक और सार्वदेशिक संस्था की प्रतिष्ठा को धक्का पहुँचानेवाले के साथ अनुशासन की कार्रवाई न की जाय ? जैसा ऐसे अवसरों पर हुआ करता है, संस्था के प्रति कर्तव्यपालन की भावना व्यक्तिगत भावों को दबाने के लिए मजबूर करती है। हम सबने बहुत दुःख के साथ, पर कर्तव्य-भावना की प्रेरणा से विवश होकर, सुभाष बाबू को कांग्रेस-कमिटी से एक अवधि के लिए खारिज कर दिया। जिन दूसरे लोगों ने उनका उस प्रदर्शन में साथ दिया था, उनके साथ भी कुछ कार्रवाई करना आवश्यक था। पर वर्किंग कमिटी ने इसको खुद न करके प्रान्तीय कमिटियों पर छोड़ दिया कि वे जाँच कर वहाँ जैसा मुनासिब समझें, कार्रवाई करें।

सुभाष बाबू त्रिपुरी के समय से ही नये दल का संगठन कर रहे थे, जिसको उन्होंने 'फ़ारवर्ड ब्लाक' नाम दिया था। अब वह अधिक ज़ोरों संगठित किया गया। इसके बाद उस दल और कांग्रेस के बीच खुल्लम-खुल्ला विरोध चलने लगा। प्रान्तीय कमिटियों ने भी जहाँ-तहाँ कुछ लोगों पर अनुशासन की कार्रवाइयाँ कीं। आपस का झगड़ा और भी बढ़ गया। कांग्रेस का विरोध उस दल की ओर से सब जगहों में होने लगा।

खबर मिली कि जर्मनी ने पोलैंड पर चढ़ाई कर दी और इँगलैंड तथा फ्रान्स के साथ भी उसकी लड़ाई छिड़ गयी। उस समय जर्मनी ने, लड़ाई के कुछ दिन पूर्व, रूस के साथ समझौता कर लिया था।

इस विषय पर बहुत विचार करने के बाद 1938 के सितम्बर में, बिना किसी फैसले पर पहुँचे हुए ही, वर्किंग कमिटी ने बात वहीं छोड़ दी थी, क्योंकि लड़ाई छिड़ी नहीं और चेम्बरलेन ने चेकोस्लोवाकिया को हिटलर का शिकार छोड़कर सुलह कर लिया। अब कांग्रेस को कुछ

निश्चय करना होगा। उधर जवाहरलालजी इस समय चीन गये हुए थे। गांधीजी की वाइसराय से मुलाकात हुई। वर्किंग कमिटी की बैठक वर्धा में की गयी। मैं बीमार तो था, पर किसी तरह से वर्धा पहुँच गया। महात्माजी ने श्री महादेव देसाई को भेजा कि चाहे जिस तरह हो सके, मुझे वह ज़रूर वर्धा ले आवें। वर्किंग कमिटी की बैठक कई दिनों तक चली। इसी बीच में श्री जवाहरलाल नेहरू भी चीन से वापस आ गये। मामला बहुत गहन था। यह सोचा गया कि यद्यपि सुभाषचन्द्र बोस कांग्रेस से अलग हैं, तो भी इस मौके पर उन्हें बुलाना चाहिए और उनकी राय भी लेनी चाहिए। कांग्रेस के दूसरे प्रमुख व्यक्ति भी, जो वर्किंग कमिटी के साथ नहीं थे, बुला लिये गये।

गांधीजी ने वाइसराय से मुलाकात के बाद एक वक्तव्य प्रकाशित किया था, जिसमें उन्होंने इंग्लैंड के प्रति सहानुभूति दिखलायी थी और यह भी कहा था कि हमको इंग्लैंड की भी मदद बिना शर्त करनी चाहिए। इससे कुछ लोगों को गलतफ़हमी हुई। पीछे जब कांग्रेस-कमिटी की ओर से इस बात की माँग पेश की गयी कि ब्रिटिश सरकार युद्ध-विषयक और युद्धोत्तर शान्ति-सम्बन्धी अपने विचार तथा उद्देश्य साफ़ बतला दे, तभी हिन्दुस्तान दिल खोलकर मदद कर सकेगा।

इस प्रस्ताव के बाद मुझे प्रेसिडेन्ट की हैसियत से दो बार लार्ड लिनलिथगो से मिलने का मौक़ा मिला—एक बार पं० जवाहरलालजी के साथ और दूसरी बार माहत्मा गांधी तथा मि. जिन्ना के साथ। उस समय लार्ड लिनलिथगो भारत के सभी दलों और सभी तरह के विचारवाले लोगों से मिलकर लड़ाई में हिन्दुस्तान की मदद की बात करते थे और चाहते थे कि हिन्दुस्तान के लोग राज़ी-खुशी से मदद करें और किसी प्रकार की गड़बड़ी न होने दें। लड़ाई शुरू होते ही बिना किसी से पूछे और परामर्श किये ही उन्होंने ब्रिटिश-सरकार की ओर से घोषणा कर दी थी कि हिन्दुस्तान भी लड़ाई में शरीक है। हिन्दुस्तान की धारा-सभा (लेजिसलेटिव

असम्बली) कायम थी। सभी सूबों में 1935 के विधान के अनुसार मंत्रिमण्डल काम कर रहे थे, जिनमें 11 में से 8 सूबों में कांग्रेसी मंत्रिमण्डल स्थापित थे। किसीसे न पूछा गया और न राय ली गयी, मानों हिन्दुस्तान की किसी संस्था अथवा किसी व्यक्ति को इस लड़ाई से कोई सम्बन्ध ही न था! बिना पूछताछ के ही हिन्दुस्तान को भी लड़ाकों में दाखिल कर दिया गया! कांग्रेस-कमिटी भी बहुत क्षुब्द थी। हिन्दुस्तान के दूसरे लोग भी इसे पसन्द नहीं करते थे। ऐसी अवस्था में जब उनका मतलब स्पष्ट न हो जाय, कुछ भी किसीके लिए करना न संभव था और न उचित। लार्ड लिनलिथगो पीछे इसलिए लोगों से राय-बात करने लगे। उन्होंने देश की राजनीतिक संस्थाओं को संतुष्ट करने के लिए यह योजना भी रखी कि उनकी (वायसराय की) कार्यकारिणी (एग्जिक्युटिव) कौन्सिल की सदस्य-संख्या बढ़ा दी जायगी और उसमें अधिक हिन्दुस्तानी ले लिये जायँगे, पर साथ ही वह इस बात पर दृढ़ रहे कि उनके नये या पुराने सदस्यों के अधिकार में कोई परिवर्तन नहीं होगा, उनके विचार से ये सदस्य अपने-अपने विभाग के सरदार मात्र हैं, उनको कोई स्वतंत्र अधिकार प्राप्त नहीं है और कौन्सिल की बैठक तो केवल सभी सदस्यों को एक-दूसरे विभाग की कारंवाइयों से परिचित कराने के लिए ही होती है, वहाँ कुछ बातों पर वे सिर्फ़ विचार कर सकते हैं, पर सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों के निपटारे का भार अन्त में वाइसराय पर ही है और उनको ही अधिकार भी प्राप्त है—लड़ाई के ज़माने में वह कोई वैधानिक परिवर्तन करने की संभावना नहीं देखते थे और इसलिए जो कुछ हो सकता था, वह 1935 के विधान के अन्दर ही हो सकता था।

कांग्रेस की माँगें दो थीं। ब्रिटिश-सरकार के लड़ाई के उद्देश्यों के स्पष्टीकरण के साथ-साथ भारत की स्वतंत्रता के सम्बन्ध में कांग्रेस चाहती थी कि भविष्य की योजना के लक्ष्य को स्पष्ट तरीके से स्वतंत्रता का रूप दे दिया जाय और साथ ही साथ अभी तत्काल भारत के प्रतिनिधियों को

ऐसे शासन-सम्बन्धी अधिकार मिल जायँ जिनके द्वारा वे सचमुच भारत की इच्छाके अनुसार यहाँ प्रबन्ध कर सकें और सच्ची मदद लड़ाई में भी कर सकें।

वर्किंग कमिटी और अखिल भारतीय कमिटी ने निश्चय कर लिया कि कांग्रेस के प्रश्नों का यदि सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला, तो उसे कांग्रेस मंत्रिमण्डलों को इस्तीफ़ा देकर हट जाने के लिए मशविरा देना पड़ेगा। वर्धा में अखिल भारतीय कमिटी की बैठक हुई। उसने वर्किंग कमिटी को अधिकार दे दिया कि इस बात का वह निर्णय करे और आवश्यकता पड़ने पर मंत्रिमण्डलों को इस्तीफ़ा देने का आदेश दे। जब वाइसराय से बात-चीत और गवर्नमेण्ट की घोषणा के बाद से वर्किंग कमिटी को संतोष नहीं हुआ, तो उसने कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों को सूचना दे दी कि अपने-अपने प्रान्त की धारा-सभाओं में वे देश की माँग का समर्थन करावें और उसके बाद इस्तीफ़ा दे दें। उन्होंने ऐसा ही किया। 1939 के नवम्बर में सभी सूबों के कांग्रेसी मंत्रिमण्डल टूट गये। कांग्रेस का बहुमत इतना था कि कोई दूसरा मंत्रिमण्डल बना नहीं सकता था; क्योंकि बनते ही उसपर अविश्वास प्रकट किया जा सकता था। साथ ही, शायद गवर्नमेण्ट लोग और वाइसराय यही पसन्द करते थे कि इस प्रकार के मंत्रिमण्डल के बनिस्वत, जो कभी चूँ-चें ही कर सकते थे, किसी भी मंत्रिमण्डल का न रहना ही उनके लिए अच्छा होगा—उनको अपनी मनमानी करने का पूरा मौक़ा रहेगा। इसलिए उन्होंने उन सभी सूबों में विधान की 93-वीं धारा के अनुसार अनुशासन अपने हाथों में ले लिया। अब केवल काम-काज चलाने का ही नहीं, नये क़ानून बनाने और पुराने को बदलने या रद्द करने का भी पूरा अधिकार गवर्नरों के हाथ में आ गया। लड़ाई आरंभ होते ही ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने 1935 के विधान में एक दिन में संशोधन कर लिया था जिसका नतीजा यह होता था कि जब कभी वाइसराय चाहें, प्रान्तीय सरकारों के अधिकार अपने हाथों में कर सकते हैं, अथवा उनसे अपनी आज्ञाओं का

पालन करा सकते हैं। यह युद्ध की नाज़ुक परिस्थिति के नाम पर किया गया था, पर मतलब साफ़ था और जब मंत्रिमण्डलों ने इस्तीफ़ा दे दिया, तो उनका रास्ता और भी साफ़ हो गया।

लड़ाई आरम्भ हो जाने के बाद कुछ समय तक यह अनिश्चित-सा हो गया कि कांग्रेस का अधिवेशन होगा कि नहीं और होगा तो कब होगा। कांग्रेस का नियम फिर बदल गया था और निश्चय हो गया था कि दिसम्बर में ही सालाना बैठक हो। यह साफ़ हो गया कि अब दिसम्बर में बैठक नहीं होगी। पर थोड़े ही दिनों में यह भी साफ़ हो गया कि बैठक अवश्य करनी ही चाहिए। इसलिए, अब निश्चय हुआ कि मार्च में सालाना इज़लास किया जाय। रामगढ़ में अब फिर ज़ोरों से तैयारी होने लगी। मैं वहाँ बहुत समय नहीं दे सकता था; क्योंकि मुझपर अखिल भारतीय कमिटी के काम का बोझ भी था। पर अब वहाँ केवल श्री अम्बिका कान्त ही नहीं रह गये, मंत्रिमण्डल के इस्तीफा के बाद दूसरे लोग भी वहाँ जाने के लिए फ़ुर्सत पा गये—विशेषकर अनुग्रह बाबू, श्री कृष्ण-वल्लभसहाय और श्री रामनारायण सिंह की सेवा भी उपलब्ध हो गयी। इसलिए मैं बहुत हदतक निश्चिन्त भी हो गया।

42. वैयक्तिक सत्याग्रह

योरपीय युद्ध का रूप इंग्लैंड के लिए भयंकर होता जा रहा था। जर्मनी बड़े वेग से योरप के एक देश के बाद दूसरे पर कब्जा करता जा रहा था। पोलैण्ड, बेलजियम, हालैण्ड, डेंनमार्क, नार्वे इत्यादि 1940 की गर्मी के पहले ही उसके कब्ज़े में आ गये। अब फ्रान्स की बारी थी। फ्रान्स भी बहुत दिनों तक टिक न सका। अन्त में उसे भी हथियार डाल देने पड़े। डंकर्क से अंगरेज़ों की सेना बहुत नुकसान उठाकर किसी प्रकार इंग्लैंड भाग सकी। इंग्लैण्ड में इससे लोगों में बहुत क्षोभ पैदा हुआ। चेम्बरलेन की मिनिस्ट्री गिर गयी। उसके स्थान पर सर्वदल मिनिस्ट्री

कायम हुआ जिसके प्रधान मंत्री विन्स्टन चर्चिल हुए और भारत-मंत्री मि० एमरी। इंग्लैण्ड बहुत बहादुरी के साथ जर्मनी के हवाई हमलों का मुक़ाबला कर रहा था। इटली ने यह समझकर कि अब इंग्लैण्ड हार ही जायगा और फ्रान्स ने हथियार डाल ही दिया है। युद्ध में शरीक हो जाना मुनासिब समझा। इंग्लैण्ड के लिए यह बहुत ही कठिन घड़ी थी। अभी तक अमेरिका लड़ाई में नहीं आया था और न रूस से ही जर्मनी का युद्ध छिड़ा था।

कुछ लोग अहिंसा के सिद्धान्त को सीमित और मर्यादित करके ब्रिटिश सरकार को मदद देने को तैयार थे। पर गांधीजी और कुछ दूसरे लोग अहिंसा को अक्षुण्ण रखना भारत और संसार के लिए आवश्यक समझते थे। मेरा निजी विचार इसी पक्ष में था, यद्यपि मुझे भी युद्ध की स्थिति से कुछ घबराहट तो था और कभी-कभी शंका भी उठती थी कि हम कुछ कर सकेंगे या नहीं। खाँ अब्दुल गफ्फार खाँ बहुत ही दृढ़ता-पूर्वक अहिंसा के सिद्धान्त पर डटे रहे। जब वर्किंग कमिटी ने दिल्ली की बैठक में निश्चय कर लिया कि इस शर्त पर—कि भारत की आज़ादी की घोषणा की जाय और तत्काल गवर्नमेंट को ऐसा रूप दिया जाय कि भारतीय नेताओं के हाथ में अधिकार आ जाय—कांग्रेस सक्रिय मदद लड़ाई में देगी, तो खाँ साहब ने और मैंने तथा कुछ और मित्रों ने वर्किंग कमिटी से इस्तीफ़ा दे दिया। परन्तु प्रेसिडेण्ट मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के इस आश्वासन पर कि अभी जब तक ब्रिटिश गवर्नमेंट हमारी माँग मंजूर नहीं करती, तब तक सक्रिय मदद की और अहिंसा छोड़ने की बात नहीं आती, इसलिए हमको इस्तीफ़ा वापस ले लेना चाहिए और जब ब्रिटिश गवर्नमेंट हमारी यह माँग मान लेगी और हमको मदद करनी पड़ेगी, तब हम इस्तीफ़ा दे सकते हैं—मैंने और कुछ साथियों ने इस्तीफ़े वापस ले लिये; पर खाँ साहब इससे सन्तुष्ट नहीं हुए। महात्माजी ने निश्चय कर लिया कि उनका अब कांग्रेस के साथ सम्बन्ध

नहीं रहेगा। इससे वर्किंग कमिटी में तथा बाहर भी लोगों के दिल में बड़ी खलबली मची।

वर्किंग कमिटी की एक दूसरी बैठक वर्धा में की गयी। उसीके बाद पूना में, इस विषय पर विचार करने के लिए, अखिल भारतीय कमिटी की बैठक बुलायी गयी।

मैं पूना में ही बहुत बीमार पड़ गया। न्युमोनिया-जैसा कुछ हो गया। किसी तरह वर्धा पहुँचा। बरसात के दिन थे, जो मेरे लिए बराबर खराब हुआ करते हैं। वहाँ कुछ दिनों में आराम हुआ तो सेठ जमनालालजी का विचार हुआ कि आराम करने के लिए मैं कुछ दिन राजपूताना की सूखी हवा में जाकर रहूँ। उन्होंने वहाँ खुद मुझे ले जाने का प्रबन्ध कर लिया। पूज्य बापू ने भी उसे अच्छा समझा। मैं सेठजी के साथ जयपुर गया। इत्तफ़ाक से वहाँ भी उस समय पानी पड़ रहा था। रास्ते की गड़बड़ी और बरसात के कारण कुछ तबीयत खराब हो गयी। इसलिए जयपुर में मुझे कुछ दिनों तक ठहर जाना पड़ा। पहले तो डाक्टरों की और फिर वैद्य श्री नन्दकिशोर शर्मा की दवा होने लगी। सबकी राय हुई कि जयपुर से अधिक लाभ 'सीकर'–जैसे वालुकामय स्थान में ठहरने से होगा। इसलिए सेठजी के साथ मैं सीकर चला गया। वहाँ प्रायः एक महीना रहा। सीकर में ही इन आत्म-संस्मरणों का लिखना आरम्भ हुआ। उसी सहवास में मुझे सेठ जमनालाल बजाज के जन्म-स्थान को, काशीकेवास नामक गाँव में जाकर, देखने का सुअवसर मिला। वहाँ से नजदीक ही एक स्थान है लोहागरजी, जिसे लोग तीर्थ-स्थान मानते हैं। वह पहाड़ियों के बीच बहुत सुन्दर बसा हुआ है। जमनालालजी एक दिन वहाँ हमको ले गये। तबीयत बहुत सुधर गयी। हर तरह से चंगा हो गया, ऐसा मालूम पड़ने लगा। वहाँ हमारे रहते-रहते ही बम्बई में अखिल भारतीय कमिटी की फिर बैठक हुई जिसमें

ब्रिटिश सरकार की घोषणा पर विचार किया गया और यह निश्चय हुआ कि इसे कांग्रेस मंजूर नहीं कर सकती; अब कांग्रेस को क्रियात्मक रूप से संसार के सामने अपनी नीति बता देनी चाहिए। और वैयक्तिक सत्याग्रह का भी निश्चय हुआ।

बिहार में, अपने स्वास्थ्य के कारण मेरे लिए सत्याग्रह में शरीक होने का अर्थ अपनी बीमारी की देखभाल का भार गवर्नमेण्ट के ऊपर डालना था। इसलिए गांधीजी ने मुझे स्वयं रोक लिया। पहले दिन, जब श्री बाबू और अनुग्रह बाबू का, पटने में दो स्थानों पर एक के कुछ देर बाद दूसरे का सत्याग्रह करना निश्चित हुआ था और निश्चय के अनुसार श्री बाबू सत्याग्रह करने के लिए बाँकीपुर के मैदान में पहुँचे, तो वहाँ बहुत लोग जमा हो गये, जिसमें विद्यार्थी अधिक थे। वहाँ पर कुछ शोरगुल हुआ जो जेल के फाटक तक, जहाँ श्री बाबू को गिरफ्तार करके ले गये, जारी रहा। मैंने देखा कि यह आरम्भ गांधीजी की हिदायतों के खिलाफ़, हुआ, यदि और इसे प्रोत्साहन मिला तो पीछे इसे सँभालना मुश्किल हो जायगा तथा अपने ही लोग अनुशासन की धज्जी उड़ा देंगे। यह सोचकर मैंने अनुग्रह बाबू के सत्याग्रह को और सारे सूबे के सत्याग्रह को उस समय तक के लिए बन्द कर दिया, जब तक लोग सत्याग्रह के मर्म को पूरी तरह समझ न लें और गांधीजी के आज्ञानुसार अक्षरशः सब बातें ठीक-ठीक करने को तैयार न हो जायँ। यह बात सारे सूबे में फैल गयी। लोगों ने समझ लिया कि इस तरह की बातें नहीं चलने पावेंगी। मेरे पास दूसरे ही दिन लोगों ने आकर बतलाया कि अब वैसी गलती नहीं होने पावेगी और सारे सूबे में सत्याग्रह स्थगित हो जाने से सारे सूबे की बदनामी होगी। मैंने देख लिया कि वातावरण दुरुस्त हो गया, दो दिनों के बाद से फिर इजाजत दे दी। इसका फल यह हुआ कि सारे सूबे में पूरी शान्ति के साथ, जैसा गांधीजी चाहते थे, सत्याग्रह चलता रहा।

43. मेरी मैसूर-यात्रा

मैंने ऊपर कहा है, बहुत समय मेरा उन दिनों वर्धा में ही बीता। जब मैं वहाँ था, मैसूर-कांग्रेस के श्री दासप्पा वर्धा आये। उन्होंने महात्माजी से यह कहा कि वह अपना सालाना जलसा करना चाहते हैं जिसमें मुझे जाना चाहिए। मेरे जिम्मे उसके उद्घाटन का काम सौंपा गया। महात्माजी ने उनके अनुरोध को मान लिया। मुझे वहाँ जाने की आज्ञा मिली। यह सम्मेलन 'हरिहर' नामक स्थान पर तुंगभद्रा नदी के किनारे हुआ था। दृश्य सुन्दर था। लोगों में उत्साह भी काफ़ी था। सम्मेलन, प्रदर्शनी इत्यादि के काम के अलावा श्री दासप्पा मुझे मैसूर के कुछ सुन्दर और पुरातत्व-सम्बन्धी महत्व रखनेवाले स्थानों को दिखला देना चाहते थे। मैं भी यह चाहता ही था। वहाँ जाने के पहले ही श्री दासप्पा से बातें हो चुकी थीं। उन्होंने कार्यक्रम भी बना दिया था। बंगलोर और मैसूर के अलावा मैं उन प्राचीन मंदिरों को भी देखने गया, जो जैन-काल और हिन्दू-काल की स्थापत्य-कला के अच्छे से अच्छे नमूने हैं। श्रवण बेळगोळा और हळेबीड़ू के दृश्य अद्भुत हैं। वे संसार के उन चकित करनेवाले स्थानों में हैं जिनको न देखना मानो मनुष्य की कृतियों के उत्तमोत्तम नमूनों को न देखना है। तीर्थंकर महावीर की बहुत विशाल मूर्ति एक पहाड़ की चोटी पर पहाड़ काटकर बनायी गयी है जो बहुत दूर से, प्राय: 10–15 मीलों से, नज़र आने लगती है। तारीफ़ यह कि उतनी बड़ी मूर्ति कुछ अलग से तैयार करके वहाँ चोटी पर बैठायी नहीं गयी है, बल्कि यह पहाड़ की ऊँची चोटी को ही काटकर बना दी गयी है और चारों ओर की पहाड़ी काटकर समतल कर दी गयी है। मूर्ति ऐसी सुन्दर बनी है कि चाहे आप मीलों की दूरी से देखिए या नजदीक जाकर, उसके सभी अंग ऐसे अनुपात से बनाये गये मालूम होंगे कि कहीं कुछ भी त्रुटि नज़र न आयेगी। प्रत्येक अंग, पैर की अंगुलियों से लेकर नाक-कान तक, अपने-अपने स्थान पर ठीक अनुपात में बना दीख पड़ता है।

यह जैनों का बहुत बड़ा तीर्थ है जहाँ समस्त भारतवर्ष के जैन दर्शन करने जाते हैं। मुझे यह बात जानकर प्रसन्नता हुई कि आरा के श्री निर्मल-कुमार जैन, परिवार के साथ, वहाँ अक्सर जाया करते हैं। वहाँ के लोग उनके संबन्ध में मुझसे पूछताछ कर रहे थे। यह जानकर मुझे और भी अचम्भा हुआ कि उसी मूर्ति की नकल पर, कुछ मोटे पैमाने पर, उन्होंने आरा के नजदीक कहीं जैनी विधवाओं के लिए जो आश्रम खोल रखा है उसमें भी एक मूर्ति बनवायी है; फ़र्क इतना ही है कि जहाँ यह पहाड़ी मूर्ति प्रायः 60-70 फुट की होगी वहाँ आरा की मूर्ति 20-22 फुट की। यह दृश्य तो विशाल मूर्ति-निर्माण-कला का नमूना है।

अब हलेबीडू में कुछ ऐसे नमूने मिले जिनमें बारीकी की हद हो गयी है। वहाँ के मन्दिरों में पुराणों की कथाएँ मूर्तियों द्वारा अंकित और प्रदर्शित की गयी हैं। ये मूर्तियाँ अत्यन्त सुन्दर और मधुर हैं। कुछ पन्द्रह-बीस फुट की ऊँचाई पर एक मूर्ति बनी थी जिसमें कोई फल या फूल दिखलाया गया था और उस पर एक मधुमक्खी बैठी थी। नीचे से देखने में ऐसा मालूम होता था कि वह सचमुच मधुमक्खी है जिसके पाँव और पंख भी हैं। पर वास्ताव में उसी पत्थर पर, जिसको काटकर फूल या फल बनाया गया था, यह मधुमक्खी भी उसी प्रकार बनायी गयी थी—कोई अलग से बनाकर वहाँ बैठायी नहीं गयी थी। दक्खिन के मन्दिरों में पत्थर की बनी जंजीरें अक्सर देखने में आती हैं। किसी धातु की जंजीर बनाना मुश्किल नहीं है; क्योंकि उसकी एक-एक कड़ी अलग-अलग बनाकर एक दूसरे में गूँथ दी जाती है और तब जोड़ या मुंह दबाकर अथवा गर्म करके फाँक बन्द कर दिया जाता है। किन्तु पत्थर की जंजीर में ऐसा नहीं हो सकता। उसमें कड़ियाँ अलग-अलग नहीं बनायी जा सकतीं। एक ही पत्थर के लम्बे टुकड़े को काटकर एक दूसरे में गुंथी हुई कड़ियाँ बनानी पड़ती हैं। काम काफ़ी मुश्किल है; क्योंकि यदि कहीं एक टाँकी या छेनी-भी ज़ोर की लग गयी और कड़ी टूट गयी, तो सारी

जंजीर बिखरकर खराब हो गयी। दूसरे मंदिरों में मैंने जंजीर देखी थी; पर उनका आकार बड़ा था। हळेबीडु में मैंने एक मूर्ति कुछ ऊँचाई पर देखी। वह अनेक अभूषणों से सुसज्जित की गयी थी। सब आभूषण पत्थर के थे और उसी एक पत्थर के टुकड़े में मे, जिसमें से मूर्ति निकाली गयी थी, काट करके बनाये गये थे। वह मूर्ति एक बहुत छोटी सी झुलनी या नकबेसर पहने हुई थी, वह भी पत्थर की थी, बहुत ही छोटी और नाक में एक छोटे छेद से लटक रही थी। जो बाली नाक में थी वह भी बहुत बारीक थी और नाक के छेद में वह चारों तरफ़ घुमायी जा सकती थी। उस नथुनी का व्यास आध इंच से ज़्यादा न होगा और इसीसे नाक के छेद का भी अन्दाज़ा किया जा सकता है। विशालता और बारीकी, दिनों के सुन्दर से सुन्दर नमूनों का वर्णन पढ़कर पाठक समझ सकते हैं कि वहाँ थोड़े में ही कितने कलाकारों की कितनी कृतियों के नमूने हम देख सकते हैं। पत्थरों पर इस प्रकार के विशाल और सूक्ष्म काम हम अजन्ता और एलोरा में भी देख सकते हैं। अजन्ता में चित्रकला का अद्‌भुत विकास देखने में आता है और एलोरा में पहाड काटकर बनाया गया महान् मन्दिर तथा सुन्दर एवं वारीक मूर्ति-निर्माण-कला का चमत्कार-पूर्ण नमूना !

तीसरा अद्‌भुत दृश्य प्राकृतिक था। वह है गिरिसप्पा का जल-प्रपात। यह ऐसे स्थान में है जहाँ ब्रिटिश और मैसूर राज्यों की सरहद मिलती है। प्रायः एक हज़ार फुट की ऊँचाई से जल गिरता है। इसको एक ओर ब्रिटिश राज्य के एक कोने से और दूसरी ओर मैसूर-राज्य के एक कोने से हम देख सकते हैं। पर मैसूर-राज्य में से देखने पर दृश्य अधिक सुन्दर और सुहावना मालूम होता है। वहाँ ठहरने और बैठकर दृश्य देखने का भी अच्छा और सुन्दर स्थान राज्य की ओर से बना दिया गया है। मैं कुछ देर तक बैठकर इस प्राकृतिक चमत्कार को देखता रहा। उन दिनों वहाँ से बिजली निकालने के लिए कारखाना बनाने और

दूर-दूर तक बिजली पहुँचाने का प्रवन्ध मैसूर-राज्य की ओर से किया जा रहा था। बहुत-से मजदूर वहाँ से कई मील की दूरी तक काम करते मिले। मालूम नहीं कि इस प्राकृतिक चमत्कार पर इस मानुषिक बलात्कार का क्या असर पड़ा है और वह शोभा अब भी है या नहीं।

44. युद्ध-युग में देश की स्थिति

जर्मनी के खिलाफ़ यह शिकायत की जाती थी कि जो देश उसका साथ देने को तैयार नहीं होते उनपर धावा बोलकर वह कब्ज़ा कर लेता। पर इस दोष से अंगरेज़ और मित्र-देश भी बरी नहीं थे। उनको डर था कि जर्मन और जापानी सेनाओं का संगम हिन्दुस्तान में किसी समय हो सकता है। उसीको रोकने के लिए अंगरेज़ एक ओर बरमा की सीमा पर लड़ना चाहते थे और दूसरी ओर इजिप्ट के पास दूसरा मोरचा बनाना चाहते थे। एक और भी मोरचा अरब और ईरान में बनाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने अरब और ईरान पर कब्जा कर लिया। ईरान के बादशाह रजाशाह पहलवी को, जिसने 1914-18 के युद्धोत्तर-काल में ईरान को शक्तिशाली बनाने का पूरा प्रयत्न किया था और जो वहाँ के लोगों की उन्नति करने में बहुत-कुछ सफ़ल भी हुआ था, तख्त से उतारकर निर्वासित कर दिया। फिर क्या, रूसी और अंगरेज़ी तथा अमेरिकन सेनाओं का एक बहुत बड़ा अड्डा उस देश में बन गया। विपत्ति-काल में दुश्मन भी दोस्त बन जाते हैं! मि. चर्चिल ने रूस के साथ, जिसका विरोध उन्होंने अपने सारे जीवन में किया था और जिसको न मालूम कितनी गालियाँ दी थीं- दोस्ती कर ली। ऐसा मालूम हुआ कि सारी पिछली बातें दोनों भूल गये!

ऐसी स्थिति में इंगलैंड ने यह सोचा कि हिन्दुस्तान के साथ कुछ तय कर लेना चाहिए। सर स्टैफ़ोर्ड क्रिप्स, जो इंगलैंड के राजदूत बनाकर उस समय रूस में भेजे गये थे जब रूस और जर्मनी के बीच मित्रता थी

तथा जिन्होंने रूस को बहुत कुछ जर्मनी के विरुद्ध उभाड़ने में मदद की थी, लड़ाई ठन जाने पर इंगलैंड वापस आ गये। तब वहाँ की युद्ध-परिषद् के वह प्रमुख सदस्य बन गये। अपने प्रगतिशील विचारों के कारण वह लेबर-पार्टी (मजदूर-दल) से भी अलग कर दिये गये थे। पर इस कठिन समय में, अपनी योग्यता के कारण, और विशेषकर रूस में जो कीर्ति कमा चुके थे उसके कारण, वह बहुत ही लोकप्रिय हो गये। उन्होंने ब्रिटिश कैबिनेट को इस बात के लिए तैयार किया कि भारत के साथ कुछ समझौता कर लेना चाहिए। कैबिनेट ने, जिसमें लेबर-दल और लिबरल-दल के लोग भी शरीक थे, एक योजना तैयार की। उसे लेकर सर क्रिप्स हिन्दुस्तान आये। यह योजना पहले प्रकट नहीं की गयी। बहुत ही धूमधाम के साथ यह कहते हुए कि भारतवर्ष के लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण योजना है—इसे भारतवर्ष द्वारा मंजूर करा लेने का बीड़ा उठाकर वह 1942 के मार्च में हिन्दुस्तान पहुँचे! पहुँचते ही कांग्रेस-प्रेसिडेण्ट मौलाना आज़ाद और गांधीजी तथा दूसरे नेताओं से मुलाकात शुरू कर दी। कुछ दिनों के बाद योजना प्रकाशित भी कर दी गयी। वर्किंग कमिटी की बैठक दिल्ली में हुई। हम सभी वहाँ प्रायः दो-तीन सप्ताह इसपर विचार करते रहे। आरम्भ मे कुछ समय तक गांधीजी भी दिल्ली में रहे। पर कस्तूरबा गांधी की अस्वस्थता के कारण वह सेवाग्राम चले गये। कांग्रेस की ओर से बातचीत मौलाना आज़ाद और पंडित जवाहरलाल नेहरू करते रहे। वर्किंग कमिटी के सभी सदस्य देहली में ठहरे थे। जो बातें होतीं उनपर विचार करने के लिए बराबर वर्किंग कमिटी की बैठकें होती रहीं।

क्रिप्स-योजना दो मुख्य भागों में विभक्त की जा सकती है। उसके पहले भाग में हिन्दुस्तान का भावी विधान बनाने का तरीका बतलाया गया हैं। दूसरे में यह बतलाया गया है कि तत्काल भारत-सरकार का काम चलाने के लिए वाइसराय की वर्तमान कौन्सिल में क्या परिवर्तन

होगा। इसमें भविष्य के सम्बन्ध में यह साफ़-साफ़ कह दिया था कि लड़ाई के वाद हिन्दुस्तान को वही स्थान मिलेगा जो दूसरे उपनिवेशों को है और यदि वह चाहे तो साम्राज्य से अलग हो जाने का भी उसे अधिकार होगा—विधान वनाने के लिए परिषद वनेगी जिसे प्रान्तीय धारा-सभाएँ चुनेंगी—प्रत्येक प्रान्त को अधिकार होगा कि वह यदि चाहे तो भारतीय संघ (यूनियन) से अपने को अलग कर ले, और यदि किसी प्रान्त ने ऐसा किया तो ब्रिटिश सरकार का उसके साथ वही सम्बन्ध रहेगा जो बाकी भारत अथवा भारतीय यूनियन के साथ होगा। इस प्रकार इस योजना ने मुस्लिम लोग की माँग मान ली और पाकिस्तान की स्थापना को सूबों पर छोड़ रखा। तत्काल के सम्बन्ध में इस योजना में यह नहीं कहा गया था कि वाइसराय की कौन्सिल को क्या अधिकार दिया जायगा। उसमें केवल इतना ही था कि उसे सेना-सम्बन्धी और युद्ध-सम्बन्धी कोई अधिकार नहीं होगा जिसका अर्थ लोगों ने आम तौर से यही लगाया कि अन्य विभागों और महकमों में कौन्सिल को अधिकार मिलेगा। पूछने पर क्रिप्स महोदय ने कुछ ऐसा ही कह भी दिया।

जब यह जाहिर हो गया कि उन विभागों में अधिकार नहीं मिलता और जो बातें सर क्रिप्स ने पहले कही थीं कि कैबिनेट की तरह कौन्सिल भी अधिकार रखेगी और काम करेगी, वह केवल वागाडम्बर था, उसमें कुछ भी तथ्य नहीं था, तो वर्किंग कमिटी उसे नामंजूर करने के सिवा दूसरा कुछ कर नहीं सकी; वैसा ही प्रस्ताव पास करके भेज दिया गया। सर क्रिप्स ने भी उसी दिन घोषणा कर दी कि वह वापस जा रहे हैं और जो वात कैबिनेट की ओर से हिन्दुस्तान के सामने पेश की गयी थी वह वापस ली जाती है। मुस्लिम लीग कांग्रेस के फ़ैसले का इन्तजार कर रही थी और जैसे ही हमारा फ़ैसला हो गया उसने योजना को नामंजूर किया।

मैं प्रयाग से सीधे वर्धा चला गया। मुझे ऐसा मालूम होता था कि अब ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के साथ मुठभेड़ हुए बिना न रहेगा। गाँधीजी

ज़बरदस्त लेख लिख ही रहे थे। देश में बड़ी अशांति थी। हम लोगों के दिल में भी जलन थी। मैंने सोच लिया था कि एक बार सारे सूबे का दौरा करना उचित है। एक तो लोगों को गांधीजी की बातें बता देना आवश्यक था और आनेवाले विकट समय के लिए लोगों को तैयार करना था। दूसरे, जापान के आगे बढ़ते जाने के कारण लोगों में जो आतंक फैलता जाता था उसका प्रतिरोध करना था और जनता को यह भी बताना था कि यदि वह कहीं हिन्दुस्तान की भूमि पर पहुँच गया तो हमारा क्या कर्तव्य होगा।

वर्धा से बिहार लौटकर मैंने दौरा शुरू किया। इस बात से किसी तरह का सन्देह मेरे दिल में नहीं रह गया था कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के साथ हमारा टंटा होगा ही। मैंने खुलकर साफ़-साफ़ अपने सभी भाषणों में यह बात कही। अभी तक हमारे पास कोई कार्यक्रम नहीं था। इसलिए मैं कार्यक्रम नहीं बता सकता था और नहीं बतलाया। पर इतना अवश्य कहा कि यह भ अवज्ञा का ही रूप धारण करेगा। साथ ही, बिलकुल अहिंसात्मक होगा। और यह भी कहा कि पहले के आन्दोलनों से यह कहीं अधिक उग्र होगा। उन दिनों जापान की ओर से रेडियो द्वारा इस बात का ज़ोरों से प्रचार किया जा रहा था कि जापान भारत को आज़ाद करने का प्रयत्न कर रहा है और वह हर तरह से भारत की मदद करेगा। इस बात पर भी मैंने अपने सभी भाषणों में कहा कि जापान की बात का विश्वास नहीं करना चाहिए विशेषकर जब हम देखते हैं कि उसने अपने पड़ोसी चीन का गला दबा रखा है और अधिकाधिक प्रचण्ड होता जा रहा है—हमको ब्रिटिश और जापान दोनों के चंगुलों से भारत को आजाद करना है, उसे एक से बचाकर दूसरे के कब्जे में जाने देना हम हरगिज़ पसन्द नहीं कर सकते; इसलिए हमारा संग्राम दोनों के साथ होगा और वह अहिंसात्मक ही होगा। मेरे भाषण ज़ोरदार और उग्र हुआ करते थे। मैं भी समझता था और लोग भी मुझसे कहा करते थे कि

पहले मेरे भाषण बहुत ठंडे हुआ करते थे, पर इस बार तो मैं आग उगला करता हूँ।

1930 के सत्याग्रह के आरम्भ के पहले एक बार पटने के युवकों में कुछ गर्मी आयी। वे कोई छोटी-सी बात लेकर, जिसका मुझे आज स्मरण नहीं है सत्याग्रह की बात करने लगे। सार्वजनिक सभा में गर्मागर्म भाषण हो रहे थे। कई वक्ताओं के बाद मुझे कुछ कहने का मौक़ा मिला। जब मैं उठा तो एक युवक साथी ने आहिस्ता कहा कि अब लोगों के उत्साह पर मैं भींगा हुआ कम्बल डाल दूँगा। मैंने यह सुन लिया और इसीको लेकर लोगों को बतलाया कि मेरे भीगा कम्बल डालने के बाद भी अगर गर्मी ज्यों की त्यों बनी रही, तो मैं समझूँगा कि वह स्वस्थ एवं शक्तिशाली आदमी की गर्मी है और जो उत्साह प्रदर्शित किया जा रहा है वह सच्चा उत्साह है. नहीं तो मैं उस गर्मी को त्रिदोष से पीड़ित मनुष्य का ज्वर समझूँगा और उस प्रदर्शन को उसका प्रलाप मात्र।

इस बार मेरे भाषणों में वह भींगा कम्बल कहीं किसी तरह देखने में नहीं आया। उसके विपरीत उनमें काफ़ी उत्साहवर्धक और उन्मादोत्पादक मसाला रहा करता था। साथ ही, मैं रचनात्मक काम भी करता जाता था। व्यापारियों और जनता से अन्न-वस्त्र के संकट से बचने और बचाने की बात भी करता जाता था। मेरा विश्वास है कि यदि गवर्नमेण्ट जनता का सहयोग लेती, तो इस संकट का वह भयंकर रूप नहीं होता जो हुआ और आज तक भी है। हमारा उद्देश्य ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के विरुद्ध लोगों को उभाड़ने का नहीं था और न यह था कि उसके रास्ते में हम रोड़े अटकायें अथवा जैसे-तैसे उसको परेशान करें। हमारा उद्देश्य था कि लोगों को हम इस बात के लिए तैयार करें कि वे जापान का मुकाबला कर सकें; और चूँकि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट इसका मौका हमको नहीं देती, हम उससे भी समय पाकर लड़कर यह मौका लेना चाहते थे। इसलिए हम अव्यवस्थित तरीक़े से उसे हैरान करना नहीं चाहते थे।

अपनी इस नीति को इसलिए क्रियात्मक रूप से दिखला देने और प्रमाणित कर देने का एक मौक़ा मुझे मिल गया।

अस्तु, मैं दौरे पर था तभी वर्धा में वर्किंग कमिटी की बैठक की नोटिस मिल गयी। मैंने दौरे का कार्यक्रम भी ऐसा बना लिया था कि उसे समाप्त करके सीधे वर्धा चला जाऊँ। जून के अन्तिम दिनों में वहाँ चला भी गया। वहाँ पहले तो चर्खा-संघ की बैठक थी और उसके बाद वर्किंग कमिटी की। कई दिन वहीं रह जाना पड़ा। खादी की उत्पत्ति का बहुत विस्तार करने का आयोजन सोचा गया; क्योंकि ऐसा दीखने लगा था कि मिलों से जो कपड़ा जन-साधारण को मिला करता था वह लड़ाई के कारण बहुत अंशों में अब उपलब्ध नहीं था, कारण यह कि अधिकतर फौजी काम के लिए ही उनको कपड़ा बनाना पड़ रहा था और जो वस्त्र-संकट था वह चर्खा-कर्घा द्वारा दूर किया जा सकता था। इसलिए कई दिनों के विचार के बाद चर्खा-संघ ने बहुत बड़े पैमाने पर काम बढ़ाने का निश्चय किया। वर्किंग कमिटी की बैठक कई दिनों तक होती रही। अन्त में हम इस निश्चय पर पहुँचे कि अहिंसात्मक भद्र अवज्ञा हमको करनी ही होगी, और इस बात की आज्ञा देने के लिए अगस्त के आरम्भ में बम्बई में अखिल भारतीय कमिटी की बैठक की जाय।

वर्किंग कमिटी में बहुत बहस हुई। वहाँ मतभेद कुछ स्पष्ट हो गया। यहाँ पर यह कह देना अनुचित न होगा कि डाक्टर सैयद महमूद सत्याग्रह के विरुद्ध थे। पीछे जाकर उन्होंने एक गलती की जिसका जिक्र ज़रूरी नहीं है; पर उनका यह कहना सत्य था कि वह सत्याग्रह के विरुद्ध थे। उन्होंने अपना विरोध कमिटी में साफ़-साफ़ बतला दिया था। अब जुलाई का महीना करीब आधा बीत चुका था। पानी बरसना जोरों से आरम्भ हो चुका था। हस्ब-मामूल दमा का दौरा भी उसके साथ ही साथ शुरू हो गया था। पर मैं सभी बैठकों में शामिल होता

रहा। इतनी बातें हुईं, पर वर्किंग कमिटी ने सत्याग्रह का कोई कार्यक्रम निर्धारित नहीं किया।

वर्धा में जो बातें ई थीं उन्हें मैंने लोगों को सुना दिया। सभी लोग समझ गये थे कि बम्बई में जो निश्चय होगा वह अत्यन्त महत्वपूर्ण होगा। इस जलसे के बाद एक-दो दिनों के अन्दर ही, अखिल भारतीय कमिटी के सदस्य तथा अनेक कांग्रेसी दर्शक होकर बम्बई के जलसे में शरीक होने को रवाना हो गये। मैं इतना बीमार था कि वहाँ जा न सका और पटने में ही पड़ा रहा।

अख़बारों में ज़ोरों से ख़बर छपा करती थी कि गवर्नमेण्ट की ओर से तैयारियाँ हो रही हैं और बम्बई में ही सब लोग गिरफ्तार कर लिये जाएँगे। इधर-उधर से यह भी ख़बर पहुँच रही थी कि बिहार में भी तैयारी है और जो कैम्पजेल बन्द था वह साफ़ करके तैयार कर ली गयी है। बम्बई में 5 अगस्त (1942 ई.) से वर्किंग कमिटी की बैठक शुरू हुई और 7 अगस्त से अखिल भारतीय कमिटी की बैठक होनेवाली थी। मैं रेडियो और अख़बारों में ख़बरें सुना और पढ़ा करता था। जो प्रस्ताव 8 अगस्त की रात को अखिल भारतीय कमिटी में पास किया गया वह भी वर्किंग कमिटी द्वारा स्वीकृत होने के बाद अख़बारों में आ गया। ख़बर बहुत गर्म थी कि बम्बई में ही सबको गिरफ्तार कर आन्दोलन आरम्भ होने के पहले ही दबा दिया जायगा। मैंने सोचा कि यदि ऐसा हुआ तो जनता के सामने कोई कार्यक्रम नहीं रह जायगा। इसलिए, कम से कम अपने सूबे के लिए, मैं कुछ कार्यक्रम बना दूं। इतनी शक्ति नहीं थी कि बैठकर बहुत लिख सकूं। इसलिए जो मित्र वहाँ मौजूद थे उनसे बातें करके मसविदा तैयार करने को कहा। इनमें मुख्य थे प्रान्तीय कमिटी के मंत्री श्री दीपनारायणसिंह और श्री मथुराप्रसाद। अनुग्रह बाबू भी बम्बई नहीं गये थे, पटने में ही थे। जब मसविदा तैयार किया गया, तो उसे

अनुग्रह बाबू के साथ मैंने देखकर कुछ अदल-बदल कर ठीक कर दिया। उसे छपवाने का प्रबन्ध भी कर दिया गया। यह निश्चय हुआ कि अगर सचमुच सब लोग गिरफ्तार हो गये, तो जो लोग रह जाएँगे वे उसीके अनुसार काम करेंगे। यों तो गांधीजी ने बारबार कह रखा था कि नेता लोग अगर गिरफ्तार हो गये और कोई कार्यक्रम न दे सके तो उस हालत में हर एक कांग्रेसी अपने को नेता समझे और अहिंसा के सिद्धान्त के अन्दर रहकर जो कुछ भी सत्याग्रह के रूप में कर सकता हो करे—इस संग्राम को अंतिम संग्राम समझकर कोई कुछ उठा न रखे, पर अहिंसा को किसी तरह न छोड़े। हमने जो कार्यक्रम बनाया उसमें भी इस बात पर ज़ोर दिया कि अहिंसा को नहीं छोड़ना चाहिए। उसमें सत्याग्रह के लिए कार्यक्रम भी बताया गया जो पूर्व के सत्याग्रहों के कार्यक्रम से सिद्धान्ततः भिन्न नहीं था, पर अधिक उग्र ज़रूर था।

इसी बीच में एक दिन दिल्ली से एक समाचार छपा कि 8 अगस्त के बाद कांग्रेस के लोगों की गिरफ्तारी नहीं होगी और गवर्नमेण्ट इस बात का इन्तज़ार करेगी कि कांग्रेस क्या करती है—कांग्रेस की ओर से भी यह बात कही जा रही थी कि कोई कदम उठाने के पहले गांधीजी वाइसराय से एक बार और बातचीत करेंगे; जब वहाँ कुछ नहीं होगा तभी कोई कदम उठाने को राय देंगे। इस समाचार को हमने सच मान लिया और समझलिया कि अब तुरन्त कुछ होनेवाला नहीं है, बम्बई गये हुए लोगों के लौटने तक हमको इन्तज़ार करना चाहिए—हो सकता है कि वे लोग वहाँ से निर्धारित कार्यक्रम भी साथ लावें; यदि ऐसा हुआ तो हमारे द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रम को काम में लाना अनुचित नहीं तो अनावश्यक होगा। इस तरह हमने निश्चय कर लिया कि अब 11 अगस्त के पहले, जब बम्बई से लोगों के लौटने की आशा थी, हमको कुछ नहीं करना है। इसी निश्चय के अनुसार अनुग्रह बाबू रायबरेली चले गये जहाँ उनके भाई बीमार थे और दीप बाबू मुजफ्फ़रपुर ज़िले में पहले से मुकर्रर किये गये कुछ काम को

पूरा करने। मैं, मथुरा बाबू और श्री चक्रधरशरण के साथ आश्रम में ठहरा रहा।

45. सन् '42 के तूफ़ानी दिन

8 अगस्त (1942 ई.) की रात को प्रायः 10 बजे के बाद भारतीय कमिटी ने प्रस्ताव मंजूर किया। सुना कि गांधीजी का लम्बा भाषण हुआ जिसमें उन्होंने 'करो या मरो' का मंत्र लोगों को दिया। साथ ही, उन्होंने वाइसराय से मिलने तथा एक बार और समझौते के लिए प्रयत्न करने की बात भी कही। अन्य नेताओं के भी भाषण हुए जिसमें सरदार वल्लभभाई के भाषण की लोगों ने बहुत प्रशंसा की। 9 अगस्त (1942 ई.) को सवेरे मैं 'सर्चलाइट' में बम्बई की कारँवाई पढ़ रहा था, मथुरा बाबू शहर चले गये थे कि इतने में डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट मिस्टर आर्चर पहुँचे। मैं चारपाई पर था। उन्होंने मुझे देखकर मेरे स्वास्थ्य के सम्बन्ध में पूछताछ की और यह पूछा कि मेरा कार्यक्रम क्या है। मैं तो समझ गया था कि इनके आने का कारण क्या था; क्योंकि रेडियो में गांधीजी तथा वर्किंग कमीटी के सदस्यों को गिरफ्तारी की खबर संक्षेप में आ चुकी थी। मेरी बीमारी देखकर उन्होंने गवर्नमेण्ट से पूछा कि ऐसी अवस्था में क्या किया जाय। वहाँ से हुक्म आया कि सिविल सर्जन से दिखलाओ और पूछो कि वहाँ से वह दूर ले जाने योग्य हैं या नहीं। सिविल सर्जन को मि. आर्चर जाकर ले आये।

इसी बीच में मेरे घर के डेरे पर खबर पहुँच गयी। वहाँ से बहन और मृत्युंजय की माँ वग़ैरह पहुँच गयीं। सिविल सर्जन की राय हुई कि मैं सफ़र के लायक नहीं हूँ। इसलिए मुझे बाँकीपुर-जेल में ही ले गये। पानी खूब बरस रहा था। खबर शहर में फैल गयी। सदाकत-आश्रम से मेरे रवाना होने के पहले ही कुछ लोग, जिनमें विद्यार्थी मुख्य थे, आश्रम पहुँच गये। केवल मुझे ही गिरफ्तार करने का हुक्म था।

मि. आर्चर का तौर-तरीका अच्छा था। उन्होंने किसी तरह की न तो जल्दी की और न कोई बेअदबी या बदतमीज़ी। जेल में मेरे लिए सब प्रबन्ध ठीक करके मथुरा बाबू और चक्रधर वापस गये कि इतने ही में श्री फूलनप्रसाद वर्मा भी गिरफ्तार होकर वहाँ पहुँच गये। इस तरह प्रायः 1-1½ बजे के पहले ही निश्चित हो गया कि मैं अकेला नहीं रहूँगा और कम से कम एक साथी रात को मेरी देखभाल करने के लिए ज़रूर रहेंगे। मथुरा बाबू ने भी मि. आर्चर से बातचीत की और वह भी सन्ध्या के पहले ही आ पहुँचे। दूसरे दिन तो और लोग भी आने लगे। बम्बई से लौटने पर श्री बाबू, सत्यनारायण बाबू, महामाया बाबू आदि भी आ गये। अनुग्रह बाबू भी आये। पटने में ज़ोरों से प्रदर्शन होने लगा। बड़े-बड़े जुलूस निकलने लगे। कचहरियाँ बन्द हो गयीं और एक बहुत बड़ा जुलूस गवर्नमेंण्ट-हाउस के दर्वाजे तक नारा लगाता हुआ जा पहुँचा। रात हो गयी थी, इसलिए और कुछ उस दिन नहीं हुआ; पर खबर मशहूर थी कि दूसरे दिन सेक्रेटेरियट पर झंडा चढ़ाने के लिए जुलूस जायगा।

जेल में ख़बर मिलने का साधन एक ही था और वह था गिरफ्तार होकर नये लोगों का आना। अख़बार अभी तक बन्द नहीं थे, पर उनसे थोड़ी ख़बर मिलती। सेक्रेटेरियट पर जुलूस गया। गोली चली। 8 या 9 युवक शहीद हो गये। बहुतेरे घायल हुए जिनको लोगों ने अस्पताल पहुँचाया। उस जुलूस में 40-50 लड़के गिरफ्तार करके बाँकीपुर-जेल में उसी रात को लाये गये। उनसे गोलीकांड की बातें मालूम हुईं। रात-भर सारे शहर में जुलूस निकलते रहे। जेल के अन्दर भी जुलूसों की आवाज़ पहुँचती रही। उसी दिन तार और टेलिफ़ोन तोड़ने का काम आरम्भ हो गया। हमने सुना कि पटने में टेलीफोन बन्द हो गया। जेल-आफ़िस में भी टेलीफोन का आना-जाना रुक गया। जो लड़के सेक्रेटेरियट के जुलूस से गिरफ्तार करके लाये गये थे वे किसी तरह बाँकीपुर-जेल में रात-भर रखे गये, दूसरे दिन उन्हें कैम्पजेल में भेजने की तैयारी होने लगी। जेल की

कैफ़ियत यह थी कि पहले से ही वह ठसाठस भरी थी। मामूली कैदियों की संख्या सारे सूबे में बहुत बढ़ी हुई थी, क्योंकि डकैतियाँ कई बरस पहले से ही लड़ाई के जमाने में बहुत बढ़ गयी थीं और चोरी इत्यादि भी ज्यादा हो रही थी। कैदियों में बहुतेरे अभी हाजती (undertrial) थे जिनके मुक़द्दमे की जाँच अभी तक नहीं हुई थी। इसलिए जब राजनीतिक कैदियों की संख्या बढ़ने लगी तो उनके लिए स्थान कम पड़ गया। जो ऊँचे दर्जे में रखे जानेवाले थे, वे तो बाँकी-पुर-जेल में रखे गये और दूसरों को कैम्प-जेल भेजने का प्रबन्ध था। जब तक लड़के कैम्प-जेल में नहीं भेजे गये, शहर की बड़ी जमात जेल के फाटक पर और सड़कों पर खड़ी थी। बाँकीपुर-जेल में दोमहला मकान सड़क के किनारे की ओर ही है। उसपर से लड़कों ने सड़क पर जमी हुई भीड़ से कुछ बातें भी कीं। जब तीन बजे के करीब उनको ले जाने के लिए लारियाँ लायी गयीं, उनमें वे सवार कराये गये। पहली लारी आगे बढी तो जनता लारी पर टूट पड़ी; लड़कों को छुडा लिया और लारी में आग लगा दी। दूसरी लारियों को फिर आगे नहीं बढ़ाया—उनमें सवार लड़कों को उतारकर फिर जेल में ले आये। कुछ देर में फ़ौज बुलायी गयी। उसने रास्ता साफ़ किया। आगे-पीछे फ़ौजी गाड़ियों के बीच में क़ैदियों की लारियाँ कैम्प-जेल पहुँचायी गयी।

ज़ेल में पहुँचने के दो-चार दिनों के बाद यह खबर उड़ी कि मुझ कहीं बाहर ले जायँगे जहाँ वर्किंग कमिटी के दूसरे सदस्य रखे गये थे। रेलों का चलना बन्द हो चुका था, इसलिए ले जाने का एक ही उपाय था—हवई-जहाज। डाक्टरों से राय ली गई तो उन्होंने राय दी कि मेरी अवस्था एसी नहीं कि हवाई जहाज का सफ़र बर्दाश्त कर सकूँ। इसलिए यह विचार स्थगित हो गया। प्रायः दस महीनों के बाद, जून '43 में, एक दिन अचानक मेजरायकर—जिन्होंने मुझे गिरफ्तारी के समय देखा था और हज़ारीबाग न ले जाने की राय दी थी—जेल में आ गये। उन्होंने

मुझसे कहा कि हमें गवर्नमेण्ट का हुक्म मिला है कि मुझे देखकर मेरे स्वास्थ्य के सम्बन्ध में तुरन्त रिपोर्ट दें। गर्मियों में, विशेषकर जून के शुरू में मैं बहुत स्वस्थ रहा करता हूँ। उस समय बहुत अच्छा था। इसलिए, ऐसे समय में, जब स्वास्थ्य के बारे में, कोई खराब रिपोर्ट नहीं गयी होगी, डाक्टर का आना आश्चर्यजनक अवश्य था। मैंने ताड़ लिया कि मुझे कहीं दूसरी जगह भेजना चाहते हैं। मैंने डाक्टर से पूछा, तो उसने कहा कि बाज़ाब्ता खबर तो उसको नहीं थी और न वह दे सकता था, पर बेज़ाब्ता तौर से वह कह सकता था कि कुछ ऐसी ही बात थी। कुछ और अधिक पूछने पर उसने यह भी कहा कि मैं हजारीबाग नहीं भेजा जाऊँगा, दक्खिन पूना की ओर जाना होगा। पीछे जेल से निकलने पर यह खबर मिली कि अहमदनगर के क़िले में भी मेरे भेजे जाने की बात थी और मेरे लिए वहाँ कमरा ठीक किया गया था; पर न मालूम क्यों, फिर कुछ हुआ नहीं। कुछ दिनों के बाद, जब डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट मिलने आया, पूछने पर उसने कहा कि न मालूम क्यों बात आगे न बढ़ी।

जेल जाने के समय मेरी चिकित्सा वैद्यराज ब्रजविहारी चौबजी कर रहे थे। जेल में उनकी चिकित्सा होना सम्भव नहीं था। न मालूम गवर्नमेण्ट कहने पर भी इसकी इज़ाजत देगी या नहीं, और मैं कोई खास सहूलियत माँगना पसन्द भी नहीं करता था। इसलिए वहाँ पहुँचते ही डाक्टरी दवा शुरू हो गयी। बाहर रहने पर पटने के नामी डाक्टर श्री त्रिदिवनाथ बनर्जी (डॉ० एन० बनर्जी), जो उन दिनों मेडिकल कालेज के प्रिन्सिपल थे और डाक्टर रघुनाथशरण तथा डाक्टर दामोदर प्रसाद मुझे देखा करते हैं। गवर्नमेण्ट ने आज्ञा दे दी कि जब कभी जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट, जो वहाँ के सिविल सर्जन उन दिनों हुआ करते थे ज़रूरत समझें तब डाक्टर बनर्जी को बुला लिया करें। इसलिए जब-तब डाक्टर बनर्जी आया करते थे। तबीयत कुछ ज्यादा खराब हुई तो डाक्टर शरण और डाक्टर दस्तीदार भी खास करके बुला लिये जाते थे। इस

तरह, मैं जब-जब बीमार पड़ा, वे डाक्टर आते रहे जो पटने में सबसे अच्छे समझे जाते हैं और जिन्होंने बहुत बरसों से मेरी चिकित्सा की है। इस बात की शिकायत कभी न हुई कि मेरी बीमारी पर पूरा ध्यान नहीं दिया गया। इसी तरह मेरे खान-पान, रहन-सहन इत्यादि के सम्बन्ध में भी कभी किसी किस्म की शिकायत नहीं हुई। गवर्नमेण्ट के हुक्म से, मेरे साथ रहने के लिए, शुरू से ही मथुरा बाबू और चक्रधर बाबू बाँकीपुर-जेल में ही रहने दिये गये। पीछे वाल्मीकि को भी मेरे साथ रहने दिया। दूसरे लोग आते-जाते रहे, पर मेरी खातिर नहीं। कुछ तो गिरफ्तार करके वहाँ सीधे लाये जाते। पर कुछ दिनों के बाद यह बन्द हो गया और गिरफ्तार करके लोग सीधे कैम्प-जेल भेज दिये जाते थे। कुछ लोग कभी-कभी बीमार पड़ जाने पर हज़ारीबाग-जेल से, अथवा किसी दूसरी जेल से भी, पटने के बड़े अस्पताल में भेजे जाते। वे पहले बाँकीपुर-जेल में आते, वहाँ से फिर अस्पताल भेजे जाते। इसी तरह अस्पताल से लौटने के समय भी बाँकीपुर-जेल होकर ही वापस आते। हज़ारीबाग से आनेवाले इन बीमार कैदियों के सिवा दूसरा कोई जरिया हालचाल मिलने का नहीं था। कुछ दिनों के बाद यह भी बन्द हो गया। जिनको अस्पताल जाना होता, वे सीधे अस्पताल में ही भेज दिये जाते। तो भी जेल में न मालूम किस तरह, बिना पूछे, जानने की कोशिश किये बिना ही, खबर पहुँच ही जाती है। गवर्नमेण्ट समझती थी कि संसार को यह बात मालूम नहीं है कि वर्किंग कमिटी के मेम्बर कहाँ रखे गये हैं। पता नहीं कि बाहरवालों को कब मालूम हुआ कि वे लोग अहमदनगर-क़िले में हैं, पर हम लोगों को तो बाँकीपुर-जेल में गिरफ्तारी के चन्द दिनों के अन्दर ही यह मालूम हो गया था। स्थानीय अखबार हमारी गिरफ्तारी के चन्द दिनों बाद तक तो निकलते रहे, पर बहुत जल्द सब के सब बन्द हो गये। बिहार-गवर्नमेण्ट 'पटना-डेली न्यूज़' के नाम से एक दैनिक (अंग्रेज़ी) पर्चा निकलने लगी जिससे कुछ खबरें मिल जातीं। एक विशेष बात उससे यह मालूम हुई कि गवर्नमेण्ट ने किस जिले पर

कितना सामूहिक जुर्माना किया या प्युनिटिव-टैक्स लगाया। हमने देखा कि चन्द महीनों के अन्दर प्रायः 26 लाख जुर्माना किया गया !

बाँकीपुर का जेल-जीवन मेरे लिए किसी तरह कष्टप्रद न हुआ। यों तो किसी एक जगह वन्द रहना ही कष्टप्रद होता है, पर मैंने अपने को कुछ ऐसा बना लिया है या ऐसा पाया है कि जेल में पहुँचने के बाद मैं बाहर की चिन्ता भूल जाता हूँ—जो कुछ बाहर होता है अथवा हो सकता है, उससे कोई सम्पर्क नहीं रखता।

घर के लोगों से बराबर मुलाक़ात होती रही। छोटे-छोटे बच्चे भी उनके साथ आ जाया करते; उनको इसका ज्ञान तो शायद नहीं था कि मैं कहाँ हूँ और क्यों एक जगह में वन्द हूँ; पर सुना कि मुलाक़ात के दिन मेरे पास आने के लिए वे उत्सुक रहा करते थे। चिरंजीव अरुण, मेरा पोता, ढाई साल का था, पर वह जब जेल के फाटक के अन्दर घुसता, तो वहाँ से सीधे दौड़ता हुआ अस्पताल-वार्ड के मेरे कमरे में आ जाता। दो-चार बार आने के बाद ही उसने रास्ता भी पहचान लिया और मेरा कमरा भी। उससे बड़ी जो लड़कियाँ थीं वे तो रास्ता और कमरा जानती ही थीं। मेरे पास पहुँचकर उन बच्चों की फरमाइश होती—बाबा, कुछ खिलाओ ! मैं उनके लिए कुछ तैयार रखता। आध घंटे तक रहकर और इधर-उधर दौड़धूप करके कुछ खाकर वे चले जाते। जाने के समय जेल के अहाते में खिले हुए सुन्दर फूल अगर पसन्द आ जाते, तो तोड़ लेते। जेल के अधिकारी उन हरकतों से रुष्ट नहीं होते थे, बल्कि बच्चों की चंचलता देखकर खुश होते और हँसते। जब-तब अरुण मेरा हाथ पकड़कर चलते समय कहता—'तुहूँ चलइ बाबा।' छोटी अवस्था का बचपन भी कैसा सुन्दर, निरीह और निश्चिन्त हुआ करता है !

जेल में एक समय बहुत चिन्ता का बीता। वह था जब महात्माजी ने उपवास किया। इसकी खबर तो अखबारों से मिल गयी। हमने

गवर्नमेण्ट को लिखा कि वहाँ की खबर मुझे तार द्वारा दी जाती रहे। कुछ मित्रों को तार भिजवाने के लिए भी कहला भेजा। तार आने लगे। पर जब तक वह सी० आई० डी० (खुफिया पुलिस) द्वारा पास न हो जाय, मुझे मिलता नहीं। इसमें देर लगती और जेल-आफ़िस में पहुँचने के प्राय: 24 घंटों बाद तार मिलता। उधर भी उतनी ही खबर लोग भेजने को पाते जितनी गवर्नमेण्ट की बुलेटिन में छपती, वह तो 'पटना-डेली न्यूज़' में सवेरे ही हमको मिल जाती; इसलिए तार और भी बेकार हो गया। चन्द दिनों के बाद तार मँगाना बन्द कर दिया। एक दिन यह खबर पहुँच गयी कि महात्माजी की हालत बहुत खराब है। शहर में तो खबर उड़ गयी कि वह अब रहे ही नहीं! हम लोगों को यह ख़बर जेल में नहीं मिली। जब 'पटना डेली न्यूज़' आया तो मालूम हुआ कि अभी वह बचे हैं और हालत कुछ सुधरने लगी है। हम लोग चिन्ता करते और प्रार्थना करते। ईश्वर की दया से ख़तरे के घंटे निकल गये। मालूम होने लगा कि वह अब संकट की अवधि को पार कर जाएँगे। अन्त में यह शुभ समाचार सुनने को मिला कि यह यज्ञ भी संपूर्ण हुआ। ब्रिटिश गवर्नमेण्ट और लार्ड लिनलिथगो की नीति और कड़ाई का पूरा प्रदर्शन हो गया।

इस बार जेल में 9 अगस्त (1942) को मैं लाया गया। वहाँ से 1945 में 15 जून को निकला। जैसा ऊपर कह आया हूँ, शुरू में मथुरा बाबू और श्री चक्रधरशरण मेरे साथ रहे; दूसरे लोग आते-जाते रहे, पर मेरे लिए नहीं। 1943 के अक्टूबर में श्री चक्रधरशरण हज़ारीबाग भेज दिये गये। मार्च 1944 में मथुराबाबू की रिहाई हो गयी। उसके बाद 3 दिसम्बर, 1944 तक मेरे साथ केवल वाल्मीकि ही रहे। नये आर्डिनेन्स के अनुसार, गवर्नमेण्ट की ओर से, एक कमिटी हर छठ महीने आती और नजरबन्द लोगों से मिलती। जिनके लिए वह सिफ़ारिश करती वे छोड़ दिये जाते। यह कमिटी पहली बार 1944 के मार्च में आयी। मथुरा-

बाबू उसीकी सिफ़ारिश पर अचानक छोड़ दिये गये। मुझसे कमिटी के मेम्बरों ने पूछा था कि क्या मैं छूटना चाहता हूँ, तो मैंने उत्तर दिया था कि अकेला नहीं, सब लोगों के साथ ही। इसपर उन्होंने पूछा कि यदि छोड़ दिया जाऊँ तो मुझे आश्चर्य होगा क्या ? मैंने उत्तर दिया था कि ज़रूर—बहुत आश्चर्य होगा। उन्होंने पूछा कि तोड़-फोड़ का कार्यक्रम अगर कांग्रेस ने नहीं दिया, तो लोगों को कैसे मालूम हुआ और यह बात सारे देश में एक छोर से दूसरे छोर तक इतना जल्द कैसे फैल गयी। मैंने उत्तर दिया कि 8 अगस्त के प्रस्ताव के साथ-साथ गवर्नमेण्ट की एक विज्ञप्ति 9 अगस्त (1942) के सबेरे के समाचार-पत्रों में निकली थी, जिसमें गवर्नमेण्ट ने गांधीजी और वर्किंग कमिटी के लोगों की गिरफ्तारी के कारण बतलाकर लोगों को यह समझाने की कोशिश की थी कि गवर्नमेण्ट की यह कार्रवाई उचित है—उसीमें यह बात साफ़-साफ़ लिखी थी कि काँग्रेस की ओर से इस बार रेल-तार आदि तोड़ने-काटने का भी कार्यक्रम दिया गया है—उसी दिन या उसके दूसरे दिन मि. एमरी ने रेडियो पर भाषण दिया था जिसमें भी यह बात कही गयी थी और यह भाषण भी अखबारों में छपा था—कांग्रेस की ओर से कोई कार्यक्रम नहीं निकला था—लोगों ने समझ लिया कि यही कार्यक्रम होगा और गवर्नमेण्ट की ही बात का विश्वास करके लोगों ने काम शुरू कर दिया।

46. जेल में ग्रंथ-लेखन

इस बार जेल में मैंने कुछ लिखा भी। यों तो 1930 में भी मैंने कुछ लिखने का प्रयत्न किया था, पर वह पूरा न हो सका था—पीछे जो कुछ लिखा भी था, वह खो गया। मैंने पहले से पाकिस्तान-सम्बन्धी कुछ अध्ययन किया था। वहाँ जाकर विचार हुआ कि इस विषय का विशेष-रूप से अध्ययन करूँ। कुछ ऐसी पुस्तकें, जो पाकिस्तान के समर्थन में लिखी गयी थीं, मँगायी गयीं। उनके पढ़ने के बाद विचार हुआ कि इस बात को देखना चाहिए कि जिस आधार पर यह माँग पेश की जाती है,

वह कहाँ तक ठीक है । इसके बाद यह विचार हुआ कि यह भी देखना ज़रूरी है कि 'मुस्लिम लीग' पकिस्तान किसे कहती है—उसकी माँग यदि कोई मान लेना चाहे तो उसे क्या देना होगा और मुस्लिम लीग को क्या मिलेगा—क्या पाकिस्तान अपने पाँवों पर खड़ा हो सकेगा ? अन्त में मैंने सोचा कि इस विषय पर कुछ लिखने की गुंजाइश है—यद्यपि इसका पता नहीं था कि हम लोग कब जेल के बाहर जा सकेंगे और जो कुछ मैं लिखूँगा वह कभी छपेगा या नहीं, तो भी अपने विचारों को साफ़-साफ़ ऐसे रूप में लिपिवद्ध कर देना, जो दूसरों की समझ में आ जाय, ठीक जँचा । मैंने निश्चय किया कि कुछ लिखूँ । मुझे ऐसा मालूम हुआ कि यदि इस सम्बन्ध की सभी बातें देश के सामने—विशेषकर मुसलमानों के सामने—आ जाएँ, जिस तरह विशेष अध्ययन के बाद उसके चलने में मुझे शक हो गया है उसी तरह दूसरे भी इसे अव्यवहार्य समझ लेंगे । इसलिए मैंने निश्चय किया कि उन्हीं बातों को कलमबन्द करूँ जिनसे यह अव्यवहार्यता मालूम हो जाय । पाकिस्तान को अव्यवहारिक सिद्ध करनेवाला वह भाग लिख जाने के बाद इसके आधार के सम्बन्ध में भी लिखना उचित जान पड़ा, अर्थात् भारत में हिन्दू-मुसलमान दो-दो राष्ट्र हैं, इसलिए उसका विभाजन करके दो स्वतंत्र देश और राष्ट्र स्थापित कर देना चाहिए । इस तरह जैसे-जैसे लिखता गया, पुस्तक का आकार बढ़ता गया । काम बहुत तेज़ी से नहीं हो रहा था । एक तो स्वास्थ्य ऐसा नहीं था कि बहुत परिश्रम कर सकूँ । जब बीमार पड़ जाता तो महीनों न कुछ पढ़ पाता और न लिख पाता । जब अच्छा रहता तो पढ़ता और लिखता । कुछ जल्दी करने की ज़रूरत भी नहीं जान पड़ती थी, क्योंकि इसकी आशा तो थी नहीं कि जेल में रहते-रहते कोई पुस्तक प्रकाशित करने की इजाज़त मिलेगी, और अभी छूटने का कोई करीना भी नज़र आता था । इसलिए आहिस्ता-आहिस्ता थोड़ा-थोड़ा करके लिखा ।

इसी बीच में कोई साथी जेल से रिहा होकर बाहर निकले ।

उन्होंने किसी समाचारपत्रवाले से कह दिया कि मैं पाकिस्तान के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिख रहा हूँ। यह बात प्रकाशित हो गयी। सरकारी कर्मचारी कभी-कभी जेल में आया करते हैं। कमिश्नर आये। उन्होंने पूछा कि मेरी पुस्तक कहाँ तक लिखी जा चुकी है। मैंने कहा कि करीब-करीब पूरी हो चुकी है। उन्होंने उसे देखना चाहा। मैंने हस्तलिखित बहियाँ उनके हाथ में दे दीं। एक तो मैं कुछ महीन छोटे अक्षरों में लिखने का आदी हूँ, दूसरे—कागज की कमी के कारण, पन्ने के दोनों ओर लिखा था। चूँकि पुस्तक थोड़ा-थोड़ा करके लिखी गयी थी—जहाँ कोई नयी बात सामने आ गयी अथवा किसी नयी पुस्तक से मालूम हो गयी उसे यथास्थान चस्पाँ कर देता; इस तरह जहाँ थोड़ी भी जगह छोड़ी गयी थी—वह भी बिलकुल भर गयी थी और कहीं-कहीं तो पढ़े जाने की सुविधा के लिए दूसरे रंग की रोशनाई से भी काम लेना पड़ा था—इसलिए किसी भी दूसरे के लिए हस्तलिखित पुस्तक पढ़ना काफ़ी मुश्किल था। कमिश्नर ने पूछा कि क्या पुस्तक छपवाने का इरादा है। मैंने उत्तर दिया कि अगर गवर्नमेण्ट इजाजत देगी, तो छपायी जायगी! इसपर उन्होंने कहा कि पुस्तक बग़ैर देखे गवर्नमेण्ट इजाजत नहीं देगी—जैसी हस्तलिखित पुस्तक की हालत है वैसी हालत में उसे गवर्नमेण्ट का देख सकना भी कठिन है—गवर्नमेण्ट तो टाइप की हुई प्रति ही देख सकेगी। इसपर मैंने कहा कि टाइप कराने का साधन तो मेरे पास नहीं है; पर यदि गवर्नमेण्ट इसकी सुविधा देगी तो टाइप करा लूँगा।

इस बातचीत के बाद मैंने गवर्नमेण्ट को लिखा कि टाइप कराने के लिए मुझे सुविधा दी जाय और इसके लिए तीन तरीकों में गवर्नमेण्ट जो चाहे अख्तियार करे। पहला तरीका यह होगा कि मेरे सहायक श्री चक्रधरशरण को टाइप करने का मौका दे जो मेरे अक्षरों से खूब परिचित हैं। वह उस समय तक रिहा हो चुके थे। इसलिए वह जेल के अन्दर तो आ नहीं सकते थे, न उनसे मेरी मुलाकात हो सकती थी, न

जब तक गवर्नमेण्ट मंजूरी देगी तब तक पुस्तक जेल के वाहर भेजी जा सकेगी। इसलिए उनको जेलर के दफ्तर में बैठकर टाइप करना होगा और हस्तलिखित तथा टाइप की हुई प्रति को लेकर जेलर के पास ही रख छोड़ना होगा। दूसरा तरीका यह हो सकता है कि गवर्नमेण्ट अपने किसी कर्मचारी को इस काम के लिए नियुक्त कर दे और इसका जो खर्च होगा वह मैं दूंगा। तीसरा तरीका यह हो सकता है कि अगर कोई टाइप करना जाननेवाला कैदी हो तो उसे बाँकीपुर-जेल में बुला दिया जाय और वह टाइप कर दे। सोचने के बाद मुझे स्मरण हो आया कि कांग्रेसी कार्यकर्ता जमशेदपुर-लेवर युनियन के मंत्री श्री माइकेल जोन टाइप करना जानता है—वह आन्दोलन के कारण इस समय दूसरी बार गिरफ्तार होकर और सज़ा पाकर हज़ारीबाग-जेल में है। मैंने लिखा कि यदि वह बाँकीपुर बुला दिये जाएँ. वह इस काम को कर सकेंगे। मैंने इसे ही सबसे अधिक सुविधाजनक वताया; क्योंकि जैसा घना और बारीक लिखा गया था वैसा पढ़ने में टाइप करनेवाले को काफ़ी दिक्कत होगी, उसको बार-बार मुझसे पूछना पड़ेगा। इसलिए यदि वह मेरे नज़दीक रहे तो सुविधा होगी कि गवर्नमेण्ट की मंजूरी के पहले बाहर के किसी आदमी को पुस्तक देखने का मौका नहीं मिलेगा।

गवर्नमेण्ट ने मेरी बात मान ली और श्री जोन को बाँकीपुर-जेल में भेज दिया। उन्होंने बहुत परिश्रम करके, जहाँ तक मैं लिख चुका था, टाइप कर दिया। इत्तफाक से यह काम सन् 1945 ई में तारीख 14 जून की सन्ध्या को समाप्त हुआ। उसी दिन रात को हम लोगों को मालूम हो गया कि मैं कल 15 जून को ही सवेरे छोड़ दिया जाऊँगा। अब यह प्रश्न हुआ कि हस्तलिखित और टाइप की हुई प्रतियों का क्या होगा? क्या दोनों मेरे साथ बाहर आने पावेंगी या गवर्नमेण्ट उनको देख लेने के बाद ही बाहर जाने की इजाजत देगी? सुपरिण्टेण्डेण्ट, विना सरकारी आज्ञा के, वाहर ले जाने की इजाजत, अपनी जवाबदेही पर नहीं देना

चाहते थे। पर गवर्नमेण्ट से पूछने पर उन्होंने जाने देने की आज्ञा दे दी। इस तरह, जब मैं बाहर निकला, तैयार पुस्तक के साथ निकला।

ऊपर मैं कह चुका हूँ, 1944 के मार्च से नवम्बर तक मैं प्रायः अकेला ही बाँकीपुर-जेल में था, केवल एक वाल्मीकि ही मेरे साथ था। जब जाँच-कमिटी के लोग अक्टूबर में आये, तो उनको यह बात मालूम हुई कि मैं अकेला ही हूँ। उन्होंने गवर्नमेण्ट के पास लिखा कि एक साथ मेरे पास रखना उचित होगा। नाम पूछने पर मैंने कई मित्रों के नाम बताये। गवर्नमेण्ट ने श्री फूलनप्रसाद वर्मा को भेज दिया। वह भी 1945 के आरम्भ में रिहा हो गये। उसके बाद श्री मणीन्द्रकुमार घोष को हज़ारीबाग से बाँकीपुर मेरे साथ रहने के लिए भेजा। वह एक बड़े परिश्रमी और विचारशील सज्जन हैं। आँकड़ों से डरते नहीं हैं। मेरी पुस्तक देखकर उनकी इच्छा हुई कि वह हस्तलिखित प्रति पढ़ें। मैंने उसे पढ़ने को दिया। साथ ही, यह बेगार उनपर लाद दिया कि वह आँकड़ों को जाँच जाएँ ताकि अगर कहीं कोई भूल रह गयी हो, तो वह दुरुस्त हो जाय। बहुत परिश्रम करके उन्होंने इस काम को पूरा किया। पुस्तक पढ़ते-पढ़ते उनको ऐसा जँचा कि एक कमी रह गयी है—मैंने पुस्तक में यह नहीं दिखलाया है कि हिन्दू-मुस्लिम-समस्या किस तरह जटिल होती गयी है और किस तरह वह यहाँ तक पहुँच गयी है कि मुस्लिम लीग को उसे सुलझाने का एकमात्र उपाय देश का विभाजन ही सूझ रहा है।

पहले कह चुका हूँ कि जेल से मेरे छूटने के दिन ही टाइप करने का काम समाप्त हुआ था। जब टाइप हो रहा था तो मुझे कुछ नया लिखने का समय नहीं मिलता था; क्योंकि जो टाइप होता जाता था उसे एक बार देख लेना जरूरी मालूम होता था। टाइप करने के समय में भी कुछ नया जोड़ता ही जाता था। श्री जोन को भी अक्सर मुझसे कुछ न कुछ पूछते ही रहना पड़ता था। इसलिए मैं वहाँ पुस्तक का एक भाग और लिखकर मनीबाबू की बात को पूरा न कर सका, पर उसे भूला नहीं।

जेल से बाहर निकलने के बाद जब 1945 के अगस्त में स्वास्थ्य सुधारने के लिए पिलानी (राजपूताना) गया तब उस भाग को लिखकर पूरा किया। श्री चक्रधरशरण ने टाइप किया। पिलानी से बम्बई जाते हुए, रेल में, उसका अधिकांश देखकर, मथुरा बाबू की मदद से प्रेस के लिए तैयार कर सका। बम्बई पहुँचने तक प्रायः पुस्तक प्रेस के लिए तैयार हो गयी। वहीं उसका नामकरण हुआ—'इण्डिया डिवाइडेड' (India Divided)। छपने के लिए पुस्तक प्रेस में दे दी गयी। 1946 की जनवरी के आरम्भ में ही पुस्तक छपकर प्रकाशित हुई। एक महीने के अन्दर ही पहले संस्करण की सभी प्रतियाँ बिक गयीं। तीन-चार महीनों में दूसरी बार वह फिर छपी और बिकी।

जेल में मैंने एक चीज़ और लिखी। जब मैं 1940 में स्वस्थ्यसुधार के लिए सीकर (जयपुर-राज्य) गया था, तो मैंने एक दिन अपने संस्मरण लिखने का विचार किया और लिखना भी आरंभ कर दिया। किसी से यह बात कही नहीं। मथुरा बाबू को भी जो दिन-रात साथ रहते थे, इसका पता कुछ दिनों तक नहीं लगा कि मैं कुछ लिख रहा हूँ। मेरी आदत है कि सवेरे 4–30 बजे जाग जाया करता हूँ। उसी समय उठकर प्रतिदिन कुछ न कुछ लिख देता और दूसरों के जागने के पहले ही लिखना खत्म कर देता। वहाँ थोड़ा ही लिखा जा सका। वहाँ से लौटने पर फिर समय ही न मिला। दो बरसों बाद जब जेल में कुछ तबीयत सुधरी, तो साथ के लोगों ने आग्रह किया कि मैं उसे पूरा कर दूँ। मैंने कहाँ तक लिखा था, यह भी ठीक याद न था। हस्तलिखित प्रति को घर से जेल में मँगाना अच्छा नहीं मालूम हुआ; क्योंकि बिना सी. आई. डी. के पढ़े कोई चीज़ मुझे मिल नहीं सकती थी और मालूम नहीं कि पढ़ने के बाद भी गवर्नमेण्ट उसे अन्दर लाने की इज़ाज़त देती या नहीं। इसलिए मैंने अन्दाज से ही वहाँ से आगे की बातें लिखना आरम्भ कर दिया, जहाँ तक मैं समझता था कि सीकर में लिख चुका हूँ।

आहिस्ता वह भी बहुत-कुछ लिखा जा चुका। समाप्त भी शायद हो जाता पर पीछे 'इण्डिया डिवाइडेड' में ही सारा समय लगने लगा। अतः संस्मरण को रख छोड़ा।

कभी-कभी दिल में यह विचार भी उठता कि इस संस्मरण की जरूरत या उपयोगिता ही क्या है। मैंने जो कुछ किया है या पाया है वह दूसरों के साये में रहकर ही—पहले अपने भाई के और पीछे महात्मा गांधीजी के। मेरा कोई ऐसी हस्ती नहीं कि मेरा हाल दूसरों के लिए जानना जरूरी हो अथवा उससे दूसरे कुछ सीख सकें। हाँ, मैं सार्वजनिक कामों में, विशेषकर कांग्रेस-संबंधी कामों में, लगा रहा हूँ। यदि उनके सम्बन्ध में अपने संस्मरण लिख दूँ, तो शायद लोगों को कुछ बात मालूम हो जाएँ। पर इतिहास की दृष्टि से इस संस्मरण का कुछ मूल्य नहीं; क्योंकि मैंने इतने लम्बे सार्वजनिक जीवन में बहुत-कुछ लिखा नहीं है। अगर कुछ लिखा भी है, तो उसकी प्रतिलिपि अपने पास सुरक्षित नहीं रखी। और लोगों ने सार्वजनिक घटनाओं के सम्बन्ध की सामयिक सामग्री जमा करायी है, मैंने वह भी नहीं किया है। कुछ लोगों के महत्वपूर्ण पत्रव्यवहार दूसरों के साथ हुए हैं। मैंने स्वभाव से ही ऐसा कुछ नहीं किया है। और यदि कुछ किया भी हो, तो उसकी भी प्रतियाँ मेरे पास नहीं हैं। कुछ लोग रोज़नामचा लिखा करते हैं, जिसमें सभी घटनाओं का प्रतिदिन उल्लेख हुआ करता है। मैंने यह अभ्यास ही नहीं किया कि रोज़नामचा लिखा करूँ। इसलिए अपनी स्मरणशक्ति के सिवा संस्मरण लिखने का कोई दूसरा साधन भी मेरे पास नहीं था। इतिहास की दृष्टि से, केवल स्मरणशक्ति पर निर्भर संस्मरण की भी, कोई विशेष प्रामाणिकता नहीं हो सकती है। इन्हीं कारणों से कभी-कभी यह विचार उठता कि मेरा संस्मरण लिखना केवल अहम्मन्यता है, इससे दूसरों को कोई लाभ नहीं पहुँच सकता। तो भी, जब एक बार काम शुरू कर दिया तो, उसे पूरा कर देना ही ठीक जँचा; प्रकाशित करने और न करने की बात पीछे देखी जायगी।

इस प्रकार, रामगढ़-कांग्रेस के समय तक के संस्मरण मैं जेल में लिख सका। एक प्रकार से यह संस्मरण सच्चा संस्मरण है; क्योंकि इसमें केवल उन्हीं बातों का उल्लेख है जो लिखते समय स्मृति में आ गयीं। इसलिए बहुत सम्भव है कि बहुतेरी महत्वपूर्ण बातों और घटनाओं का ज़िक्र ही न हो—कहीं-कहीं देश-काल के निर्देश में भी भूल हो—कुछ बातों का जो गलत असर दिल पर रह गया है वही इसमें आ गया हो। पर एक बात मैं कह सकता हूँ—जान बूझकर कोई गलत बात नहीं लिखी गयी है। मित्रों का अनुरोध है कि यह संस्मरण प्रकाशित किया ही जाय। उन्होंने दूसरों को इसे दिखलाया। जो ऐसी चीज़ों के परखने के अधिकारी हैं, उनकी भी राय हुई कि इसे प्रकाशित करना ही चाहिए–विशेषकर इसलिए कि मैंने इसे हिन्दी में लिखा है। इसलिए बाकी हिस्सा, जेल से बाहर निकलने के बाद जुलाई-अगस्त में पिलानी में बैठकर लिख रहा हूँ।

हम लोगों के रिहा होने के कुछ दिनों पहले से ही इस बात की बहुत चर्चा चल रही थी कि अब वर्किंग कमिटी के सदस्य छोड़ दिये जाएँगे। अहमदनगर-किले में जो लोग थे, उनमें से कुछ लोग दूसरे स्थानों में भेजे जा चुके थे। ऐसा मालूम होता था कि यह सब छोड़ने की तैयारी है। इस बात की घोषणा हुई कि 14–6-45 की संध्या को लार्ड वावेल अपनी कोई नयी योजना देश के सामने रखेंगे—यह योजना रेडियो द्वारा सारे देश को उसी रात में बतलायी जायगी। ऐसा ही हुआ। योजना के साथ-साथ यह भी उन्होंने रेडियो पर कहा कि वर्किंग कमिटी के सदस्यों को छोड़ने की आज्ञा दे दी गयी है, तारीख 15 जून के सवेरे सब छोड़े जाएँगे। रेडियो की बात सुनकर कुछ लोग तो उसी रात को हमारे छोड़े जाने की आशा से जेल के दरवाज़े पर आये। अधिकारियों के यह कहने पर भी कि उस रात को छोड़ने का हुक्म नहीं है, वे कुछ देर तक वहाँ ठहरे रहे। 15 जून को एक भारी भीड़ जमा हो गयी। जेल में

इतने दिनों तक रहने के बाद वहाँ से निकलने के समय मन में कितनी भावनाएँ उठने लगीं।

जेल से बाहर निकलते ही हमको बम्बई जाना पड़ा; क्योंकि वहाँ वर्किंग कमिटी की बैठक हुई जिसमें वावेल-योजना पर विचार करना था। बम्बई में बातें थोड़ी ही हुईं और सिमले से महात्माजी तथा सभापति मौलाना आजाद का बुलावा आ गया। उनको वहाँ जाना पड़ा। मैं पटने लौट आया। पर यहाँ दो-चार दिन भी ठहर न सका; क्योंकि सिमले से मेरी बुलाहट आ गयी—वहीं वर्किंग कमिटी की बैठक होगी। सिमले में प्रायः दो सप्ताह तक रहना पड़ा। हमारी ओर से लार्ड वावेल के साथ कभी मौलाना, कभी पंडित जवाहरलाल और महात्मा गांधी की बातें होतीं। मुस्लिम लीग की ओर से मिस्टर जिन्ना और उनके साथी, वाइसराय से बातें करते। पर मुख्य काम तो वहाँ एक कान्फ्रेन्स का था जिसमें कांग्रेस और मुस्लिम लीग के सभापतियों के अलावा सूबों के प्रधान मंत्री बुलाये गये थे। जहाँ मंत्रिमण्डल टूट गया था—जैसा उन सभी सूबों में हुआ था, जहाँ कांग्रेसी मंत्रिमण्डल था—वहाँ के प्रधान मंत्री बुलाये गये थे।

योजना पर और दूसरी बातों पर विचार किया गया। ऐसा मालूम हुआ कि वाइसराय की कार्यकारिणी समिति को एक प्रकार से राष्ट्रीय सरकार का रूप दिया जाएगा। कांग्रेस की ओर से हमने योजना को एक प्रकार से मंजूर कर लिया। नौबत कांग्रेस की ओर से नाम देने की आयी। कान्फ्रेन्स में 11 सूबों में से 7 के प्रधान मंत्री कांग्रेसी थे। बाकी चार में से तीन की ओर से लीगी प्रधान मंत्री थे जिनमें एक आसाम था। आसाम में कांग्रेसी के हट जाने के बाद मंत्रिमण्डल में हेरफेर हुआ था। वहाँ उस समय यद्यपि लीगी मंत्रिमण्डल नहीं था, तथापि प्रधान मंत्री सर सदाउल्ला लीगी थे। चौथा सूबा पंजाब के प्रधान मंत्री सर खिजिर हयात खाँ लीग से झगड़ कर अलग हो गये थे।

योजना की एक शर्त यह थी कि वाइसराय की कौन्सिल में हिन्दुओं और मुसलमानों की संख्या बराबर होगी--इनके अलावा दूसरे लोग भी कुछ होंगे जिनमें हरिजनों के प्रतिनिधि भी रहेंगे। योजना ने एक तरह से हरिजनों के प्रतिनिधियों को हिन्दू-प्रतिनिधियों से अलग मान लिया था और जो समानता हिन्दू-मुस्लिम प्रतिनिधित्व में दी गयी थी वह अहरिजन अथवा सवर्ण हिन्दुओं के साथ ही थी।

तबीयत बम्बई जाने पर ही कुछ खराब हो गयी। इसीलिए बम्बई से जल्द पटने चला आया था। पर पटने में भी ठहर न सका। वहाँ से सिमला जाना पड़ा। सिमले में किसी तरह काम खत्म किया। डाक्टर विधानचन्द्र राय ने, जो सिमला गये हुए थे, सलाह दी कि किसी सूखे स्थान में कुछ दिनों के लिए चला जाना अच्छा होगा। मैं इस विचार से दिल्ली में ठहर गया कि वहाँ से पिलानी जाकर कुछ दिन आराम कर लूँ। पर दिल्ली में अधिक बीमार हो जाने के कारण प्रायः दो सप्ताहों तक ठहर जाना पड़ा। वहाँ से अगस्त की पहली या दूसरी तारीख़ को पिलानी गया जहाँ एक महीने से कुछ अधिक ठहरा। पिलानी में, बिड़ला-बन्धुओं की ओर से हमारे ठहरने का अच्छा प्रबन्ध था। वहाँ बहन और मृत्युञ्जय की माँ के साथ बहुत आराम से रहा। मुझे आराम पहुँचाने का प्रबन्ध बिडला-बन्धुओं के मैनेजर श्री हरिश्चन्द्र ने बड़ी खूबी से किया था। बिड़ला-कालेज के प्रिन्सिपल श्री शुकदेव पाण्डेयजी तथा दूसरे अध्यापकों और आचार्यों की संगति भी बहुत अच्छी रही।

जो पुस्तक (डिवाइडेड इण्डिया) जेल में लिखी गयी थी उसका एक भाग लिखना बाकी रह गया था, यह कहा जा चुका है। पिलानी में यह काम कर लिया गया। वहाँ बिड़ला-कालेज के पुस्तकालय में पुस्तकों का अच्छा संग्रह है। मेरे काम की प्रायः सभी पुस्तकें वहाँ मिल गयीं। इसलिए इसे पूरा करने में सुविधा हुई। परिश्रम तो करना पड़ा, पर काम हो गया। वहीं से वर्किंग कमिटी और अखिल भारतीय कमिटी

की बैठक के लिए बम्बई जाना पड़ा। बम्बई की हवा मेरे लिए इतनी हानिकर होती है कि वहाँ पहुँचते ही फिर खाँसी-दमा हो गया। आखिर वर्किंग कमिटी बम्बई में न होकर पूना में हुई। हम लोग पूना चले गये। वहाँ भी बराबर पानी बरसता रहा। इसलिए स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहा। बम्बई में अखिल भारतीय कमिटी की बैठक के बाद मैं पटने वापस गया। बम्बई में किताब (डिवाइडेड इण्डिया) के छपने और प्रकाशित करने का प्रबन्ध कर लिया। ऐसा मालूम हुआ कि दो-तीन महीनों के अन्दर पुस्तक प्रकाशित हो जायगी। सिमले में ही हम लोग समझ गये थे कि प्रान्तीय और केन्द्रीय असम्बलियों का नया चुनाव शीघ्र ही होगा। मैं समझता था कि उन चूनावों के पहले ही पुस्तक प्रकाशित हो जाय तो अच्छा होगा। केन्द्रीय असम्बली के चुनाव के पहले तो नहीं, पर प्रान्तीय चुनावों के पहले वह प्रकाशित भी हो गयी।

चुनाव-सम्बन्धी दौरे पर मैं निकला और अधिकांश जगहों में, जहाँ जाने का विचार था, गया। पर अन्तिम तीन-चार दिन दौरा न कर सका। फिर तबीयत कुछ ढीली पड़ गयी। उसी समय ज़ोरों से पानी भी बरसने लगा।

चुनाव समाप्त हो जाने पर मंत्रिमण्डल बनना था। यद्यपि कांग्रेस की ओर से कोई बाजाब्ता निश्चय नहीं हुआ था कि कांग्रेस मंत्रिमण्डल बनाने में शरीक होगी, पर अब तो लड़ाई समाप्त हो चुकी थी। कांग्रेस ने लड़ाई के कारण ही मंत्रिपद छोड़ा था। अब वह कारण नहीं रहा। देश की परिस्थिति भी ऐसी थी कि सभी लोग चाहते थे कि कांग्रेस फिर मंत्रिपद ग्रहण करे। इस तरह कांग्रेसी लोग तथा कांग्रेस के बाहर के लोग सभी समझे बैठे थे कि कांग्रेसी मंत्रिमण्डल बनेगा ही। ऐसा ही हुआ भी। सीमा-प्रान्त, युक्तप्रान्त, बिहार, मध्य प्रान्त आसाम, उड़ीसा, मद्रास और बम्बई में तो कांग्रेस का बहुमत था। इनमें मंत्रि-मण्डल बनने में कोई सन्देह नहीं था। पंजाब में किसी

एक दल का बहुमत नहीं था, पर लीग के अधिक मेम्बर चुने गये थे। वहाँ कांग्रेस, सिख और युनियनिस्ट-पार्टी—तीनों मिलकर लीग से ज्यादा थे। इसलिए वहाँ इन तीनों की सम्मिलित पार्टी बन गयी और मंत्रिमण्डल इनका ही बना, लीग का नहीं। सिन्ध में लीग और दूसरे दलों का प्रायः बराबरी का मुकाबला था। कहा जाता था कि लीग के साथ तीन अंगरेज मेम्बरों के मिल जाने पर भी दूसरों का एक या दो अधिक बहुमत था। पर सिन्ध के गवर्नर ने लीग को ही मिनिस्ट्री बनाने का निमंत्रण दिया। वहाँ लीगी मिनिस्ट्री बनी, जिसके सम्बन्ध में अब भी कहा जाता है कि उसके साथ बहुमत नहीं है। केवल एक बंगाल में ही युरोपियनों के साथ मिलकर लीग का बहुमत था। वहाँ भी लीगी मिनिस्ट्री बनी। बाकी सभी सूबों में कांग्रेसी मंत्रिमण्डल बने। बिहार में पुराने चारों मिनिस्टर आरम्भ में नियुक्त हुए। श्री जगलाल चौधरी 10 बरस की सज़ा पाकर जेल में थे, इसलिए चुनाव में खड़े नहीं हुए थे। श्रीबाबू अनुग्रह बाबू और डाक्टर महमूद अपनी नियुक्ति होते ही उनको जेल से निकाल लाये और चौथी जगह पर उनको नियुक्त करा दिया। कुछ दिनों के बाद पाँच मिनिस्टर और भी नियुक्त किये गये।

1946 के आरम्भ में वर्धा से श्री जानकीदेवी बजाज और श्री राधा-कृष्ण बजाज का पत्र आया कि इस बार के गो-सेवा-सम्मेलन का मैं सभा-पति बनूं। उसमें यह भी लिखा था कि पूज्य बापूजी की भी इच्छा है कि मैं यह पद स्वीकार करूँ। यों तो श्री जानकीदेवीजी का कहना ही काफ़ी था, तिसपर पूज्य बापू की आज्ञा! मैंने स्वीकार कर ली। ठीक समय पर वर्धा पहुँच भी गया। वहां पद के भार को सँभालने के लिए इस विषय पर कुछ विशेष ध्यान देना पड़ा। सम्मेलन में अच्छे-अच्छे विशेषज्ञ आये थे, जिनमें सर दातार सिंह, लाला हरदेवदास (हिसार, पंजाब) और मध्य प्रान्त के सरकारी विशेषज्ञ श्री शाहीजी मुख्य थे। वहीं पर

सब बातों को देख-सुनकर और बिहार से गये हुए दरभंगा-गोशाला के प्रतिनिधि से बातें करके यह निश्चय कर लिया गया कि इस तरह का काम बिहार में भी किया जाय तथा इसके लिए एक प्रान्तीय गो-सम्मेल किया जाय। इसी निश्चय के अनुसार पटने में एक गो-सम्मेलन हुआ, जिसमें बिहार की सभी गोशालाओं की ओर से प्रतिनिधि आये। इनके अतिरिक्त दूसरे लोग भी आये। सर दातारसिंह, लाला हरदेवसहाय, दिल्ली के सैय्यद रहीमतुल्लाह काज़ी (हिन्दू-मुस्लिम गो-रक्षा-सभा के सभापति), रावलपिंडी के नज़ीर अहमद शरवानी और बिहार-गवर्नमेण्ट के विशेषज्ञ लोग जो गोसेवा में दिलचस्पी रखते हैं, आये। मैं ही सभापति बनाया गया। भागलपुर के रायबहादुर वंशीधर ढानढनिया स्वागताध्यक्ष थे। पटना सिटी की गोशाला में सम्मेलन हुआ। श्री जानकीदेवीजी भी पधारीं।

मैं गो-सेवा को धार्मिक दृष्टि से नहीं फैलाना चाहता। भारत की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर ही इसकी आवश्यकता और उपयोगिता को समझता हूँ। इसी तरह से हम इसमें उनकी भी मदद पा सकते हैं जिनमें इसके लिए वैसी धार्मिक भावना नहीं है, जैसी हिन्दुओं, जैनों और सिखों में पायी जाती है। मैं मानता हूँ कि यही आर्थिक लाभ और उपयोगिता की भावना कुछ काम कर सकती है और सफल भी हो सकती है। निरी धार्मिक भावना मुसलमानों में द्वेष और हिन्दुओं में आडम्बर तथा दम्भ पैदा करती है, जिससे सच्ची गो-रक्षा और गो-सेवा पीछे रह जाती है और दिखावे की मात्रा बढ़ जाती है। इसलिए मैंने अपने भाषण में भी आर्थिक दृष्टिकोण से ही इसपर विचार किया। मैंने बतलाया कि कृषि प्रधान देश में गो-जाति और गोवंश का कितना महत्व है—किस तरह हम अपने अन्धविश्वास और अज्ञान के कारण उसकी सेवा के बदले उसका अहित कर रहे हैं—दूसरों की सहानुभूति प्राप्त करने के बदले उसका द्वेष एवं विरोध मोल ले रहे हैं। हमारा विश्वास है कि ठीक तरह से,

वैज्ञानिक रीति से, यदि इस विषय का अध्ययन और प्रचार किया जाय तो हम निःसन्देह सबकी सहानुभूति और मदद पा सकते हैं।

इसी विचार और ध्येय को सामने रखकर काम करना है। केवल बहुत दूध देनेवाली गाय जिसके बछड़े हल जोतने और गाड़ी खींचने के काम के योग्य न हों, ऐसे ही देशों में काम दे सकती हैं जहाँ बैलों से मांस-लाभ के सिवा दूसरा काम नहीं लिया जाता—जहाँ बछड़े भी केवल मांस के लिए ही पाले जाते हैं, जैसे हिन्दुस्तान में खस्सी। पर हिन्दुस्तान में जहाँ—लोग गो-मांस नहीं खाते, जहाँ बैलों से दूसरे बहुत से आवश्यक काम लिये जाते हैं, जहाँ बैलों के बिना किसान का कोई काम चल नहीं सकता—हमें ऐसी गायें चाहिए जो काफ़ी दूध भी दें और अच्छे बछड़े भी यह तो नस्ल पर ध्यान देने से ही हो सकता है। हमारे देश के लोग इस विषय पर काफी ध्यान देते थे। वे ज़रूरत के मुताबिक मवेशी भी पैदा कर लेते थे। आज भी हम देख सकते हैं कि एक नस्ल के जानवर बहुत परिश्रम के काम भी कर सकते हैं; पर वे बहुत तेज़ भाग नहीं सकते। दूसरे प्रकार के जानवर बहुत तेज़ भाग सकते हैं; पर उतना बोझ नहीं ढो सकते और न उतना अधिक परिश्रम ही कर सकते हैं जितना पहले प्रकार के। कुछ गायें ऐसी हैं जो बहुत दूध देती हैं; पर उनके बछड़े अच्छे नहीं होते। कुछ ऐसी हैं जिनके बछड़े तो अच्छे होते हैं, पर वे अधिक दूध नहीं देतीं। भारत का किसान एक गाय दूध के लिए और दूसरी बछड़े के लिए नहीं रख सकता। उसको तो एक ही गाय से दोनों काम लेना है। इसलिए हमको ऐसी नस्लों को ही प्रोत्साहन देना होगा जो इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक हो सकें। इस प्रकार की गोशालाएँ हो जाएँ जो अधिक दूध देनेवाली गायें रखें—जिनसे अच्छे काम लायक बछड़े भी पैदा हों। यदि गो-सेवा का ठीक प्रबन्ध किया जाय तो गाय मुनाफा देनेवाली हो जायगी—उसका वध खुदबखुद बन्द हो जायगा। साथ ही, जो गायें बूढ़ी और कमज़ोर पड़ जाएँगी उनकी रक्षा भी, अच्छी

गायों के दिये हुए मुनाफ़े से तथा उनके अपने मांस-चाम इत्यादि के दाम से, हो सकेगी। ऐसी अवस्था में ही गो-रक्षा और गो-सेवा में मुनाफ़ा और गोवध में नुकसान होगा। तभी सब लोग—चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, धार्मिकभावना से उत्तेजित हों अथवा स्वार्थभावना से प्रेरित—गो-रक्षा के काम को अपना हितकर काम मानने लगेंगे। तभी सच्ची गो-सेवा और यथार्थ गो-रक्षा हो सकेगी।

47. 1946 की घोषणा

1946 के मार्च में ब्रिटिश गवर्नमेण्ट की ओर से घोषणा हुई कि भारत के मसले को सुलझाने के लिए भारत-मंत्री लार्ड पेथिक लारेन्स, सर स्टैफर्ड क्रिप्स और मिस्टर ए. बी, अलेक्जैण्डर भारत आवेंगे और यहाँ के नेताओं तथा वाइसराय से बातें करेंगे। इस बात की घोषणा करते हुए प्रधान मंत्री मिस्टर क्लिमेण्ट एटली ने यह भी कहा कि यद्यपि अल्पसंख्यक लोगों के स्वत्वों की रक्षा का प्रबन्ध किया जायगा, तथापि किसी अल्पसंख्यक दल को भारतीय राजनीतिक प्रगति में बाधा नहीं डालने दिया जायगा और इंग्लैंड इस बात के लिए तैयार है कि हिन्दुस्तान आज़ाद हो जाय—इंगलैंड यह ज़रूर चाहता है कि हिन्दुस्तान उसके साथ रहे पर यह निश्चय करने का अधिकार कि वह साथ रहेगा या एकदम अलग हो जायगा हिन्दुस्तान को ही होगा। इस प्रकार घोषणा बहुत अंशों में संतोषजनक मालूम हुई। थोड़े ही दिनों के बाद मंत्रिमण्डल के तीनों सदस्य पहुँच गये। वाइसराय से तथा गवर्नमेण्ट के दूसरे उच्च कर्मचारियों से बातें करने के बाद उन्होंने भिन्न दलों के प्रमुख लोगों से बातें शुरू कीं। कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना आज़ाद तथा महात्मा गांधी से भी उनकी बातें हुईं। इस तरह सब दलों के लोगों से बातें करते बहुत दिन लग गये। तब उन्होंने कांग्रेस के प्रेसिडेण्ट और लीग के प्रेसिडेण्ट को लिखा कि वे अपने-अपने चार-चार प्रतिनिधि दें जिनके साथ बैठकर वे सिमले में बातें करना चाहते हैं। दोनों पक्षों के आठ आदमी और बाइसराय को मिलाकर वे

चार आदमी सिमले में एकत्र हुए। कई दिनों तक बातें होती रहीं पर कुछ फल नहीं निकला। इसपर उन्होंने कॉंफ्रेन्स खत्म करके घोषणा की कि दिल्ली में वे देश के सामने अपनी योजना रखेंगे। सब लोग दिल्ली वापस आ गये। दिल्ली लौटकर उन लोगों ने गवर्नमेण्ट की ओर से 16 मई वाला वक्तव्य निकाला जिसमें अपनी योजना देश के सामने रखी।

योजना के मुख्य तीन भाग थे। पहले में युक्तियुक्त कारणों के साथ उन्होंने मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग को अव्यवहार्य्य बतलाया और कहा कि यह नहीं हो सकता है—इसलिए भारत का विधान ऐसा होगा कि उसमें भारत के सूबों का एक संघ बनेगा जिसमें देशी रियासतें भी शरीक हो सकेंगी; इस केन्द्रीय संघ के अधिकार में तीन विभाग होंगे—फ़ौज और बचाव, विदेशों के साथ सम्बन्ध रखनेवाले मामले, रेल-तार इत्यादि; इन तीनों विभागों के लिए जो रुपयों की ज़रूरत हो, उसको वसूल कर लेने का अधिकार भी होगा—अन्य विषयों में सूबों को स्वतन्त्रता रहेगी। जो ऐसे विषय हैं जिनका कहीं ज़िक्र न हो और जो बच गये हों वे सब सूबों के अधिकार में होंगे। दूसरे भाग में उस विधान-निर्माण-समिति की योजना बतलायी गयी, जिसके ज़िम्मे विधान बनाने का काम सुपुर्द किया जाएगा। तीसरे में तत्काल गवर्नमेण्ट कायम करने की बात कही।

वक्तव्य में यह स्पष्ट कह दिया गया था कि भारतवर्ष को अधिकार होगा कि वह यदि चाहे तो ब्रिटिश साम्राज्य से अपने को अलग कर सकता है। विधान-निर्माण-समिति के संगठन का रूप निम्नलिखित प्रकार का होगा। सभी प्रान्तों की असम्बलियाँ अपने-अपने प्रान्त की आबादी के प्रत्येक 10 लाख पर एक आदमी को चुन लेंगी और ये लोग ही विधान-निर्माण-समिति के सदस्य होंगे। उस चुनाव में मुसलमान सदस्य तथा पंजाब में सिख सदस्य अपनी जाति के प्रतिनिधि अलग-अलग वोट देकर चुनेंगे। बाकी सब लोग इकट्ठे ही वोट देकर प्रतिनिधि चुनेंगे। दिल्ली-

अजमेर-मेवार के प्रतिनिधि वे ही लोग समझे जाएँगे जो वहाँ से चुनकर इस समय केन्द्रीय असम्बली में भेजे गये हैं और कुर्ग तथा बलूचिस्तान के प्रतिनिधि अलग से चुन लिये जाएँगे। ये लोग मिलकर देशी रजवाड़ों के प्रतिनिधियों से बात करके तय कर लेंगे कि उनके कैसे और कौन प्रतिनिधि होंगे। उनकी संख्या भी 10 लाख आबादी पर एक प्रतिनिधि के अनुपात में ही होगी।

इस प्रकार ब्रिटिश भारत के कुल 291 प्रतिनिधि होंगे जिनमें 210 गैर-मुस्लिम, 78 मुस्लिम, और 4 सिख होंगे। सूबे तीन भागों में विभक्त होंगे। पहले विभाग में मद्रास, बम्बई, युक्त प्रान्त, बिहार, मध्य प्रान्त और उड़ीसा होंगे। दूसरे विभाग में पंजाब, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त, सिन्ध और बलूचिस्तान तथा तीसरे विभाग में बंगाल और आसाम होंगे। ब्रिटिश भारत की विधान-निर्माण-समिति की प्रारम्भिक बैठक में सभी सदस्य शरीक होंगे। उस बैठक में सभापति इत्यादि पदाधिकारी चुन लिये जायँगे और कार्यपद्धति निश्चित कर ली जायगी। इसके बाद तीनों विभागों के सदस्य अलग-अलग बैठेंगे। उनमें से प्रत्येक अपने विभाग में सम्मिलित सूबों के लिए विधान तैयार करेगा। तब वह इस बात का निश्चय करेगा कि उस बिभाग के लिए किसी सम्मिलित विधान की भी आवश्यकता है या नहीं और यदि है तो उनके क्या विषय होंगे और उसका क्या रूप होगा। अन्त में विधान-निर्माण-समिति की फिर बैठक होगी जिसमें देशी रजवाड़ों के प्रतिनिधि भी शरीक होंगे और अखिल भारतीय संघ का विधान तैयार किया जायगा। विधान तैयार हो जाने के बाद जब उसके अनुसार प्रान्तों की असम्बलियों का चुनाव हो जाएगा तब प्रत्येक सूबे को अधिकार होगा कि वह यदि चाहे तो अपनी असम्बली के वोट से जिस विभाग में वह सम्मिलित किया गया है, उसमें शरीक न रहकर अलग हो जाय। अल्पसंख्यक जातियों के स्वत्व-संरक्षण के लिए एक अलग समिति बनायी जायगी जिसमें उनके प्रतिनिधि रहेंगे और जो संरक्षण के

उपाय और तरीके बतावेगी; उसके निश्चयों पर विधान-निर्माण-समिति विचार करके विधान में उचित प्रबन्ध रखेगी। तत्काल के लिए वाइसराय फिर नये सिरे से अपने कौन्सिल को नियुक्ति करेंगे और उसमें यथासाध्य भारत के विभिन्न दलों के प्रतिनिधियों को रखेंगे। यद्यपि 1935 का विधान आज बदला नहीं जाएगा और उसके अनुसार वाइसराय के हाथों में ही अन्तिम अधिकार रहेंगे तथापि जहाँ तक हो सकेगा, कौन्सिल की राय से ही काम चलाया जायगा और उसमें यथासाध्य हस्तक्षेप नहीं होगा।

हम लोगों से राय करके पंडितजी ने वाइसराय को दरमियानी राष्ट्रीय गवर्नमेंट के लिए नाम दे दिये, जो जल्दी प्रकाशित हो जाएँगे। इन नामों में मेरा नाम भी है। आज से एक सप्ताह बाद, सितंबर के आरंभ से ये नामजद लोग गवर्नमेंट का काम सँभालने लग जाएँगे।

पिछले 26 बरसों से दिन-रात कांग्रेस के काम में लगा रहा हूँ। घर पर बीमार होकर ही गया हूँ। वहाँ के काम में, भाई के मरने के बाद ही, कुछ थोड़ा समय कुछ दिनों तक देना पड़ा था, नहीं तो घर के काम से भी एकबारगी अलहदगी रही है। अपने रहने के लिए कहीं कोई अलग इन्तज़ाम नहीं किया। आश्रम में रहा या जब कहीं गया तो मित्रों के साथ। पटने में मृत्युञ्जय के डेरे पर दो-चार ही रोज रहा हूँ। इस तरह एक ही प्रकार जीवन कटा है। कभी किसी दफ्तर में बैठकर काम नहीं किया। कुछ दिनों तक पटना-म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन की हैसियत से दफ्तर का काम किया था, पर वह अनुभव इतना कम और थोड़े दिनों का था कि उसकी कोई गिनती नहीं है। कांग्रेस के दफ्तर का काम सँभालना पड़ा है, पर वहाँ भी दफ्तर से अधिक जन-सम्पर्क का ही काम किया है और ज़ाहिर है कि वह काम बिलकुल दूसरे प्रकार का है। अब एक नये प्रकार के जीवन में प्रवेश करना है। पहले तो अपने लिए अलग खास घर लेना है। उसमें रहने और खाने-पीने आदि का इन्तजाम

करना होगा। अब रुपये भी वहाँ मुशाहरे के मिलेंगे। मालूम नहीं, इस सम्बन्ध में कांग्रेस की ओर से क्या आदेश मिलेगा—हम कितना लेंगे और उसे किस तरह खर्च करेंगे।

इसके बाद, जो जटिल समस्याएँ सामने पेश हैं उनका हल किस तरह किया जायगा। मालूम नहीं, मुझे कौन विभाग मिलेगा। पहले सुनता था कि कृषि-विभाग और खाद्य-विभाग मुझे दिये जायेंगे। पता नहीं कि पंडितजी से वाइसराय की जो बात-चीत मेरे चले आने के बाद हुई, उसमें मेरे लिए कौन विभाग सोचा गया। यदि वे ही विभाग रहें तो मेरे मन के मुताबिक होंगे, यद्यपि अन्न-संकट बहुत कठिन है और इसका इस समय सँभालना आसान नहीं है।

मैं चाहता था कि काम शुरू करने के पहले एक बार पटने और राँची से हो आता, पर शायद इसका समय नहीं मिलेगा। राँची जाने की बहुत जरूरत है। जनार्दन का बच्चा चिरंजीवी सूर्यप्रकाश बहुत दिनों से बीमार है। उसे बीमारी के कारण बम्बई से पटना बुला लिया था। बम्बई और पटने के डाक्टर उसे आराम न कर सके। तब वह राँची भेजा गया है। आज से प्रायः दस महीने हो गये। 22 बरस का बच्चा बहुत कष्ट पाता आ रहा है। प्रतिदिन ज्वर हो आता है। खाँसी भी बहुत हुआ करती थी। फेफड़े की कुछ शिकायत थी। पर अब सुनते हैं कि वह कम है। अब काँख में घाव-सा हो गया है। उसको देख लेने की बहुत इच्छा है। जनार्दन भी अब बम्बई अपनी नौकरी पर चले गये हैं। देखें, क्या होता है। ऐसी स्थिति में नया काम शुरू करना पड़ रहा है।

नये लोगों का साथ होगा, जिनमें बहुतेरे ऐसे होंगे जिन्होंने या जिनके साथियों ने हमको और हमारे साथियों को जेलों में बन्द रखा—हमारे लोगों के साथ तरह-तरह की सख्तियाँ कीं। पर मेरे मन में

किसीके प्रति कोई दूसरा भाव नही है और मैं मानता हूँ कि मैं सबको मिलाकर अपना काम कर सकूँगा। पर गवर्नमेण्ट के बाहर भी भारी कठिनाइयों का सामना करना है। न मालूम लीग क्या-क्या करेगी और जनता का रुख क्या रहेगा। यदि हमने सचाई के साथ और निष्पक्ष होकर सबकी सेवा की, तो फल अच्छा ही होगा। अपना इरादा ऐसा ही है। आगे ईश्वर के हाथ में है।

पिलानी
24 अगस्त, 1946

परिशिष्ट

मैंने संस्मरण लिखना कब आरम्भ किया और यह कैसे लिखा गया, इसका जिक्र पुस्तक के 151 वें अध्याय में किया है। पुस्तक के अन्त में यह भी लिखा है कि दरमियानी गवर्नमेन्ट के बनने तक का ही हाल इसमें लिखा गया है। आज से प्राय: 4 महीने पहले मैंने पुस्तक को पूरा किया था। इस बीच में बहुत बातें हो गयी हैं जिनका महत्व है और जिनको इस परिशिष्ट के रूप में दे देना अच्छा प्रतीत होता है।

तारीख 2 सितम्बर 1946 को दरमियानी गवर्नमेण्ट बनी। इसमें 12 मंत्री बनाये गये जिनके नाम थे सर्वश्री जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, शरतचन्द्र बोस, राजगोपालाचारी, आसफ़अली, डाक्टर मत्ताई, जगजीवनराम, सर शफात अहमद खाँ, सरदार बलदेवसिंह, भाभा, अलीजहीर और मैं। सरदार वल्लभभाई पटेल, श्री जगजीवनराम और मैं उस समय बिड़ला-भवन में ठहरे हुए थे। वहाँ के लोगों ने माँगलिक क्रिया के साथ हमको गवर्नमेण्ट हाउस के लिए रवाना किया। वहाँ से हम लोग पूज्य गांधीजी के पास गये और साथियों के साथ गांधीजी का आशीर्वाद लेकर वाइसराय के पास अपना काम सँभालने के लिए गये।

मेरे जिम्मे खाद्य और खेती विभाग दिये गये। अन्न-संकट सारे देश में जबर्दस्त था, विशेष करके दक्षिण के उन हिस्सों में जहाँ के लोग चावल ही खाया करते हैं। 1945 में वर्षा बहुत कम हुई और धान की फसल बहुत जगहों में, विशेष करके दक्षिण में, मारी गयी। जाड़ों में भी पानी नहीं बरसा। इसलिए रबी की फसल भी कम हुई। पहले से लड़ाई के ज़माने में ही अन्न की बहुत कमी हो गयी थी, क्योंकि बर्मा से चावल आना बन्द हो गया था। हिन्दुस्तान के कुछ हिस्सों में वहाँ के लोगों के खाने के लिए काफ़ी अन्न नहीं होता है। यह कमी बर्मा के चावल से पूरी होती थी। जब उसकी आमदनी बन्द हो गयी, तो बड़ी

कठिनाई हो गयी। बंगाल के भयंकर अकाल के कारणों में यह भी एक था। 1946 के आरम्भ से ही इसका डर हुआ कि इस साल अन्न की बहुत कमी रहेगी और फिर भी कहीं अकाल न पड़ जाय। इसलिए भारत-सरकार ने विदेशों से अन्न मँगाने का इन्तजाम सोचा। आजकल दुनिया में अन्न संकट है, एसलिए एक अन्तरराष्ट्रीय संस्था बनायी गयी है जो सभी देशों में, जहाँ कुछ अधिक अन्न मिल सकता है, पता लगाकर उन देशों में उसे पहुँचवाने का प्रवन्ध करती है जहाँ अन्न की कमी है। इस संस्था में भारतवर्ष भी शरीक है और उससे भारत की ओर से अन्न की माँग की गयी।

देश और विदेश से जो कुछ मिल सकता था, उसे देश के भिन्न-भिन्न भागों में ज़रूरत के मुताबिक बाँटा जा रहा था। आते ही मैंने देखा कि पूज्य गांधीजी ने जो कुछ पहले कहा था, वही ठीक है। उन्होंने कहा था कि विदेशों पर हम बहुत भरोसा नहीं कर सकते, क्योंकि वहाँ से अन्न लाने में हज़ारों अड़चनें पड़ सकती हैं। हमारे लिए अपने देश और अपने लोगों पर ही भरोसा करना ठीक है। मैंने तुरन्त स्थिति को समझकर इस बात की अपील की कि जिससे जो बन पड़े, अधिक अन्न पैदा करने के लिए करे—जितना कम अन्न खर्च कर सके, करे और जितना बचा करके दूसरों के लिए दे सके, दे।

थोड़े दिनों के अनुभव ने मेरा यह विश्वास और भी दृढ़ कर दिया है कि भारतवर्ष-जैसे कृषिप्रधान देश को अपनी खुराक खुद पैदा करनी चाहिए। इसके लिए विदेशों पर भरोसा करना ठीक नहीं। यह कोई आसान समस्या नहीं है। हमारी आबादी बढ़ती जा रही है आबाद होने लायक ज़मीन अब बहुत नहीं बची है। बहुत कुछ आबाद हो चुकी है। पहले भी 5.6 करोड़ मन चावल हर साल बाहर से मँगाना पड़ता था। अब आबादी बढ़ जाने से अधिक अन्न की ज़रूरत हो गयी है और और बढ़ती जायगी। इस कमी को पूरा करने का प्रयत्न करना कृषि-

विभाग का काम है। फिर यह भी जाहिर है कि हमारे लोगों को जो भोजन मिलता है, वह ऐसा नहीं होता कि उससे उनका स्वास्थ्य उन्नत हो। उसमें बहुत प्रकार की कमी है जिसे पूरा करना चाहिए। इसलिए अन्न के अलावा दूध, मछली, मांस, तेल, घी, फल, मूल, सब्जी इत्यादि सभी चीज़ों को अधिक मात्रा में पैदा करना आवश्यक है। मेरी दिलचस्पी इन विषयों में काफ़ी है और ऐसे प्रयत्न में दिन-रात लगा हूँ कि यह कैसे किया जाय। गवर्नमेण्ट तो केवल कुछ मार्ग-दर्शन करा सकती है, सलाह दे सकती है—थोड़ी बहुत सहायता कर सकती है। पर काम तो जनता का है। हमारी जनता विशेष करके खेती का काम करती है। उसे ही इस भार को सँभालना है। जनता को किस तरह सहायता दी जाय कि वह इसे सँभाल सके। कृषिविभाग का प्रधान होने की हैसियत से मुझे इस जवाबदेही को सँभालने का प्रयत्न तो करना है। सभी कर्मचारी मदद कर रहे हैं, पर काम इतना बड़ा और विस्तृत है कि प्रायः चार महीनों के बाद भी अभी यह नहीं कह सकता कि मैं यह कहाँ तक पूरा कर सकूँगा। संकट-निवारण में जनता ने काफ़ी मदद की। मेरी अपील पर हज़ारों लोगों ने खाना कम कर दिया। उन्होंने निश्चय किया कि समय-समय पर नियमित रूप से उपवास करके अन्न बचायेंगे और दूसरे प्रकार से सबने मदद की थी। आशा है, अन्न की पैदावार बढ़ाने में भी उनकी ओर से वैसे ही मदद मिलेगी।

लार्ड वेवल इस बात के लिए बराबर कोशिश में थे कि मुस्लिम लीग किसी तरह दरमियानी गवर्नमेण्ट में और विधान परिषद में शरीक हो जाय। हमारी नियुक्ति के थोड़े ही दिनों बाद उन्होंने मि० जिन्ना से पत्र व्यवहार शुरू किया और एक समय आया जब पं० जवाहरलाल नेहरू को उनसे बातचीत करनी पड़ी। भोपाल के नवाब साहब भी बीच में पड़े और इस बात की कोशिश की गयी कि कांग्रेस और मि० जिन्ना के बीच कुछ समझौता हो जाय पर यह प्रयत्न सफल नहीं हुआ। अन्त में

मि० जिन्ना ने निश्चय किया कि वाइसराय की अनुमति से, कांग्रेस की सम्मति के बिना ही, वह अपने लोगों को दरमियानी गवर्नमेण्ट में भेजेंगे। हमने तीन जगहें खाली कर दीं और मुस्लिम लीग के पाँच सदस्यों की नियुक्ति हो गयी।

इधर दरमियानी सरकार का काम चल रहा, उधर कलकत्ते के हत्याकाण्ड के बाद सारे देश में बड़ी खलबली मच रही थी। बम्बई, प्रयाग, ढाका इत्यादि अनेक स्थानों में लोगों को छुरे भोंके जा रहे थे और बहुतेरे बेकसूर निरीह लोग हिन्दू या मुसलमान होने के कारण राह चलते मारे जा रहे थे। बिहार के बहुत लोग कलकत्ते में रहा करते हैं। उनमें से बहुतेरे कलकत्ते के हत्याकाण्ड में मारे गये थे और दूसरी तरह से सताये गये थे। जो भाग करके वापस आये उन्होंने अपने और दूसरी के दुखड़े सुनाये। इसका असर बिहार के लोगों पर बहुत पड़ता गया। मुजफ्फरपुर ज़िला के बेनीबाद गाँव से खबर उड़ी कि वहाँ कोई मुसलमान एक हिन्दू स्त्री को कलकत्ते से ज़बरदस्ती ले आया है। हिन्दुओं की एक भीड़ उस गाँव में गयी और कई मुसलमानों को उसने मार डाला और कितनों के घर जला दिये। खबर मिलने पर वहाँ के लोगों के साथ गवर्नमेण्ट ने सख्ती की और बहुतेरे गिरफ्तार किये गये और सामूहिक जूर्माना लगाया गया। इस घटना की खबर फैलने पर मुसलमानों में अशान्ति फैली। कुछ दिनों के बाद ज़ोरों से खबर आयी कि नौआखली और त्रिपुरा ज़िलों में, जहाँ मुसलमानों की बहुत आबादी है, मुसलमानों ने हिन्दुओं पर हमला शुरू कर दिया है। बहुतेरे मारे गये हैं और गांव के गाँव जहाँ हिन्दू रहते थे, जला दिये गये हैं और हज़ारों की तादाद में हिन्दू जबर्दस्ती मुसलमान बना लिये गये हैं। बहुतेरे स्त्रियों के साथ जबर्दस्ती शादी कर ली गयी है और बहुतेरी भगा या चुरा कर अन्यत्र हटा दी गयी हैं। ये वाक़या दो ज़िलों के कई थानों में फैले हुए थे। पहले तो ठीक पता नहीं चला कि इसका फैलाव कितना है। हज़ारों की तादाद में

हिन्दू अपने घर-द्वार को छोड़कर अथवा सब कुछ बर्बाद होने और लूट जाने या जला दिये जाने के बाद भाग करके शहरों में और दूसरे स्थानों में आश्रय लेने आये। उन इलाकों में किसी भी हिन्दू के लिए जाना कठिन था, क्योंकि इलाके भर का महासरा कर लिया गया था। वहाँ की गवर्नमेण्ट की शिकायत होने लगी कि उसने बलवाइयों को रोकने का कोई समुचित प्रबन्ध नहीं किया और जैसे कलकत्ते में बलवाइयों को छोड़ दिया गया था वैसे ही वहाँ भी छोड़ दिया गया कि वे मनमानी करें। यह काण्ड कई दिनों तक चलता रहा। वहाँ के और कलकत्ते के काण्ड में एक बहुत बड़ा अन्तर यह था कि कलकत्ते में हिन्दुओं की आबादी बहुत ज्यादा है, लेकिन नोआखाली और त्रिपुरा में मुसलमानों की। इसलिए कलकत्ते में शुरू में तो हिन्दू खूब पिटे, पर पीछे उन्होंने अपना बचाव ज़ोरों से किया। नोआखाली और त्रिपुरा में ऐसा नहीं हो सका, क्योंकि वहाँ हिन्दू बहुत कम और कमज़ोर हैं। इन घटनाओं की ख़बर देशभर में फैल गयी और चारों ओर हिन्दुओं में बड़ा रोष पैदा हुआ।

इन घटनाओं का नतीजा यह हुआ कि हिन्दुओं में प्रतिशोध की भावना भर गयी। उधर मुस्लिम लीग के नेता और समाचारपत्र दिन प्रतिदिन जहर उगला करते थे और हिन्दुओं को युद्ध के लिए ललकार रहे थे। पं. जवाहरलालजी पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में गवर्नमेण्ट के मंत्री की हैसियत से सफ़र करने गये। वहाँ के सरकारी राजनीतिक विभाग के कर्मचारी सीधे वाइसराय की मातहती में काम करते हैं। खबर है कि कुछ हिस्सों में गलत प्रचार से लोगों को उभाड़ा गया और कुछ आदमियों ने पंडितजी तथा बादशाह खाँ के साथ केवल बदतमीज़ी ही नहीं की बल्कि और तरह की ज्यादतियाँ कीं। एक जगह तो इतना ज़बर्दस्त हमला हुआ कि उन लोगों की जान किसी तरह से बची और बादशाह खाँ के हाथ में इतनी चोट आयी कि हड्डी टूट जाने के कारण महीनों तक पट्टी बाँध रखने की ज़रूरत हो गयी। पर बावजूद इस

तरह की दुर्घटनाओं के पंडितजी की यात्रा बहुत सफल रही और वहाँ के लोगों ने उनका बहुत स्वागत किया—प्रेम और उत्साह दिखलाया। इस बात का भी असर देश के हिन्दुओं पर काफ़ी पड़ा। उनको ऐसा जान पड़ा कि मुस्लिम लीग हिन्दुओं को ब्रिटिश के साथ मिल करके दबाना चाहती है और दबाती जा रही है।

बिहार में भारी बलवा शुरू हो गया। कई जगहों में छोटी-मोटी घटना को लेकर हिन्दू बड़ी तादाद में मुसलमानों के गाँवों पर हमला करने लगे। पटना-जिला के कई स्थानों के कितने ही मुसलमान मारे गये कितनों के घर जलाये गये और कितनों के साथ क्रूरता का व्यवहार किया, गया। यह आग मुंगेर और गया ज़िलों के कई थानों तक पहुँच गयी। छपरा में तो इसका आरम्भ ही हुआ था, जहाँ पहले शहर में और पीछे कुछ गाँवों में बहुतेरे मुसलमान मारे गये। दिल्ली में इन दुर्घटनाओं की खबर मिली। पंडित जवाहरलाल और सरदार वल्लभभाई—जो बंगाल की हालत देखने कलकत्ता गये थे—पटने में वापसी के समय रुक गये। उनके साथ मि. लियाकत अली और सरदार निश्तर भी गये थे। वे लोग भी रुक गये। सरदार वल्लभभाई और मि. लियाकतअली तो दिल्ली के काम से वापस आ गये, पर पंडित जवाहरलाल और सरदार निश्तर बिहार में ठहर गये। मैं भी हवाई जहाज़ से वहाँ पहुँचा। हमारे मंत्रि मण्डल के लोग बहुत ज़ोरों से दौड़-धूप कर रहे थे और पुलिस से जहाँ तक हो सकता था, बलवा रोकने का प्रयत्न कर रहे थे। फ़ौज की मदद भी माँगी थी जो कुछ देर के बाद पहुँची। पंडित जवाहरलाल और मैं दोनों दौड़-धूप करने लगे। उधर जब गांधीजी को खबर मिली तो उन्होंने घोषणा की कि यदि बिहार में बलवा न रुका तो वह आमरण अनशन करेंगे। इस समय गाँधीजी नोआखाली में हिन्दूओं और मुसलमानों के बीच सद्भाव पुनः स्थापित करने के लिए गये हुए थे। वहीं से उन्होंने यह घोषणा की। नतीजा यह हुआ कि बिहार में बलवा एकबारगी जल्द बन्द हो गया।

पर जितना हो चुका था वह बहुत और भयंकर था। कितने मारे गये, इसका ठीक पता अभी तक नहीं लगा है, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनकी संख्या हजारों की है। मुस्लिम लीग के लोगों ने तो बहुत बढ़ा करके संख्या बतायी है और मि. जिन्ना ने 30,500 के आँकड़े को घोषित किया है। यह तो बिलकुल ग़लत है और मेरे अनुमान में इसके दशमांश को मान लेना ग़लत न होगा। संख्या जो भी हो, इसमें शक नहीं कि बहुत ज़ुल्म और क्रूरता की गयी है जिसके लिए सबको लज्जित होना चाहिए। आपस के मेल-जोल के प्रयत्न में बहुत बड़ा धक्का लगा है। इन बलवों के कारण हजारों की तादाद में मुसलमान भाग करके शहरों और ऐसे स्थानों में, जहाँ वे अपने को सुरक्षित समझते हैं, आ गये है। वहाँ उन लोगों के रहने, खाने इत्यादि का प्रबन्ध गवर्नमेण्ट कर रही है और मुस्लिम लीग के बहुतेरे काम करनेवाले पहुँच गये हैं। बलवा तो चन्द दिनों के बाद ही रुक गया, पर इसका नतीजा तो अभी तक आँखों के सामने है और बहुत दिनों तक रहेगा।

इसी तरह की भयंकर घटना मेरठ-जिला के गढ़मुक्तेश्वर के मेले के समय हो गयी। वहाँ भी बहुतेरे मुसलमान मारे गये और पीछे मुसलमानों ने हिन्दुओं से उसका कुछ बदला चुकाया। इस समय ख़बर है कि सीमाप्रान्त में भी, हजारा जिले में, कुछ 'कबीलों का लश्कर हिन्दुओं पर हमले कर रहा है। बहुतेरे शहरों में छुराबाजी तो कम-वेश जारी है ही। एक भयंकर स्थिति है।

इस बार मेरठ में ही कांग्रेस होने की बात थी। जब गढ़मुक्तेश्वर की दुर्घटना हुई तो ऐसा शक होने लगा कि वहाँ काँग्रेस नहीं हो सकेगी। पर स्थिति सँभल गयी और कांग्रेस का जलसा हुआ। हाँ, जो समारोह होने को था वह नहीं हुआ। काँग्रेस के साथ होनेवाली प्रदर्शनी और अनेकानेक दूसरी संस्थाओं की सभाएँ नहीं हुईं। कांग्रेस में भी दर्शकों को आने से रोक दिया गया और केवल प्रतिनिधियों को ही आने दिया गया।

तो भी समारोह तो हो ही गया और कुछ न कुछ दर्शक आ ही गये। आचार्य कृपलानी के सभापतित्व में सफलतापूर्वक कांग्रेस समाप्त हुई। महत्त्व के दो प्रस्ताव हुए। एक में भारतवर्ष में प्रजातंत्र (Republic) कायम करने की बात कही गयी और दूसरे में विधान परिषद को विधान-सम्बन्धी आदेश दिये गये।

हम दिल्ली से ही मेरठ गये थे। वहाँ से लौटते ही मालूम हुआ कि इंग्लैंड के मंत्रिकण्डल ने कांग्रेसी नेता पं० जवाहरलाल और सरदार वल्लभभाई को, सिखों के नेता सरदार बलदेवसिंह को और लीग के नेता मि. जिन्ना तथा मि. लियाकत अली को बुलाया है। हम लोगों की समझ में यह नहीं आया कि हमको क्यों बुलाया जा रहा है, क्योंकि हमने तो 16 मई वाले वक्तव्य को मान करके काम शुरू कर ही दिया है। केवल लीग ने अभी तक अपनी अस्वीकृति के निश्चय को नहीं बदला है। अब विधान परिषद् की बैठक का समय नजदीक आ गया था, क्योंकि वह 9 दिसम्बर से होनेवाली थी और यह बात 27 नवम्बर को पेश हुई थी। हम लोगों ने तो पहले यह कहा कि हमारे जानते वहाँ जाने की कोई ज़रूरत नहीं है, क्योंकि हमारा जो मतभेद विलावती मंत्रिमण्डल के साथ 16 मई के वक्तव्य के अर्थ के सम्बन्ध में था वह उनको मालूम ही है और वहाँ जाने से उसमें कोई फ़र्क नहीं पड़नेवाला है, पर तो भी यदि वे बुलावेंगे ही तो हम चले जायँगे। प्रधान मंत्री मि. अट्ली का तार आया कि जरूर आ जाइये और 9 दिसम्बर तक विधान परिषद् की कर्रवाई शुरू होने के पहले ही वापस चले जाइए। लीग ने पहले तो जाने का निश्चय कर लिया, पर जब जिन्ना को मालूम हुआ कि कांग्रेस को कुछ आश्वासन दिया गया है तो उन्होंने जाने से इनकार कर दिया। वह उस समय कराँची में ही था। वाइसराय वहाँ पहुँचे और दोनों में कुछ बातें हुईं और वह भी जाने के लिए तैयार हो गये। इस प्रकार पं० जवाहरलाल, सरदार वलदेवसिंह, मि० जिन्ना और मि० लियाकतअली वाइसराय के साथ हवाई जहाज से इंग्लैंड गये।

ऊपर कहा जा चुका है कि 9 दिसम्बर को विधान परिषद् की बैठक का निश्चय कर दिया गया था और उससे सदस्यों के पास निमंत्रण भेज दिये गये थे। इसलिए वह बैठक की गयी। उसकी बैठक के लिए केन्द्रीय धारा सभा के चौगोल में एक भाग, जिसमें पुस्तकालय था, खास तौर पर बहुत अच्छी तरह सजवा करके तैयार किया गया था। विशेष करके उसमें ऐसा प्रबन्ध किया गया था कि सदस्यों की बोली की प्रतिध्वनि, जो ऐसी इमारतों में स्वाभाविक है, न होने पावे इसके लिए अनेक प्रकार के वैज्ञानिक प्रवन्ध किये गये हैं और सदस्यों को दिल्ली की सरदी से बचाने के लिए स्थान को गर्म रखने का प्रबन्ध 9 दिसम्बर से विधान परिषद् का काम शुरू हुआ।

इसके सम्बन्ध में पहला प्रश्न यह उठा था कि जब तक स्थायी सभापति का चुनाव न हो जाय तब तक परिषद् की कार्रवाई का संचालन कौन करे। निश्चय हुआ कि सदस्यों में जो सबसे अधिक वयोवृद्ध हों वही अस्थायी सभापति हों। हमारे बिहार के डाक्टर सच्चिदानन्दसिंह ही सबसे अधिक वयोवृद्ध निकले। इनकी उम्र और सर हरिसिंह गौड़ तथा श्री प्रकाशम् की अवस्था में थोड़ा ही अन्तर था, पर वह सबसे बड़े निकले। इसलिए उन्होंने ही सभापति का आसन ग्रहण किया और दो-तीन दिनों तक—जब तक स्थायी सभापति का चुनाव नहीं हुआ, बड़ी खूबी के साथ काम चलाया।

अब यह प्रश्न उठा कि स्थायी सभापति किसको नियुक्त किया जाय। ऊपर कह चुका हूँ कि दरमियानी गवर्नमेण्ट में हम लोगों की नियुक्ति के पहले विचार हुआ था कि मुझे इस काम के लिए रख छोड़ा जाय और दरमियानी गवर्नमेण्ट में मुझे न भेजा जाय। पर अन्त में यह विचार बदल दिया गया और मुझे वहाँ नियुक्त कराया गया। इंग्लैंड जाने के पहले हम लोगों ने पंडित जवाहरलालजी से बातें की थीं और सोचा गया था कि कांग्रेस के बाहर के किसी योग्य व्यक्ति को ही चुनना

ठीक होगा। सर गोपालस्वामी आयंगार का नाम भी सामने आया था। वह योग्य और अनुभवी व्यक्ति हैं और इस विषय में उन्होंने काफ़ी दिलचस्पी ली है। वह कांग्रेस के नहीं हैं यद्यपि चुने जाने में कांग्रेसी सदस्यों ने उनकी मदद की है। जब परिषद् के इजलास के लिए लोग आने लगे तो सदस्यों का विचार हुआ कि मुझे यह पद दिया जाय। उन्होंने आपस में बातें कीं और मालूम हुआ कि बहुत लोगों की यही इच्छा थी। मुझे पहले इसका पता नहीं था, पर लोग एक-एक करके मेरे पास पहुँचने लगे और जोर देने लगे कि मैं इस पद को स्वीकार करूँ। मेरे सामने बड़ी कठिनाई यह थी कि दो विभागों का काम मेरे जिम्मे था और वह मेरे लिए काफ़ी था। उसपर यह काम भी उठाना बहुत भारी हो जायगा। मैंने इस विचार से इसे पहले इनकार कर दिया। वर्किंग कमिटी में यह बात पेश हुई और मैंने यह प्रश्न उपस्थित किया कि यदि मुझे यह पद लेना पड़े तो दरमियानी गवर्नमेण्ट में से मुझे मुक्त कर दिया जाय। इस पर कोई राजी नहीं था। परिषद् के सदस्य इस बात पर तुल गये थे कि मुझे ही यह भार दिया जाय। अन्त में मजबूर होकर और डरते-डरते मैंने इस भार को भी लेना मंजूर किया। मेरा नाम पेश हुआ और मैं सर्वसम्मति से चुना गया। लोगों ने बधाई देते समय मेरे सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा। पर मैं तो भार से दबा जा रहा था। इधर तो चन्द दिनों की ही बैठक रही है। काम चला लिया है और विशेष करके कोई विरोध या जटिल प्रश्न अभी तक सामने नहीं आया है। देखें, आगे कैसे निभता है; ईश्वर ही चलायेगा।

भगवान की लीला समझ में नहीं आती। एक तरफ़ विपत्ति पर विपत्ति और दूसरी तरफ़ एक पर एक काम के बोझ का बढ़ता जाना। इतना भी समय नहीं मिलता कि दुःखी परिवार के लोगों के साथ कुछ समय बिताऊँ। पर मैं जानता हूँ कि इसमें भी ईश्वर का ही हाथ है। वह जो चाहे करे और करावे।

दिल्ली का जीवन कई बातों में नया जीवन है। दफ्तर का काम करने का पहले-पहल मौक़ा हुआ है। सुना है कि लोग मेरे काम से सन्तुष्ट हैं। अभी तक देश जो अन्न-संकट में पड़ा रहा है उससे रिहाई तो नहीं हुई है, पर कुछ हालत सुधरी जरूर है। दक्षिण में चावल की कमी के कारण जो भय था वह अब कम हो गया है, पर उत्तर में गेहूँ की कमी के कारण भय बढ़ता जा रहा है। मैं नहीं जानता कि मैंने ख़ास क्या किया, जिसके लिए मुझे बधाई या ख्याति मिलनी चाहिए। पर लोग सन्तुष्ट हैं और अनेकों मानते हैं कि मैंने परिस्थिति को सँभाला है। यदि कर्मचारी और जनता साथ न देती तो कोई भी कुछ नहीं कर सकता था।

मैं तो कर ही क्या सकता था? यहाँ का जीवन मेरे लिए बिलकुल एक नया अनुभव है। मकान बहुत बड़ा है, पर उसमें जगह बहुत कम है, क्योंकि कमरे बड़े-बड़े, पर संख्या में कम हैं। अहाता बहुत बड़ा और फ़ूल-गुल से सुसज्जित है। तरकारी की खेती की गयी है और अपनी उपजायी तरकारी हम लोग इस्तेमाल कर रहे हैं। पर ख़र्च काफ़ी पड़ता है। जब से आया हूँ, इतना उलझा रहता हूँ कि मित्रों से मिलने-जुलने का भी समय नहीं मिलता। कहीं आना-जाना तो बहुत मुश्किल से हो सकता है। अब तो और भी कठिनाई बढ़ गयी। पर ईश्वर की दया है कि स्वास्थ्य काम दे रहा है और अभी तक कोई ऐसी हालत नहीं हुई है कि काम रोकना पड़े। यदि स्वास्थ्य ने साथ दिया, जैसा अभी तक रहा है, तो ईश्वर चाहेगा तो विधान परिषद् के अध्यक्ष का काम भी किसी तरह से चला ले जाऊँगा।

दिल्ली,

8 जनवरी, 194